कृष्णाजी नायक

विजयनगर राज्य से सम्बन्धित ऐतिहासिक उपन्यास

लेखक
गुणवंतराय आचार्य

अनुवादक
परदेशी



वोरा एण्ड कम्पनी, पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड,
३ राउन्ड बिल्डिंग, कालबादेवी रास्ता, बम्बई-२.

• प्रथम संस्करण
१९६०

• मूल्य रु. ४·००

• प्रकाशक
के के वोरा,
वोरा एण्ड कम्पनी,
पब्लिशर्स प्रा० लिमिटेड,
३, राउण्ड बिल्डिंग,
कालबादेवी रोड,
बम्बई २

• मुद्रक :
मुहम्मद शाकिर,
सहयोगी प्रेस,
१४१, मुट्ठीगंज,
इलाहाबाद ३

प्रकाशकीय

तुर्क और मुगलो के आक्रमण से लोहा लेनेवाले वीरो के अमर उपन्यास का एक अध्याय यदि राजस्थान है तो दूसरा उत ा ही गौरवशाली अध्याय दक्षिण का वारगल—देवगिरि से लेकर ठठ केरल तक का दक्षिणापथ का प्रदेश है।

दक्षिणापथ के इस प्रदेश ने भारतीय इतिहास को कई जाज्वल्यमान रत्न दिये। विजयनगर यही अस्तित्व मे आया। स्वाधीनता-सग्राम की यह परम्परा हमे ठेठ हैदरअली, टीपू सुलतान, मोपला विद्रोह और असहयोग-आन्दोलन के वीरो तक मिलती है।

प्रस्तुत उपन्यास मे श्री गुणवन्तराय आचार्य ने दक्षिणापथ के एक वीर, कृष्णाजी नायक के माध्यम स भारतीय स्वाधीनता-सग्राम की एक ऐसी ही गौरवगाथा कही है।

उपन्यास का मूल उद्देश्य यह दिखलाना है कि देश की स्वतन्त्रता की लडाई के लिए आज़ादी के मतवाले कितनी बडी-से-बडी कुर्बानी कर सकते है। अमानुषी बलिदानो के प्रतीक के रूप मे लेखक ने गगू कन्प्पली नामक ब्राह्मण योद्धा के महान और उदात्त चरित्र का निर्माण किया है। गगू

ब्राह्मण ने विदेशियो से निरन्तर लडते रहने के लिए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी को निछावर कर दिया । उसके जीवन का केवल एक लक्ष्य था— अब्राह्मण होकर, शत्रुओ का जासूस बनकर, अपने देशवासियो की निन्दा, भर्त्सना और दण्ड सहकर भी विदेशियो से लडते रहना । और यही उसने आजन्म किया ।

गगू कन्याली के साथ-ही-साथ कृष्णाजी नायक और काम्पिलीदेव के सजीव चरित्रो ने इस उपन्यास को बहुत ही रोचक बना दिया है ।

घटना वैचित्र्य, गति, वेग, कौतुहल एव औत्सुक्य के लिए किरात प्रदेश की घटनाओ का समावेश इसमे किया गया है, जो एक ऐतिहासिक सत्य भी है ।

कुल मिलाकर यह एक आदर्श ऐतिहासिक उपन्यास है। लेखक ने आरम्भ के अध्यायो में अपनी अध्ययन सामग्री के सूत्र और तत्सम्बन्धी विवरण देकर पुस्तक की उपादेयता को और भी बढा दिया है ।

गुणवन्तराय आचार्य ने विजयनगर राज्य से सम्बन्धित जितने भी उपन्यास लिखे है वे क्रमश हिन्दी पाठको के कर कमलो मे समर्पित करने का प्रकाशको का निश्चय है ।

सूची

१ पूर्वाध्याय

वीर विक्रम के सवत् की चौदहवी सदी। इस सदी मे दक्षिणापथ मे तुर्कों का आक्रमण अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच चुका था।

विक्रम सवत् १३७६ मे वारगल का पतन हुआ। सबल सरक्षण के साथ तीन-तीन बार तुर्कों के नाको चने चबवा देने पर भी वारगल का पतन हुआ! इस युद्ध ने महाराजा प्रतापरुद्र का बलिदान लिया! वारगल के युद्ध का एक सिपाही, कावेरी नदी के दक्षिणी तट-प्रदेश का निवासी, तमिल पाड्य-नायको मे एक नायक, कृष्णाजी महाराज प्रतापरुद्र का कटा हुआ मस्तक कर्नाटक राज्य के महाराजा वीर बल्लालदेव के पास लाया।

वीर बल्लालदेव सप्तसामन्तचक्रचूडामणि बनने का स्वप्न देख रहे थे। पाड्य-नायको के विरुद्ध आक्रमण करने का जाल बुन रहे थे! लेकिन उन्हे यह ध्यान न था कि सिर पर तुरुष्क-घनघटा छा रही है! विदेशी म्लेच्छ विजय-धर्म और भागवत भूमि को पादाक्रान्त करने की साजिशे रच रहा है! वीर बल्लाल की बडी इच्छा थी कि महाराजा प्रतापरुद्र को नीचा दिखाकर, उन्हे अपना मातहत सामन्त बना दे!

और उन्होने यह विचार प्रकट भी किया था!

सपनो के इसी काल मे, महाराजा वीर बल्लालदेव, जिनसे जीवन-मरण का जग खेलना चाहते थे, उन शत्रुओ मे से एक शत्रु महाराजा प्रतापरुद्र का कटा हुआ शीश दूसरा शत्रु कृष्णाजी नायक लेकर आया!

कृष्णाजी वारगल के विनाश और विध्वस का समाचार लेकर आया! वह यह समाचार भी लाया कि अधिकाश भारतीय भूमि तुर्कों की दासता मे चली गई है और अब शेष दक्षिणापथ को गुलाम बनाने के लिए म्लेच्छ तुर्कों के टिड्डीदल कावेरी नदी को पार करने के लिए तड़प रहे है।

तुर्को के आक्रमण की भीषणता वीर बल्लालदेव से छिपी नही थी। उस भीषणता का अनुमान यदि वे भी न लगा सके तो दूसरा कौन लगा सकता है? देवगिरि मे तुर्की-अधिकार को दृढ़ता दान करनेवाले, कलियुग

मे ‘कालयवन’ की भयकर उपाधि धारण करनेवाले मलिक काफूर से वे अपरिचित नहीं थे ! कृष्णा और भीमा नदी के बीच स्थित ‘देवगिरि’ का उसने विध्वस किया था !

क्योकि, मलिक काफूर ने कर्नाटक पर आक्रमण किया था, एक ब र नहीं—दो बार। और दोनो बार वीर बल्लाल हारे थे ! उस हार की याद आज भी वीर बल्लाल के कलेजे मे कसक रही है !

और कृष्णा और कावेरी के मध्य के प्रदेश मे मलिक काफ़ूर को ‘कर’ देनेवाला सामन्त बनकर उन्हे रहना पडा था ! इतना ही नही, अपमान चरम सीमा पर तब पहुँचा था, जब उन्हे दाँतो मे तिनका दबाकर म्लेच्छ मलिक काफूर के पैर चूमना पडे थे ! यह सब किसने किया ? सप्तसामन्तचक्रचूड़ा-मणि महाराज वीर बल्लालदेव ने, जिसके धौसे की धमक से धरती धूजती थी ! अपने स्वार्थ मे अन्धे होकर, अपने स्वदेशवासी बन्धु से एकता स्थापित न करने के कारण !

फिर मलिक काफूर ने मलाबार-केरल पर चढाई की और बल्लालदेव को साथ देना पडा ! अन्तहीन अपमान सहकर, बलिदान देकर, रेत की नीव पर खडे होकर ही बल्लालदेव कर्नाटक को अपने अधिकार मे रख पाए थे !

और इसलिए कि बल्लालदेव मलिक काफूर को कही धोखा न दे, उन्हे जमानत के एवज, अपना प्रिय पुत्र बल्लाल चतुर्थ मलिक काफूर के शाही दरबार मे बन्धक रखना पड़ा था ! जहाँ वह दिन मे दो बार सुलतान अला-उद्दीन खिलजी के सामने हाजिर होता था !

गुजरात के श्रीमन्त कुलवत जैन सेठ समराशाह थे। गुजरात के सूबा से, जो दिल्ली के सुलतान का साला था, समराशाह की घनिष्ठ मित्रता थी। समराशाह की मध्यस्थता पर बल्लाल चतुर्थ दिल्ली के उस बदीगृह से मुक्त हुआ था।

लेकिन कावेरी का दक्खिणी तट-प्रदेश आक्रान्ता तुर्कों से मुक्त न था। इस प्रदेश पर मूल पाड्य-नायकों का आसन और शासन था। प्रत्येक नायक अपने अधीनस्थ प्रदेश का सर्वेसर्वा था। लेकिन बाहरी हमला होने पर हरेक

नायक एक झडे के नीचे खडा होकर दुश्मन का मुकाबला करे—यह पाड्य सघ का नियम, आदेश और अनुशासन था ! इनमे, जो सबसे अधिक प्राचीन कुलोत्पन्न, अधिकाधिक वीर, बलवान् और चतुर होता वही नायक पाड्य-सघ का सघपति बनता ।

जिस समय कलियुग का कालयवन कृष्णा और कावेरी के बीच, कर्नाटक प्रदेश मे घूम रहा था और केरल के चेर राजा से युद्ध करने की तैयारी मे था, तब पाड्य-सघ का सघपति मदुरा का राजा, पाड्य-नायक था । इसी वीर सघ ने कालयवन मलिक काफूर का सामना किया था और उसे दिन मे ही तारे दिखलाए थे !

इसी समय एक करुण और घोर घटना घटी ।

भारत पर आज तक होनेवाले सभी विदेशी आक्रमणो के समय जो पापपूर्ण दुर्घटनाएँ घटी है, उसी प्रकार एक दुर्घटना मदुरा मे भी सामने आयी—परम्परागत था यह पाप ! सत्ता लोभी, धन-लोभी एक व्यक्ति का देशद्रोह !

मदुरा की पवित्र भूमि पर एक पापी देशद्रोही पैदा हुआ । वीर पुरुषो के वीर परिवार मे एक काला नाग पैदा हुआ । यह व्यक्ति था सुन्दर पाड्य ।

पाड्य-सघ का नेता बना निरन्तर मलिक काफूर से लोहा लेनेवाला, हारकर भी कभी हार न माननेवाला, युद्ध-भूमि को अपना 'शयन-कक्ष' बनानेवाला वीरवर पाड्य सघपति युद्ध-भूमि मे खेत रहा ।

पाड्य सघपति के तीन पुत्र थे । उसके दो रानियाँ थीं । एक रानी के एक राजकुमार, दूसरी के दो राजकुमार उत्पन्न हुए थे ।

महारानी का पुत्र युवराज था—अधिकार और परम्परा से ! उसका नाम था—सोमैया नायक । दूसरी रानी के दोनो पुत्रो के नाम क्रमश. वीर नायक और सुन्दर नायक थे ।

तुर्कों ने जब तमिलनाड मडल पर आक्रमण किया तो तमिलनाड ने पाड्य-सघ के वीर पुत्र सोमैया को रणागण मे नेतृत्व करने के लिए आमत्रण दिया, इस आमत्रण को स्वीकारकर, अपने पूज्य पिता के पद-चिन्हों पर

चलने के अभिलाषी सोमैया नायक ने अपना पैतृक अधिकार—मदुरा के युवराज का पद छोड दिया। वीर पाड्यो ने उसके भाल पर राजतिलक लगाया और वह राज्य छोड़कर, मदुरा के बाहर, तिरुपतिमलाई मे जाकर रहने लगा। और वहीं तिरुपतिनाथ की सेवा मे, भक्ति मे जोवन व्यतीत करने लगा। इधर युद्ध की तैयारियाँ होने लगी।

किन्तु सुन्दर नायक के सामने लोभ का जहरीला नाग जाग उठा।

इस स्वार्थी, विलासी, शौकीन, कुल-कलक ने सोचा कि युद्ध की क्या आवश्यकता? कर्त्तव्य का हिमाचलवत् भार किस हेतु? पहाड़ो मे भटकना, रूखा-सूखा, ठडा भोजन खाना, लेकिन तुर्को को सिर न झुकाना—यह भी कोई बुद्धिमानी है? राजाओ की शोभा के अनुकूल काम है? बडे भाई मे अक्ल नहीं है, तभी देश-प्रेम की अपनी हठ की पूँछ थामकर बैठे है! खुद भी परेशान होते है और सुन्दर को भी परेशान करते है। इससे तो अच्छा है कि तुर्कों की अधीनता स्वीकार कर ले, प्रति वर्ष उन्हे खिराज के रूप मे कुछ वराह (विजयनगर साम्राज्य मे चलनेवाले सोने का सिक्का) देते रहे। फिर तो मदुरा की वारागनाएँ, देवदासियाँ और नर्तकियाँ! काले नाग का फन विषैला होता है, जीवान्तक होता है, लेकिन उसकी काया तो कोमल होती है!

कोमल कायावान् इस सुन्दर पाड्य ने कालयवन को निमत्रण दिया—मदुरा पर चढ़ाई करने का! उसने वचन दिया कि वह म्लेच्छ सेना के सरदारो को मदुरा के दुर्गो, नदियों के पुलो और रास्तों का भेद बतला देगा!

और कलियुग का कालयवन इतना बुद्धिमान अवश्य था कि ऐसा अवसर हाथ से न जाने दे। उसने सेना भेजी। और गैरसप्पा नामक एक सरदार भेजा। मलिक काफूर ने इस बात की व्यवस्था न की कि सुन्दर इस सेना का अधिकारी रहेगा, या सेना सुन्दर पर अपना अधिकार रखेगी! न ही तुर्क सरदारों को ही यह ज्ञात था।

सुन्दर के आमन्त्रण पर आनेवाली विदेशी सेना ने मदुरा पर अधिकार किया। ।उस समय मलिक काफूर का डेरा दोरासमुद्र मे था और दोरासमुद्र कर्नाटक राज्य मे था।

दोरासमुद्र मे रहकर मलिक काफूर सुरक्षित था। यहाँ उसे अनन्त लाभ

था। यहाँ रहकर वह केरल के चेरो को दबा सकता था। बदामी के बचे-खुचे सोलकियो को नष्ट कर सकता था। देवगिरि के अवशिष्ट अवशेषो को तहस-नहस कर सकता था। उसकी बड़ी लालसा थी कि कन्याकुमारी तक पहुँचे और वहाँ एक मस्जिद खडी कर दे। वहाँ कर्नाटक का राजा—नाम-मात्र का राजा वीर बल्लालदेव उसकी सेवा मे समुपस्थित था। आवश्यकता पडने पर उसकी सेना सहयोग के लिए लैस खडी थी।

वीर बल्लाल तृतीय साधारण व्यक्ति न था। वह बडा चतुर और चालाक आदमी था। वह जानता था कि भले ही कालयवन आज दोरासमुद्र मे बैठा रहे, भले ही आज उसे व्यकटेश के देवमन्दिर मे ही कालयवन की पूजा करनी पडे, लेकिन एक-न-एक दिन कालयवन जानेवाला है। दिल्ली से दूर वह नही रह सकता। और अलाउद्दीन खिलजी-जैसा शक्की आदमी इसे बहुत दिनों तक यहाँ रहने देगा नही। जब भी वह जाएगा, तब वीर बल्लाल तृतीय दक्षिणापथ मे अकेला—एक राजा रह जाएगा। अकेला रहने पर होयसल राज्य-वश का दो सौ वर्षो का महास्वप्न वह प्रत्यक्ष सिद्ध कर सकता है। वह दक्षिणापथ का सप्तसामन्तचक्रचूडामणि बन सकता है।

ऐसी परिस्थिति मे वह पाड्य-सघ पर आक्रमण नहीं कर सकता था। वैसे, उसकी गणना के अनुसार, मलिक काफ़ूर उसका होयसल राज्य का ही काम कर रहा था। छोटे-बडे दुर्गपालों, सामन्तों, मडलों, राज्य-वशो का मूलोच्छेदनकर मलिक होयसल राज्य की भलाई कर रहा था। मलिक के पीछे चलते वीर बल्लाल का काम आसान हो रहा था—दक्षिण भारत का सप्तसामन्तचक्रचूडामणि बनने के लिए जो घोर, कठोर परिश्रम आवश्यक था, वह कम पडता जा रहा था।

इस दृष्टि से उसने सुन्दर का साथ दिया। उसे सैनिक सहायता दी। सुन्दर के मदुरा का नायक, राजा बन जाने पर, उसे अपनी बहन ब्याह देने का वचन भी दिया।

सुन्दर की कामना पूरी हुई—और न भी हुई। आततायी तुरुष्कों ने विभीषण की सहायता से मदुरा पर विजय प्राप्त की। वीर पाड्य मारा गया। घर-बार, द्वार-द्वार लूटा गया। म्लेच्छो ने मदिरो की नगरी मदुरा का महा-

पमान किया, उसे अपवित्र किया और वहाँ नया सुलतान गद्दी पर बिठाया। लेकिन यह नया सुलतान सुन्दर नहीं था, जिसने सुलतान बनने का स्वप्न देखा था, और इस स्वप्न की सिद्धि के लिए, अपनी ही मा के बेटे—अपने ही भाई महावीर वीर पाड्य को धोखा दिया था। सुलतान बना तो सुलतान का आदमी—गैरसप्पा। और परिस्थिति ऐसी आई कि सुन्दर पाड्य को प्राण बचा-कर भागना पडा। अपनी शिकायते लेकर सुन्दर दिल्ली दरबार मे गया।

फिर, बल्लालदेव की गणना, अनुमान-कल्पना ठीक निकली—सुलतान अलाउद्दीन खिलजी ने मलिक काफ़ूर को वापस बुला लिया।

इन विजयावलियो के कारण दक्षिण भारत ने मलिक काफ़ूर को कलि-युगी कालयवन की उपाधि दी थी। विजय-यात्रा पर प्रस्थान करते समय, मलिक काफ़ूर ने जिस दिल्ली से विदा ली थी, दक्षिण से वापस लौटने पर दिल्ली—वही दिल्ली नही रही थी। बारह-तेरह वर्ष मे दिल्ली का रग-रूप बदल गया था। राजनीति की राहे बदल गई थीं। सुलतान की सूरत बदल गई थी। विदेशी दिल्ली देशी बन गई थी। 'उर्दू' दिल्ली हिन्दुस्तानी बन गई थी।

मलिक काफ़ूर ने जिस दिल्ली नगरी को छोडा था, वह उर्दू-दिल्ली थी। सैनिकों की छावनी थी। उसमे तातार, खुरासान, बलूच, मकराना और कई अन्य जातियो के सिपाही थे। लूट का अमुक हिस्सा मिलता था और लश्करी लगरखाने से कपडे और खुराक मिलती थी। यही इनकी सिपाहीगिरी थी। इन सिपाहियों पर एक सिपहसालार रहता था।

हिन्दुओं की फूट का अन्त न था। छोटे-छोटे और बडे-बडे कई राज्यो और प्रदेशो मे देशद्रोहियो और विश्वासघातियो की कमी न थी। पारस्परिक बखेड़ो का पार न था। जनता से शासको का सम्पर्क टूट चुका था।

इस स्थिति से लाभ उठाकर लूट-मार करनेवाले, मुल्क को तबाह करने-वाले, गुलामी के लिए लोगो को पकडनेवाले और लश्कर के सिपाहियो की पाशविक भूख को बुझाने के लिए औरतो का हरण करनेवाले पतितों से दिल्ली भरी पड़ी थी।

इस प्रकार के प्रपचों मे भाग लेनेवाले एक सिपहसालार जलालुद्दीन

खिलजी ने अपनी बेटी का ब्याह गैरसप्पा से किया। इस घटना पर एक भयकर बखेडा उठ खडा हुआ था।

जलालुद्दीन खिलजी की बेटी का ब्याह तो हुआ, लेकिन उसने एक साधारण सिपाही की बीवी बनने से इनकार कर दिया। उसने अपने पति से कहा—या तो आप इतना जर-जेवर इकट्ठा करे कि मैं उसमे गड जाऊँ या आप मेरे वालिद के घर, घर-जमाई बनकर रहे।

अपने पिता की सिपहसालारी की अभिमानिनी इस लडकी ने मानो जमीन की जडो मे से निकालकर एक तूफान बाहर बिखेर दिया।

अपने दो हजार सिपाहियो को साथ लेकर लूट का धन कमाने के लिए गैरसप्पा दिल्ली से चल पडा। चलता-चलता वह गुजरात के प्रान्तर मे आ पहुँचा। आते ही उसने गुजरात के सामने अपनी माँग पेश की—मुझे रास्ता दो। मैं देवगिरि पर चढाई करना चाहता हूँ। आपसे मेरा झगडा नही है। मै देवगिरि जाना चाहता हूँ।

जिन दिनो गुजरात ने उसे रास्ता दिया, उन दिनो देवगिरि के यादव-राज रामचद्र ने कर्नाटक की राजधानी दोरासमुद्र पर आक्रमण कर दिया था, किन्तु उसने यह न सोचा था कि उसकी अनुपस्थिति मे राजधानी की रक्षा का क्या होगा?

परिणाम म देवगिरि लूटा गया। लूट का अनन्त भडार लेकर गैरसप्पा दिल्ली पहुँचा। उसकी सम्पत्ति के आकर्षण ने उसे अनेक नए साथी और सिपाही दिए।

उसने जलालुद्दीन को जान से मार डाला। जलालुद्दीन की बेटी को सच-मुच ही अपनी लूट के धन के ढेर मे जिन्दा गाड दिया। और अलाउद्दीन खिजली का नाम धारणकर, दिल्ली की लश्कर का सिपहसालार बना।

इसी प्रकार रास्ता माँगकर, उसने गुजरात, जालौन, रणथम्भौर और चित्तौड पर विजय पाई। और इन चारों को यह न सूझा कि मिलकर शत्रु का सामना करे। चारो में से किसी को इतना संकोच न था कि दूसरे हिन्दू राज्य पर आक्रमण करनेवाले तुर्कों को रास्ता न दे। इस प्रकार, तुर्कों से अलग-

अलग लड़कर चारो राज्य नष्ट हुए। उनके पराक्रम का वर्णन करते हुए सस्कृत, गुजराती और डिंगल मे चारण-भाटो ने कई महाकाव्य लिखे है!

'यदुवश प्रताप' के लेखक भागवत-श्रेष्ठ आचार्य व्यकटनाथ वेदान्त-देशिक थे। गुजराती मे महाकाव्य लिखनेवाले पद्मनाथ थे।

चारण-भाटो ने वीर काव्य लिखे, पर उनमे से एक ने भी यह न लिखा कि अपने राज्य की सीमा मे तुर्कों को मार्ग देनेवाले राजा कितने मूर्ख थे!

देशद्रोहियो और विश्वासघातियो को आगे बढाकर, अलाउद्दीन खिलजी का सिपहसालार बनकर मलिक काफूर विक्रम सवत् १३६० के लगभग दिल्ली से चला था। उस समय चारो दिशा से आए लुटेरे, युद्धजीवी, नए-नए जग के प्यासे मलिक और सरदार दिल्ली के बाजारो और मीनाबाजारो मे भटकते थे!

लगभग बारह वर्ष के बाद जब मलिक काफूर वापस आया—उसे वापस बुला लिया गया—तब उसने देखा कि दिल्ली की सूरत बदल गई है।

उसने देखा कि दिल्ली का सुलतान अलाउद्दीन खिलजी सिकन्दर-सानी बनने का स्वप्न देख रहा है। सिकन्दर-सानी के नाम से अपना सिक्का चलाते देखा! छोटे से सिपहसालार से सुलतान बनते देखा! लश्कर और आक्रमण की बात करनेवाले अपने सिपहसालार अलाउद्दीन को उसने मुल्क के बन्दोबस्त और हिफाजत की बाते करनेवाले सुलतान सिकन्दर-सानी के रूप मे देखा!

और दिशा और दशा इस प्रकार बदल गई कि तुर्को मे भयकर असन्तोष उत्पन्न हो गया। सेना मे निर्दयता और सकुचितता बढी और सुलतानो के कत्ल और खून की परम्पराएँ बनीं।

अलाउद्दीन के अपने चुने हुए और विश्वासपात्र, मलिक और सरदार इस या उस जग मे, दिल्ली से बाहर थे। वे लोग विदेशो से अपनी-अपनी छोटी-बडी टोलियाँ लाये थे, लुटेरे सिपाहियो की। तब, सुलतान के आस-पास दूसरे सिपाही और मलिक आए। विजित प्रदेशो मे, सूबाओ की नियुक्ति होने पर ही अलाउद्दीन खिलजी वीर-बहादुर सैनिक कहा जा सकता है। जलोदर के रोग से पीड़ित सुलतान, ज्यो-ज्यों युद्ध-भूमि मे सालारजग के रूप मे स्वयं उपस्थित होने मे असमर्थ होता गया, त्यो-त्यो देश के प्रबन्ध का स्वप्न

उसे अधिकतर प्रिय लगने लगा। उसने अपने आस-पास के लोगो मे से कई लोगो को सूबा बनाया। मुल्क, बन्दोबस्त और सल्तनत की चर्चाएँ शुरू हुई। मुल्क के बन्दोबस्त के कारण, सिपाहियो के लुटेरेपन पर अकुश लग गया। मलिकों से जो समझौते हुए थे, उनके अनुसार, उनकी सेनाओं की सख्या और विशेषता का लेखा-जोखा लिया गया। मलिको के चारो ओर सरकार की ओर से व्यवस्था करनेवाले, अमीरो, जमादारो, मुशियो और हाकिमो का जमघट लग गया। इससे मलिको का निर्बंध, उच्छृङ्खल जीवन सीमित बना। स्वाभाविक था कि उन्हे ये नए नीति-नियम पसन्द न आएँ।

सरकारी अधिकारियो और मलिको के बीच बडा बखेड़ा पैदा हुआ। अलाउद्दीन खिलजी-जैसे सुलतान के लिए भी इस बखेडे को शान्त करना कठिन हो गया।

उसने मलिक काफ़ूर को दक्षिण से वापस बुलाया और उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर देवगिरि और वारगल मे सूबाओं की नियुक्ति की।

बाद में, क्या हुआ, स्थिति स्पष्ट नहीं है। सुलतान अलाउद्दीन खिलजी सिकन्दर-सानी जलोदर के कारण मर गया। कुछ लोगो का यह भी कहना है कि मलिक काफ़ूर ने उसे जहर दिया, लेकिन इतना स्पष्ट है कि मलिक काफ़ूर के दिल्ली-प्रवेश के साथ ही अलाउद्दीन खिलजी का प्राणान्त हुआ—काल मृत्युवश अथवा अकाल मृत्युवश, यह आज तक रहस्य है!

मलिक काफ़ूर यानी मलिकों का भी मलिक! उसने मरहूम सुलतान के बडे बेटे को बन्दी बना लिया। और सबसे छोटे बेटे को गद्दी पर बिठा दिया। कुछ समय के लिए, मलिको और अमीरों के बखेडे मे, सेना का वर्चस्व स्थापित हुआ।

अमीर भी कुछ कम नहीं थे। उनका एक नेता था, खुशरू खॉं गुजराती, उसने मलिक काफ़ूर को कत्ल किया। खुशरू खॉं वास्तव मे कानोजी परवारी नामक एक गुजराती क्षुद्र था। धर्म-परिवर्तन पर मुसलमान बन गया था।

उसने न मलिक काफ़ूर का ही काम तमाम किया, वरन् दूसरा एक और काम भी किया। सुलतान के बडे बेटे को बन्दीगृह से छुडाकर तरत पर बिठाया। इसका नाम था मुबारक खिलजी। फिर खुशरू खॉं ने मुबारक खिलजी

के सभी भाइयो का वध कर दिया। फिर कुछ समय उपरान्त उसने मुबारक का भी खून कर दिया और स्वय सुलतान बन बैठा!

अब मलिको की बारी थी। उनके अग्रणी मलिक गाजी ने खुशरू खॉ का सफाया किया और तुगलक-वश की स्थापना की। मलिक गाजी गयासुद्दीन तुगलक के नाम से तख्तनशीन हुआ। उसने 'लश्करी' और 'मुल्की' का भेद और बखेडा मिटाने के लिए, मलिको को मुल्की बन्दोबस्त का कार्य-भार भी सौंप दिया।

उसका बेटा—मलिक उलूग खॉ देवगिरि का सूबा बना। उसके साले का बेटा गुजरात का सूबा बनाया गया, जिसका नाम था मलिक अबु राजी।

दक्षिण मे मलिक काफूर जिस काम को अधूरा छोड गया था, उसे मलिक उलूग खॉ ने आगे बढाया।

बाद मे वह मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली का सुलतान बना।

मुहम्मद तुगलक अनेक दृष्टियो से विचित्र व्यक्ति था। वह कवि था, शिल्पी था, चित्रकार था। हिसाब-किताब का बडा जानकार था। उसका लेखन और उसके हस्ताक्षर बहुत सुन्दर थे। मोती-जैसे अक्षर वह लिखता था। विद्वान् था, ज्ञानी था—कई धर्मो और दर्शनो का ज्ञान उसे था। अप्रामाणिकता उसे पसन्द न थी। सगीत से उसको अपार प्रेम था। उस काल के सुलतानो मे सहज ही न पाए जानेवाले सभी गुण उसमे थे। अपने रुक्के वह स्वय लिखता और दूसरो के लिखे हुए पढता और हिसाब-किताब की जॉच करता।

इतनी योग्यताएँ जिसमे थीं, उसमे दो और गुण-अवगुण थे—वह इतना निर्भय और हठी था कि उसकी निर्भयता का बेपरवाही मे और हठ को कठोरता मे बदलते समय न लगता। उसका कोप भीषण था। वह जिस चीज को सच समझता, उसके लिए किसी की जान ले लेना उसके लिए कठिन न था। प्रतिदिन उसके महल के सामने हाथी के पैरो मे कुचले गए अपराधी आदमियों की सौ-पचास लाशें पड़ी रहतीं। गणित के अपने ज्ञान के फलस्वरूप उसने चमडे के सिक्के चलाए और मलिकों और अमीरों का सघर्ष टालने के

लिए एक निर्णय किया—राजधानी दिल्ली से हटा दी जाए, दूर से दूर ले जाई जाए।

अपने इस विचार को उसने भारी लापरवाही से पूरा किया। विदेशी साथियो से बचने के लिए उसने दिल्ली से हटाकर अपनी राजधानी दौलताबाद ले जाना तय किया। उसने दिल्ली की सारी बस्ती को दौलताबाद जाने का हुक्म दिया। जब दौलताबाद पहुँचे तब उसे महसूस हुआ कि दक्षिण-वासी हिन्दुओ के भय से दौलताबाद सदैव सकट मे रहेगा—इस विचार के आते ही उसने फिर से हुक्म दिया कि राजधानी वापस दिल्ली जाए। सारे नागरिक भी जाएँ। और इस आवागमन मे हजारो मुसाफिर थकान और प्यास से मर गये, हजारो लुट गये और जब लुटे हुए लोगो ने मुहम्मद तुगलक से फरियाद की, तो उसने फरियादियो को हाथी के पैरो-तले कुचल दिया।

अलाउद्दीन की भयकरता और मुहम्मद तुगलक की बेपरवाही के बीच, मुहम्मद तुगलक का बाप मलिक गाजी, गयासुद्दीन तुगलक अपने स्वल्प-कालीन जीवन मे मानवीय सहानुभूति का उदाहरण बन गया।

गयासुद्दीन तुगलक के दो बेटे थे—मलिक फखरुद्दीन उर्फ मलिक उलूग खाँ। दूसरे का नाम मलिक रुनकुद्दीन, वह तो पिता की मृत्यु के पहले ही मर गया। उसका एक साला था, उसका बेटा गैरसप्पा बहाउद्दीन सागर का सूबा बना। गुजरात, देवगिरि और अभी ही जीत गये वारगल, इन तीनो सूबों की देख-रेख गैरसप्पा बहाउद्दीन की जिम्मेदारी थी।

और मलिक फखरुद्दीन मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली का सुलतान बना।

उस समय गुजरात का मुसलमान सूबा था मलिक अबु राजी।

हमारे उपन्यास के आरम्भ मे, दिल्ली की सल्तनत की यही अवस्था थी।

इसी समय मलिको और अमीरों के बीच तीव्र मतभेद उठ खडा हुआ। दिल्ली की सल्तनत की छाया दक्षिण मे कृष्णा नदी के उत्तरी तट तक फैल गई थी। कृष्णा नदी से लेकर कन्याकुमारी तक—कावेरी और ताम्रपर्णी नदियो के मध्यवर्ती, दक्षिण भारत मे, मदुरा मे सुलतान अहसानशाह रहता

था। वह दिल्ली की सल्तनत का नाम मात्र का मातहत था, व्यवहार मे वह स्वतन्त्र था।

जिस प्रकार, पुरानी गुजराती मे, उस समय की भाषा मे सुलतान को 'सुरजाण' कहते थे, उसी प्रकार दक्षिण मे सुलतान को 'सुरताल' कहते थे। सुरताल अहसानशाह का उत्तर भारत से जो सम्बन्ध स्थापित था, वह पूर्वी समुद्र के तट-प्रदेश पर आधारित था। तुर्क बगाल तक आ गए थे। परन्तु वहाँ उनका राज्य सुदृढ न हुआ था।

उस समय कलिंग देश (उडीसा) मे गजपति वश के राजा राज्य करते थे। कलिंग के गजपति का विवाह कर्नाटक के वीर बल्लालदेव की बहन से हुआ था। यह रानी विधवा हो गई थी। गजपति राजा तुर्को के वफादार सामन्त थे, इतने वफादार कि तुर्को से अधिक तुर्काई वे प्रदर्शित करते। कलिंग के हिन्दुओ को तुर्को से अधिक गजपति का भय था—क्योकि वीर बल्लाल तृतीय ने जिस स्वप्न को प्रतापरुद्र की शहादत पर स्वय छोड़ दिया था, उसे अब गजपति ने अपना लिया था। यह स्वप्न था—सप्तसामन्तचक्र-चूडामणि बनना।

यह कोई नया स्वप्न नहीं था। वेद काल मे राजा सुदास ने दाशराज्ञ से भयकर सग्राम किया था। और परशुराम ने भी कई बार धरती को क्षत्रिय-विहीन कर दिया था। यह थी हिन्दू राजाओं की परम्परा।

महाराज युधिष्ठिर ने महाभारत के सर्व-सहार पर इस स्वप्न की सिद्धि पाई थी। चाणक्य ने नन्द-वश के निकन्दन पर उस स्वप्न को पुनर्जीवन दिया था।

किन्तु यह स्वप्न आगे जाकर हिन्दुओ मे भयकर फूट का कारण बना। तुर्कों ने हिमालय की तलहटी से, कृष्णा नदी के किनारे तक की भरत-भूमि पर अधिकार किया, सो अपनी शक्ति से अधिक इस फूट के कारण।

जितने राजा, उतने ही सप्तसामन्तचक्रचूडामणि बनने के लिए उम्मीद-वार। प्रत्येक दूसरे सात राजाओ को पराजित कर चक्रचूडामणि बनने का कार्यक्रम बनाता था। फिर वह भले ही तुर्को से हारे, भले ही तुर्कों को कर दे। भले ही वह तुर्कों के सामने कायर, पामर और पेट के बल चलनेवाला आदमी

हो। लेकिन दूसरे हिन्दू राजाओ के मध्य तो वह चक्रचूडामणि बनकर ही रहना चाहेगा। इस हेतु की पूर्ति के लिए उसे तुर्को से मदद लेने मे भी शर्म नही थी।

सिर पर जब कालयवन घोर गर्जन कर रहा था तब देवगिरि के राजा रामचन्द्र ने कर्नाटक के राजा होयसलराज बल्लालदेव पर, इसी स्वप्न के निमित्त, आक्रमण कर दिया था। उसने मलिक काफूर से समझौता कर, उसकी खुशामद कर, उसके चरण भरे दरबार मे धोकर उस जल का आचमन लेकर सामन्त रामचन्द्र ने होयसलराज पर अधिकार पाने का प्रयत्न किया था।

अन्तत वह भी गया और उसके बाद, उसका जामाता हरपालदेव गद्दी पर बैठा किन्तु तुर्कों ने उसकी खाल खिचवा ली। और देवगिरि के राजवश को नष्टकर उसे तुर्को के सूबा के शासनान्तर्गत किया।

देवगिरि के बिनाश पर कर्नाटक की बारी आई। गुजरात, जालौर, देवगिरि, रणथभौर, चित्तौड और बग आदि की दुर्दशा देख लेने पर भी होयसलराज बल्लालदेव ने चक्रचूडामणि बनने का हठ नहीं छोड़ा। परिणाम यह हुआ कि कलियुगी कालयवन को उसने दोरासमुद्र के जनमदिर मे शीश झुकाया। कालयवन मलिक काफूर के चरणों मे उसे अपना राजमुकुट रखना पडा। और भी कई अपमान सहने पडे।

लेकिन दक्षिण के सौभाग्य से उसकी भाग्य देवी अभी सोई न थी, जाग रही थी। इस देवी का नाम था सह्यवासिनी देवी। इस देवी की कृपा से वृद्धा राजमाता ने प्रबल पराक्रम दिखलाया। इसकी कृपा से एक वृद्ध, अघोरपथी सन्यासी ने अपने हठयोग की आठ वर्ष की समाधि छोड़ दी।

काकतीय वश की राजमाता रुद्राम्मा ने अपने ही पुत्र का सिर काटकर बल्लालदेव के पास भेज दिया, ताकि देश की एकता अखड रहे।

भगवती रुद्राम्मा यदुवश की अमर नारी थी। उनके कोई भाई न था, इसलिए उनके पिता ने उन्हे पुरुष-वेश मे अपनी राजगद्दी पर बिठाया।

दक्षिण भारत मे अगस्त्य पूजा की प्रथा प्राचीन है। दक्षिणवासी अगस्त्य को वेद का अवतार मानते थे। इसलिए लोग भगवती रुद्राम्मा को

लोक प्रशस्तियो मे लोमाम्मा भी कहते है। ऐसी अनोखी नारी ने आजीवन पुरुष-वेश पहनकर अपने सैनिको और सामन्तो पर शासन किया था। उसने अपने वारगल को म्लेच्छ, किरात, शर्वरी, बीदर, गौड और देवगिरि आदि के अनेक आक्रमणो से सुरक्षित रखा था। शत्रु की सेना यह सुनते ही कि वारगल की सेना के हरावल मे सबसे आगे स्वय भगवती रुद्राम्मा आ रही है तितर-बितर हो जाती थी।

जब रुद्राम्भा वृद्ध हो गई तो उन्होने अपने पौत्र प्रतापरुद्रदेव का अपने हाथो अभिषेक किया और स्वय वानप्रस्थ ले लिया।

प्रतापरुद्रदेव भी अपनी दादी के समान ही वीर था। उसने हायसलराज, गजपति और तुर्को से वारगल की रक्षा की थी। इसके अलावा उसने दिल्ली के सुलतान गयासुद्दीन तुगलक के सबसे बडे शाहजादे मलिक उलूग खॉ को वारगल के मैदानो मे तीन-तीन बार हराकर नीचा दिखाया था। इससे तुगलक सुलतान अपने-आपको बहुत अपमानित पा रहा था। इसलिए उसने चौथे आक्रमण की तैयारी मे मालवा, गुजरात, दिल्ली, देवगिरि और सागर की सेनाएँ एकत्र कीं। और वारगल पर आक्रमण किया। इस आक्रमण मे कलिंग देश के गजपति राजा ने तुर्कों का साथ दिया। इस प्रकार छोटे से वारगल पर सारी देशी और विदेशी सेनाएँ चढ आई।

वारगल बिलकुल अकेला था। ठेठ महाभारत के काल से भीम पराक्रम और भीषण मनोबल के लिए प्रसिद्ध पाण्ड्य-सघ, जो कावेरी के उस पार स्थित था, इस समय अपनी जाति की रक्षा की चिन्ता मे पडा था।

इधर होयसलराज वीर बल्लालदेव खुश था कि तुर्कों ने वारगल पर आक्रमण किया। यदि तुर्क आक्रमण न करते तो स्वय वीर बल्लाल वारगल पर आक्रमण करने का स्वप्न देख रहा था। इसलिए तुर्को का आक्रमण उसके भावी कार्यक्रम को आसान बना रहा था। वह सप्तसामन्तचक्रचूड़ामणि बनने के लिए किसी सातवे राजा को मारने या हराने के अवसर की ताक मे था। लेकिन अभी उसकी मनशा पूरी न हुई थी। क्योंकि तुगभद्रा और कृष्णा के बीच मे बसनेवाले किरातों की कोई जाति न थी, वे सिर्फ किरात थे। ये लोग तुर्कों से तनिक भी न डरते थे क्योंकि उनके पास राज्य तो था नहीं कि

जिसे तुर्क छीन लेते। वे तो विजयी सेना के साथ रहकर पराजितो को लूटने मे भाग लेते।

केरल के चेरो और चोलो का नाश हो चुका था। बदामी के सोलकी नष्ट हो चुके थे। कल्याणी के सोलकी होयसलराज के अधीन थे। कोकण मे शिलाहार थे, किन्तु उन्हे भी तुर्को ने आक्रान्त किया था। परिणाम मे राज-परिवार नष्ट-भ्रष्ट हो रहे थे। एक ही वश-वृक्ष की दो शाखाओ के समान देवगिरि के यादव और वारगल के काकतीय राज-परिवार परस्पर एक-दूसरे के शत्रु बने थे।

इस प्रकार, जब कि दक्षिण के सभी राजा तुर्को का आधिपत्य स्वीकार कर चुके थे, तब सचमुच ही वारगल अकेला मैदान मे डटा था। उसे पराजित करने के लिए उधर ठेठ मुलतान से मलाबार तक के सभी सूबाओ की सेनाएँ एकत्र हो रही थीं। इधर वारगल की सहायता के लिए एक आदमी तक न था!

फिर भी, अचानक एक वीरवर व्यक्ति वारगल की रक्षा के लिए आ डटा। उस समय वि० स० १३७६ मे समस्त पाड्य-सघ मे दो मोर्चों पर युद्ध चल रहा था। एक तो मदुरा के सुलतान अहसानशाह से—मलिक काफूर-द्वारा मदुरा-विजय के लिए भेजी गई सेना के सेनापति से। यह सेनापति मदुरा-विजय पर मदुरा का सुलतान बन बैठा था। दूसरा, सप्तसामन्तचक्र-चूडामणि बनने के सपने देखनेवाले वीर बल्लालदेव से। उस वक्त तमिलो को इतना अवसर और अवकाश न था कि तेलगाना की सहायता के लिए चलते। प्रत्येक घर का प्रत्येक नौजवान घर बार छोडकर, पहाडो और वनो की शरण मे चला गया था। उनका नारी-समुदाय या तो नौकाओं और जल-यानो मे बैठकर पूर्वी समुद्र की तरगो पर तैर रहा था या सिंहल (लका) द्वीप मे पहुँच चुका था। इनमे से कुछ नारियाँ ऐसी भी थी जो कही अन्यत्र न जाकर, अपने पतियो और पुत्रो के साथ पहाडो और वनों मे बैठी थी और अपने वीरो के लिए भोजन-पान का प्रबन्ध करती थीं।

गाँव के गाँव खाली हो गए थे। मदिर-मदिर से देव-प्रतिमाएँ हटा ली गई थीं। तुर्कों को सूने गाँव और सूने मदिर मिलते, जिन्हे जलाने मे उन्हे

मजा न आता ! दस-दस, बीस-बीस, पचास पचास कोस तक तुर्कों को अपने घोड़ो के लिए घास न मिलती और अपने लिए अन्न अथवा पशुओं का मास नही मिलता ।

इस प्रकार के भयकर सगर रचनेवाले पाड्य-सघ का एक पराक्रमी, महाबली, अरुण-तरुण वारगल के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए आ पहुँचा—उसका नाम था, कृष्णाजी नायक ।

वारगल का विनाश दिन-दिन निकट आ रहा था । शत्रु-सेनाएँ चढती-बढती चली आ रही थीं । आखिर, एक दिन वह भी आया, जो वारगल के काकतीय राज्य और राज-परिवार का अतिम दिन था ।

उस दिन चडविक्रमा, भगवती रुद्राम्मा ने अपने विक्रमशील जीवन की परम पराकाष्ठा के प्रज्वलित प्रमाण-रूप भयकर पराक्रम दिखलाया ।

वृद्धा माता ने अपने वार्द्धक्य और आयु-जन्य निर्बलता पर सवारी की और तलवार के एक ही झटके से अपने पोते का सिर उतार लिया और कृष्णाजी नायक के हाथ उस सिर को होयसलराज वीर बल्लालदेव के पास भेज दिया ।

सह्यवासिनी देवी ने जिस प्रकार भगवती रुद्राम्मा देवी से यह कार्य पूरा करवाया, उसी प्रकार दूसरे वृद्धजन के मन में भी दक्षिण भारत की चिन्ता-रेखा का उदयन कराया ।

भगवान् कालमुख विद्याशकर महातपोधन थे । दक्षिण मे, म्लेच्छो के आवागमन के पूर्व, चारों सम्प्रदाय परस्पर लड़ते-झगड़ते थे और एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयास करते थे । ऐसे सम्प्रदाय चार थे—एक था वीर शैव सम्प्रदाय, लिंगायत । इसमे किसी प्रकार की जाति-पॉति नहीं थी । कोई ऊँच-नीच इसमे नहीं था । ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक सभी एक पक्ति में भोजन करते । राजा-प्रजा मे कोई भेद नहीं था । 'शिवजी' के अतिरिक्त वे समस्त धर्मशास्त्रों और मदिर-देवालयों को अस्वीकार करते थे । धार्मिक कट्टरता मे वे मुसलमानो से भी बढ-चढ़कर थे और उन्हें भी सबक सिखा सकते थे । कावेरी तटवासी पाड्यों का यह सम्प्रदाय, दूसरे किसी सम्प्रदाय को माननेवाले

व्यक्ति को द्रोही मानता था। किसी दूसरे साधु, देवता, मदिर, शास्त्र को मानना धर्मद्रोह था।

और घर छोड़कर, घर की बहू को छोडकर, गॉव छोडकर, गॉवो को अपने हाथो जलाकर, वर्षों वनो मे वासकर तुर्कों से अखड सग्राम लड़नेवाले पाड्य इसी सम्प्रदाय के थे और सारे भारत मे अकेले ही थे, जो तुर्कों से लड रहे थे।

दूसरा सम्प्रदाय शुद्ध शैव-सम्प्रदाय—वेद, पुराण और देव-पूजा आदि मे विश्वास रखनेवाला था। मदुरा से पूर्वी समुद्र तक वीर शैवो की सख्या बहुत थी। इधर मदुरा से पश्चिमी समुद्र तक शैवो का बहुमत था। चेर, चोल और यादव शैव थे।

तीसरा सम्प्रदाय था—भागवत् सम्प्रदाय। इसकी स्थापना श्रीवल्लभाचार्यजी ने की थी। श्रीरामानुजाचार्य और श्रीवेदान्त देशिक महाराज ने इस धर्म का विकास किया था। वारगल के अतिम घेरे के समय होयसलराज ने इस सम्प्रदाथ को अगीकार किया था।

सप्तसामन्तचक्रचूड़ामणि की उपाधि की खोज मे वीर बल्लालदेव पहले शैव थे। फिर उन्होंने दक्षिण भारत के चतुःसमय मे से चौथा समय भी अपनाया और कुछ काल तक जैन-सम्प्रदाय का पालन किया। उन्होंने जैन-सम्प्रदाय मे एक बडी मर्यादा देखी। जैनाचार्य सिद्धसेन सूरी और नागकीर्ति महाराज सफल साधु और सफल कवि थे।

परन्तु इनमे से किसी सम्प्रदाय ने उन्हे परमेश्वर के प्रतिनिधि के रूप मे सीधा स्वीकार नहीं किया था। प्राचीन काल के जैन महापुरुषों के चरित्र वे लिखते और लोगो को सुनाते। तीर्थंकरो की पूजा का महात्म्य लोगों को समझाते। किन्तु इनमे से किसी ने भी वीर बल्लाल को तीर्थंकरो का वारिस नही बतलाया।

राजाओ से यदि सम्प्रदायो को यदा-कदा सघर्ष करना पडे तो, सब सम्प्रदायो मे वैष्णव-सम्प्रदाय सबसे आगे रहेगा—इसमे दो मत नही हो सकते।

भगवान् रामचन्द्र और उनकी रानी सीता, दोनों के परिवार था। वे

साक्षात् विष्णु के अवतार थे। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण भी विष्णु के अवतार थे। परन्तु उनके एक नहीं, सोलह हजार रानियाँ थी, फिर भी वे राजा भी थे और ईश्वर के अवतार भी थे। बस, इसी आधार पर वेदान्त-देशिक महाराज ने वीर बल्लाल को अपने यदुवश पर लिखे गए ग्रन्थ मे, श्री कृष्ण की वशावली मे उत्तराधिकारी बताया और प्रमाणित किया। अब क्या था, होयसलराज ने जैन-सम्प्रदाय को अन्तिम नमस्कार किया और अपने राज्य की सीमा मे रहनेवाले सभी जैन साधुओं, और उनके अन्य लागो को 'नास्तिक' कहकर, निकाल दिया और स्वय परम् भागवत बने।

लेकिन विस्मय की बात है कि इन चारो सम्प्रदायो के अनुयायी और आचार्य भी भगवान् कालमुख विद्याशकर के शिष्य थे!

यह अद्भुत, असम्भव और आकस्मिक सगठन अशक्य था किन्तु शक्य बना। और वह भी बहुत ही सहज रीति से।

विद्याशकर महाराज बचपन से ही गृह-परिवार और ससार छोड़कर तपस्या के लिए चले गए थे। बुद्धि मे वृहस्पति जैसे थे। एक-एक कर हरेक सम्प्रदाय को स्वीकार किया और उसका गहन अध्ययन किया। प्रत्येक सम्प्रदाय में उन्हे आचार्य-पद प्राप्त हुआ। इससे उनके शिष्यो की सख्या बहुत बढ गई।

अन्त मे तो चारो सम्प्रदायो से परे विद्याशकर जीवन और मरण के धर्म—काल-धर्म का पालन करने लगे। उनसे पूर्व कोई काल-धर्म का पालन नहीं कर सका था। न ही कोई उसे समझ सका था। किन्तु कालमुख विद्याशकर तो सब-कुछ छोड़कर तुगभद्रा नदी के किनारे चले गए।

जिस जगह पचवटी मे सीता ने एक हाथी को पुत्रवत् पाला था और जिस जगह उस हाथी का परिवार बहुत बढ गया था, जिस जगह रामजी ने पम्पा सरोवर के तट पर पम्पापति शिवजी के मदिर की स्थापना की थी, जहाँ भगवान् राम ने शबरी के झूठे बेर खाए थे, जहाँ राम ब्राह्मण-वेषधारी हनुमान से पहली बार मिले थे, जहाँ राम ने बालि का वध किया था और सुग्रीव को राजसिंहासन दिया था, उसी स्थान पर, पम्पा सरोवर के किनारे ऋष्यमूक पर्वत की गुफा मे जीवन की ओर से विमुख और मरण की ओर अभिमुख होकर भगवान् विद्याशकर ने समाधि ली थी।

किन्तु सह्यवासिनी देवी को विद्याशकर की यह समाधि स्वीकार न थी, क्योंकि गुफा के बाहर दक्षिण भारत माता के बेटे धार्मिक राग-द्वेष मे झुलस रहे थे। देवी चाहती थी कि देश म एकता आए और हजारो सामन्तो और सैकडो राज्यो मे बॅटी हुई धरती और जनता एक ध्वजा के नीचे एकत्र होकर म्लेच्छो का मुकाबला करे।

सहस्रो मदिर तोड दिये गए थे, किन्तु कहीं भी कोई दैवी-चमत्कार नही हुआ था। हजारो तीर्थस्थान भ्रष्ट कर दिये गए थे, फिर भी तीर्थ-विशेष का देवता सोया था। मानव की मानवता मानो हिन्दू जाति के पास रही ही नहीं थी। जैसे यह जाति अपना धर्म-बल खो चुकी थी। झझा के झोको से जिस प्रकार रेत के बडे-बडे टीले हवा मे उड जाते है उसी प्रकार तुर्कों के आक्रमण से हिन्दू बिखर गए थे। हिन्दुओ के देव-मदिर और प्रतिमाएँ तोड दी गई थीं। उसके योद्धा पराजित थे। उसके राजनेता भीतर-ही-भीतर पारस्परिक द्वेष से भस्म हो रहे थे। उनकी स्त्रियाँ तुर्को के हरमों मे बॉदियों के रूप मे काम करने को बाध्य थी। ऐसा लगता था, यह जर्जरित जाति, जर्जरित धर्म और जर्जरित प्रजा जीने के योग्य ही नहीं रही थी। दैवी-चमत्कार के अतिरिक्त, कोई दूसरा मार्ग, अब इसके उद्धार को शेष नहीं था।

तभी दैव ने एक चमत्कार दिखलाया। देवी सह्यवासिनी ने दो अति वृद्ध प्राणियो को प्रस्तुत किया, रुद्राम्मा और कालमुख विद्याशकर।

कालमुख विद्याशकर की समाधि भग हुई और उन्होने सोचा, मेरे मन मे यह अशान्ति और भ्रान्ति कैसी? मै तो मृत्यु की राह देख रहा था। और मृत्यु मुझसे दूर-दूर क्यो जा रही है? भगवान् कालमुख के मन मे बार बार यह प्रश्न लहराने लगा। पूर्ण मनोमन्थन कर, चित्त शान्त होने पर, उन्होंने यह निर्णय पाया कि मृत्यु के पूर्व मेरे लिए कोई कार्य-कर्त्तव्य अवशिष्ट है, मेरी पूर्ण रचना का एक अश अभी अपूर्ण है। वह कार्य और अपूर्णता कौन-सी है, यह जानने के लिए यह जीवन्मुमुक्षु साधु अपनी गुफा से बाहर निकला। बाहर आकर उसने एक परिवर्तित दृश्य और दुनिया देखी।

फिर तो सप्तसामन्तचक्रचूडामणि बनने के स्वप्न देखनेवालो को भगवती

रुद्राम्मा के भीष्म पराक्रम ने प्रकम्पित कर दिया। साम्प्रदायिक आचार्यो को भगवान् कालमुख के भिद्याटन ने भावी की भयकरता समझाई।

भगवान् कालमुख के चरणो मे चारो सम्प्रदायो ने अपने मतभेद रख दिए। राजाओ ने भी अपने स्वप्न उनके चरणो मे चढ़ा दिए।

और जिस प्रकार सहस्रो वर्ष पूर्व कालयवन से उत्तर भारत (उत्तरापथ) की रक्षा का उत्तरदायित्व गोपकुलोत्पन्न भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र के सबल स्कन्धो पर पडा, उसी प्रकार कलियुग के कालयवन से दक्षिण भारत (दक्षिणापथ) की रक्षा का भार गोपकुलोत्पन्न रायहरिहर को मिला!

वीर बल्लाल तृतीय ने 'सप्तसामन्तचूडामणि' बनने का स्वप्न छोड दिया। उन्होने कृष्णाजी नायक को, (जो महाराज प्रतापरुद्रदेव का रुद्राम्मा का दिया शीश लाया था), प्रतापरुद्रदेव का दत्तक पुत्र स्वीकार किया और इतना ही नहीं, स्वय अपना समस्त राज्य भगवान् कालमुख के चरणो मे समर्पित कर धर्म-युद्ध करने का निश्चय किया और यो राज्य की सीमा का विस्तारवादी, म्लेच्छों का दासानुदास वीर बल्लाल दक्षिण भारत का परित्राता और सरक्षक तपस्वी राजर्षि बन गया। जिसका नाम लेने पर वीरो के सिर शर्म से झुक जाते थे, उसी का नाम देश की स्वतन्त्रता का मूल-मन्त्र बन गया।

भगवान् कालमुख विद्याशकर ने बल्लाल तृतीय का भेंट किया राज्य सरक्षण के लिए राय हरिहर को सौप दिया और स्वय कुछ शिष्यो को कालविद्या सिखाने के लिए, अपने साथ लेकर फिर से अपनी गुफा मे लौट गए।

अब राज्य चलता था कालमुख विद्याशंकर के नाम से। राज्य चलाता था मडलेश्वर हरिहर। मडलेश्वर की सहायता के लिए महाप्रधान के रूप मे नियत था—दादैया सोमैया, जिसने आन्तरिक कलह का कोप स्वय सहकर अपने नेत्र खो दिए थे।

सोमैया पाड्य जाति का था। सम्प्रदाय तो उसका वीरशैव का था, किन्तु पराक्रम उसका धर्म था। इस वीरवर ने श्रीवल्लभाचार्य और श्रीरामानुजाचार्य के पाद-पद्मों से पुनीत वैष्णव-धाम रगनाथ की मुक्ति के लिए मदुरा पर आक्रमण करने की योजना बनाई। और जिस रगनाथ की मुक्ति के लिए लड़ने वह जा रहा था उसी रगनाथ-स्वामी रामानुजाचार्य के भानजे भगवान्

वेदान्तदैशिक ने इसे विरुपाक्ष की मूर्ति को प्रणाम न करने का दण्ड दिया, क्योंकि यह शैव था और वैष्णवो ने इसे पकड़ लिया था। किन्तु सोमैया ने अन्य सम्प्रदाय की दैव मूर्ति की वन्दना करने के बजाय, स्वय अपने हाथो अपनी आँखे निकालकर शत्रुओ के सामने फेक दी थी। इस प्रकार साम्प्रदायिक वैमनस्य का तो मानो वह प्रतीक ही था। किन्तु समय इस गति से बदला कि उन्ही वैष्णवो के धाम की रक्षा के लिए वही सरक्षक महाप्रधान नियुक्त किया गया। विक्रमादित्य के सवत् १३७६ के वर्ष की यह घटना है।

कलिंग मे गजपति का शासन था। गजपति तुर्क सुलतान मुहम्मद तुगलक का वफादार सरदार था।

वारगल विनष्ट हो गया था। और समस्त प्रदेश मुहम्मद तुगलक के सूबा के शासन मे था।

स्वर्गीय राजा प्रतापरुद्र काकतीय की अन्तिमेच्छा को प्रत्यक्ष परिवर्तित करने के लिए वीर बल्लाल ने कृष्णाजी नायक को वारगल का राजा घोषित कर दिया था।

और जिस घडी वीर बल्लाल ने प्रतापरुद्र का कटा हुआ मस्तक देखा था और कृष्णाजी नायक के मुख से भगवती रुद्राम्मा का सन्देश सुना था उस घडी उनकी सारी देह कॉप-कॉप उठी थी और वर्षो से गुलाम अन्धी आँखे पहली बार खुल गई थी। फिर मन की ग्लानि और आत्मा का पश्चात्ताप इस प्रकार बढा कि उसने अपने पिछले कुकर्मो और पापो को धोने के लिए अपना सारा राज्य और अपना सर्वस्व कालमुख के चरणो मे चढा दिया था। और अपने शेष जीवन मे आजन्म तुर्को के खिलाफ तलवार चलाते रहने और उसे क्षण-भर के लिए भी म्यान मे न रखने का भैरव प्रण किया था।

और उधर कृष्णा नदी के उत्तरी तट तक, समस्त भारत पर तुर्को की सेना छा गई थी। और अब दक्षिणी तट पर वही सेनाएँ नि.शक घूम रही थीं और हिन्दुओं पर भॉति-भॉति के अनाचार कर रहीं थीं। अब तो इनकी पहुँच मदुरा तक हो चुकी थी। वहॉ सुरताल का शासन स्थापित हो चुका था।

भगवान् कालमुख ने दक्षिणापथ की रक्षा के लिए सर्व-सम्प्रदायो को, भेदाभेद भुलाकर एकत्र होने के लिए प्रेरित किया था और सब धर्मो से ऊपर

'मुक्ति' का प्रथम और श्रेष्ठ धर्म—विजय-धर्म बतलाया था। उन्होंने इस नवीन विजय-धर्म की स्थापना की।

उस काल के विजय-धर्म के अनुयायी वीरो और धीरो के कुछ-प्रमुख नाम इस प्रकार है ·

महामडलेश्वर हरिहर का वीर पिता सगमराय। सगमराय शृंगेरी मठ के निकट स्थित सगमेश्वर दुर्ग का दुर्गपाल था।

काची का पाड्य-नायक—कपाय नायक।

तुगभद्रा के तट-स्थित कालमुख के समाधि-स्थान पम्पा प्रदेश के काम्पिली-गढ का राजा काम्पिलीदेव।

चद्रगिरि दुर्ग का दुर्गपाल विनय चालुक्य।

पश्चिमी समुद्र-तट के दुर्ग होनावर का दुर्गपाल उदयभाण। देवगिरि विनष्ट होने पर उसका यह एकमात्र दुर्ग वच गया था।

वनवासी दुर्ग का दुर्गपाल गोपभट्टी।

(जैसलमेर के तुर्क आक्रमण से नष्ट हो जाने पर उसका दुर्गपाल गोप-भट्टी दक्षिण की ओर निकल गया था।)

उस समय दक्षिण मे जैनो की बस्ती भी काफी थी। उनके मडलाचार्य थे नागकीर्ति महाराज—ये भी कालमुख विद्याशकर के शिष्य थे। नागकीर्ति ने २० वर्ष का एक वीर नौजवान विजय-धर्म की रक्षा के लिए हरिहर को सौपा था, इस वीर का नाम था नागदेव।

हरिहर का छोटा भाई बुक्का, इसे कर्नाटक की राजधानी दोरासमुद्र के दुर्ग का दुर्गपाल बनाया गया।

भगवान् कालमुख विद्याशकर जिन आठ शिष्यो को विजय-धर्म की दीक्षा के लिए, सात वर्ष के लिए अपने साथ ले गए थे उनके नाम इस प्रकार है :

हरिहर के तीन भाई—कम्पन, मराप्पा, और मुद्रप्पा। भारद्वाज गौत्रीय काश्मीरी पडित के तीन पुत्र—माधव, सायन और भोगनाथ। निगठ सेठ का बेटा इरुगु। एक कारीगर-वर्ग का लडका—भालारी बिबोया।

वारगल और तुगभद्रा के बीच का प्रदेश भयकर वनो और वृक्षो से भरा था। इसमे इधर-उधर किरात और शम्बूर जाति के वनवासी रहते थे, जिस

प्रकार गुजरात और मालवा के बीच चम्बल के और विन्ध्याचल के वनो मे भील और मीने रहते है। और ये किरात भयकर से भयकर वनवासी थे। क्योकि भयकर से भयकर विषधर नाग को किरात कहा जाता है। उसी प्रकार इनके क्रोध-विष ने इन्हे किरात नाम दिलाया था।

इस पृष्ठभूमि पर विजयनगर उपन्यास वल्लरी के इस दूसरे ग्रन्थ-पुष्प का श्रीगणेश होता है।

२ स्वाध्याय

विक्रम सवत् १३७२ के अन्त तक पाड्य राज्य के पर्याप्त भू-भाग पर तुर्कों का आधिपत्य हो चुका था। दिल्ली के सुलतान का प्रतिनिधि और तुर्की सेना का सरदार जलालुद्दीन अहसानशाह मदुरा का सूबा बन चुका था।

दिल्ली मे सुलतान अलाउद्दीन खिलजी का अवसान हो जाने पर अहसान-शाह ने अपने-आपको दिल्ली से स्वतन्त्र मदुरा का सुरताल घोषित कर दिया था। उस समम कावेरी और ताम्रपर्णी के मध्यवर्ती वनों मे तिरुपतिमलाई मे पाड्य लोग पाड्य-सघ की छत्र-छाया मे तुर्कों से प्रचण्ड युद्ध कर रहे थे। वे लड़ रहे थे और हार रहे थे।

समुद्र के ज्वार की तरह तुर्क बढ रहे थे। उस ज्वार मे दक्षिण भारत एक छोटे से द्वीप की तरह था। उस द्वीप के निवासी परस्पर फूट चुके थे, एक-दूसरे से टूट चुके थे। किन्तु समाज और इतिहास की इसी भयकर घडी मे विजयनगर साम्राज्य का जन्म हुआ।

फिर वारगल के पतन पर दक्षिण भारत के राजाओ और नायको को होश आया कि हिन्दू सस्कृति, परम्परा, धर्म और पूर्वदा की यदि रक्षा करना है तो अन्तिम अवसर सामने है, अन्त समय सम्मुख है। और इसी अवसर पर विजयनगर साम्राज्य के यशोज्ज्वल इतिहास का आरम्भ हुआ। विदेशी तुर्कों के सामने मरने-मिटने और जूझने के लिए राजा, नायक, दुर्गपाल और गुरु, चारों धर्म—वीरशैव, भागवत्, शैव और भाव्य (जैन) एक होकर

युद्ध-भूमि मे आ डटे। ये लोग, जो एक-दूसरे को काट रहे थे, सगठित होकर विजय-युद्ध के लिए तुर्कों को ललकारने लगे।

चारो धर्म, चारो पॉसे, चारो राज्य।अपनी-अपनी विशेषता और वैविध्य पर जोर देना भूलकर एक ही ध्वजा के नीचे आ खडे हुए।

भारतीय इतिहास की यही अमर घडी, मरण का यही मगल मुहूर्त कालान्तर मे विजयनगर का इतिहास और उसके धर्म-राज्य की गौरवमय कहानी बन गया।

इसी इतिहास के विषय मे बहुतो ने बहुत कुछ लिखा है। तुर्कों ने सम्पूर्ण द्वेषपूर्वक असत्य का आश्रय लिया है

उनका प्रमुख ग्रथ है, फरिश्ता का एक ग्रथ। मुहम्मद कासिम फरिश्ता ने अपना इतिहास विक्रम की सतरहवी सदी मे लिखा। फरिश्ता ईरानी था। बाप उसका सिपाही था और वह खुद भी सिपाही था। पहले-पहल वह अहमद नगर मे छोटी-सी नौकरी करता था। राजकीय हलचल के समय भागकर उसे बीजापुर मे शरण लेनी पडी। वहो विक्रम की सतरहवीं सदी के आरम्भ-काल मे उसने अपने इतिहास अर्थात् तीन सौ वर्ष बाद, अपने ग्रथ की रचना की।

प्रसिद्ध इतिहासकार रॉबर्ट सेवेल फरिश्ता के विषय मे लिखता है :

"हमे यह बात कदापि न भूल जाना चाहिए कि फरिश्ता का बयान सभी विषयो मे मुसलमानो के पक्ष मे पूर्ण रूपेण पूर्वाग्रह पूर्ण है और उसके बयान तीन सौ वर्ष बाद लिखे गए है—ईसा की सोलहवीं सदी के अन्तिम भाग मे अथवा सतरहवीं सदी के आरम्भिक भाग मे।"

इसके अतिरिक्त जिन बयानो पर फरिश्ता के बयानो की नींव पडी है, वे बयान मुसलमानो के लिखे ग्रथों मे है। इनमे से एक 'फतुअल सलादीन' नामक ग्रथ की रचना मुहम्मद तुगलक के एक सिपाही ईसामी ने फारसी भाषा मे काव्य रूप मे की थी।

दूसरा ग्रन्थ बुरहान-ए-मनसीर है, इसका लेखक अली बिनअजीज उल्लाह तबतबा था। इसका लेखक ईरान से अहमदनगर आया था। इस ग्रथ का अधिकाश अहमदनगर की निजामशाही का इतिहास है। इसके लेखक ने

स्वय स्वीकार किया है—"मैंने सिपाहियो से सुनी-सुनाई बातो को, इस्लाम को गौरव देनेवाले रूप मे शाहनामा की तर्ज पर लिखा है।"

विक्रम सवत् १६३० मे बीजापुर की नौकरी मे शिराजी नामक एक ईरानी था। उसने फारसी मे तकरीरात-उल-मुल्क ग्रन्थ लिखा।

ये चारो ग्रन्थ, बहमनी राज्य की तवारीख के तौर पर उपलब्ध है। विजयनगर से बहमनी राज्य का सग्राम निरन्तर चलता रहता अतः इन ग्रन्थो मे कई घटनाएँ सत्य, अर्धसत्य और कई सर्वथा असत्य भी लिखी गई है और जैसा कि इनके लेखको का कथन है, ये लोग इतिहास के शुष्क ग्रन्थ लिखना नहीं चाहते थे।

विदेशी इतिहासकारों मे फिरगी यात्रियो के उल्लेख और बयान भी शामिल किए जाने चाहिए। इनमे से कई तो उत्तरकालीन विजयनगर के राजाओं के समकालीन भी थे।

इनमे न्यूनीज, कोन्ते, निकोला, जेसुइट पादरियो के बयान और ई० एफ० ओटीन के सग्रह आदि का समावेश है।

इनके उपरान्त दुआरते बारबोसा और इब्नबतूता के भी विवरण है। दुआरते बारबोसा का अँगरेजी भाषान्तर हेनरी स्टैनली ने किया है। और रेवरेण्ड सेम्युअल ने इब्नबतूता का भाषान्तर किया है।

भारत मे अपने आगमन और निवास के आरम्भ काल मे विजयनगर साम्राज्य से फिरगी व्यापारियो का व्यापारिक सम्बन्ध था। कई इतिहास-ग्रन्थो मे इसका उल्लेख मिलता है। इनमे चार्ल्स रॉवर्स की पुस्तक पोर्तुगीज इन-इडिया पुस्तक भी सम्मिलित है।

विदेशी भाषाओं मे लिखित उपर्युक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त भारतीय भाषाओ मे भी विजयनगर के विषय मे कई ग्रन्थ लिखे गए। तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम मे ऐसे ग्रन्थो की सख्या अपार है। इनमे से लगभग ढाई सौ ग्रथो का सकलन डॉक्टर कृष्ण स्वामी अय्यगर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ—सोर्सेज ऑफ द विजयानगर हिस्ट्री मे किया है।

विजयनगर के इतिहास की रचना मे शृगेरी मठ के शकराचायो ने

अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका का सम्पादन किया है। पडित लक्ष्मण शास्त्री ने 'गुरुवश महाकाव्य' के नाम से मठ के शकराचार्यो का इतिहास लिखा है।

इनके अतिरिक्त विजयनगर के कई राजा, रानी और मन्त्रिगण भी लेखक, कवि और पडित थे। उन्होने छोटे-बडे कई काव्यो मे अपने सस्मरण और वृत्तान्त लिखे है, जिनमे चुने हुए ग्रन्थो की सूची इस प्रकार है

मदुराविजय	—	महारानी गगादेवी
जैमिनि भारत	—	पीना वीरभद्र
सालुवाभ्युदय	—	पडित राजनाथ डिडिम
रामाभ्युदय	—	सालुवा नरसिंह
उद्धारणमाला	—	भोगनाथ आचार्य
वराहपुराण	—	सालुवा नरसिंह
माधव धातृवृत्ति	—	माधव आचार्य
आमुक्तमाल्यदा	—	कृष्णदेव राया
कृष्णदेव राया	—	कुमार धूर्जटि
राजशेखरचरित्रम्	—	सालुव तिम्म
वल्लभाचार्यचरित्रम्	—	मुरलीधरदास
अच्युत अभ्युदयम्	—	पडित राजनाथ डिंडिम

विजयनगर से सबधित इन पुस्तको के अनुवाद के अतिरिक्त दूसरे कई ग्रन्थो की ऐतिहासिक छानबीन करके डॉक्टर कृष्णास्वामी अय्यगर ने अपने ग्रन्थ का निर्माण किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि विजयनगर साम्राज्य-काल मे कागज का उपयोग बहुत सीमित मात्रा मे था, क्योकि डॉ० राईज ने हजारो शिलालेखो का सग्रह किया है। उस समय के अनेक राज्यादेश, दानपत्र और प्रमाणपत्र शिलालेखो पर अकित है। फादर फेरास और डॉ० सल्तौर ने भी शिलालेखों का सम्पादन किया। इनके अलावा जब विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की छठी शताब्दी का समारोह मनाया गया, तब विशेष रूप से तीन स्मारक ग्रथ प्रकाशित किए गए। इनमे से एक अग्रेजी मे, एक मराठी मे और तीसरा एक ग्रथ माधव और उनके,शिष्य भी लिखा गया।

स्थल-पुराण दक्षिण की विशिष्टता है। तमिल और तेलुगु मे इसके अनुवाद मिलते है। इनमे तत्कालीन धर्मस्थानो आदि का इतिहास सुलभ है। इनके अतिरिक्त काल-गणना के ग्रन्थ भी दक्षिणापथ मे उपलब्ध है, इनमे से अधिकाश काव्य रूप मे मलयालम भाषा मे है।

विजयनगर इतिहास के आरम्भ काल से, लगभग बीस वर्ष पश्चात् तक के समय के विषय मे और घटनाओ के पूर्वापर सबधो के बारे मे इतिहासकारो के मत परस्पर भिन्न है। कृष्णाजी नायक (उपन्यास) से सबधित इतिहास का अध्ययन सस्कृति और समाज की स्थिति के ज्ञान का प्रयत्न-मात्र है। घटनाओ और व्यक्तियो के काल-क्रम और अनुक्रम की निश्चित स्थिति का परिचय ही हमारा उद्देश्य नहीं है।

विद्याशकर, विद्या के माधव विद्यारण्य माधव आचार्य, माधव भट्ट, माधव मत्री आदि नाम विजयनगर इतिहास के प्रारम्भिक वर्षो मे हमारे सामने प्रकट होते है। ये प्रस्तुत नाम एक ही व्यक्ति के थे अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के थे, इस विषय मे बडा मतभेद है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे ये नाम जिस अनुक्रम से लिये गए है, उसी क्रम से ये विजयनगर राज्य के इतिहास मे हमे मिलते है—उन दिनो विद्याशकर कालमुख आचार्य थे, विद्याशक्ति राजपुरोहित थे, विद्यारण्य पहले महामात्य थे, बाद मे साधु और शकराचार्य बने। माधव आचार्य विजयनगर राज्य के अमात्य और शास्त्र, सगीत, आयुर्वेद, आदि के परम पडित थे। माधव भट्ट विजयनगर के एक सूबा के मत्री थे। माधव मत्री विजय नगर के अन्तर्गत गोवा दुर्ग के दुर्गपाल थे।

भगवान् कालमुख विद्याशकर का जन्म वि० स० १३०० मे हुआ था और वारंगल के पतन के समय उनकी आयु ८० वर्ष की थी। माधव भट्ट वि० स० १५०० मे गोवा का दुर्गपाल था। इसका तात्पर्य यह हुआ कि माधव भट्ट के काल मे भी विद्याशकर कालमुख जीवित थे। इससे उनकी आयु दो सौ से ढाई सो वर्ष की थी इस अनुमान को प्रमाण मिलता था। कालमुख जैसे महापडित और तपस्वी के लिए इतने वर्ष का जीवन-काल कठिन उपलब्धि नही है।

३ वसुधा और वातावरण

कथाकाल वि० स० १३९६

वि० स० १३७९ और १३९२ के वैशाख मास तक जितनी घटनाएँ घटीं उनके क्रम के विषय मे किन्हीं दो इतिहासकारो के मत नही मिलते। तत्कालीन इतिहासकारो मे हिन्दू, मुस्लिम, फिरगी, ईरानी, चीनी, और रूसी इतिहासकार और प्रवासी सम्मिलित है। इसी प्रकार आज के इतिहासकार भी वारगल के विनाश और विजयनगर साम्राज्य की काल-गणना के विषय मे एक मत नही है। और मा वसुधा की गोद मे इस विषयक बत्तीस हजार ग्रथ, कई हजार शिलालेख और हजारो ताम्रपत्र, निरूप, धर्मादेश, दानपत्र, आदि प्रस्तुत है।

उस काल का भूगोल और वातावरण इस प्रकार है .

गोदावरी नदी के दक्षिणी तट से सेतुबन्ध रामेश्वर तक, यदि छोटी नदियों को छोड़ दे तो चार प्रमुख सरिताएँ हमारे सामने आती है—गोदावरी, कृष्णा, तुगभद्रा और कावेरी।

गोदावरी जहाँ से निकलती है, वहाँ से पश्चिमी घाट का आरम्भ होता है और गोदावरी जहाँ पूर्व समुद्र मे मिलती है, वहाँ से दक्षिण मे पूर्वी घाट शुरू होता है।

पश्चिमी घाट की दीवार कहीं-कहीं छः हजार फुट और कहीं दो हजार फुट ऊँची है, किन्तु अखड है। इस घाट को पारकर कोई नदी नहीं बहती। पश्चिमी घाट को पार करने का, उपन्यास-कालीन एक ही मार्ग है, कोयम्बतूर के पास घाट को पार कर सामने जाने का रास्ता है। इसके सिवाय, शेष घाट अखड है। घाट और सागर के बीच की पट्टी—भटकल बदरगाह तक—कोंकण प्रदेश कही जाती है और इसके नीचे की पट्टी मलाबार या केरल प्रदेश के नाम से विख्यात है। प्राचीन काल मे इसी को चोलमडल कहते थे।

इसी भाँति पूर्वी घाट और समुद्र-तट के बीच का प्रदेश चेरमडल (कोरोमडल) के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्वी घाट पश्चिमी घाट की तरह ऊँचा भी

नहीं है और अखड भी नही है। चार बडी नदियाँ इसे पार कर सागर मे लीन होती है।

तुर्कों ने गोदावरी को पार किया, कृष्णा को पार किया और अपनी सल्तनत देवगिरि तक स्थापित की।

तुर्क अब इस प्रदेश मे प्रविष्ट हुए जहाँ की धरती पर सहस्रो वर्षों से भगवान् अगस्त्य का ऋण है। अगस्त्य मुनि के विचरण और विहार का स्थल वातापी दुर्ग तुर्कों की देवगिरि की सीमा का अतस्थल है। वातापी मे अगस्त्य ने वातापी नामक दैत्य को नष्ट किया था। वातापी-जैसी स्थिति मे पश्चिम तट पर होनावर का दुर्ग था। तुर्कों और वीर बल्लाल के युद्ध मे इस दुर्ग ने बहुत बडी वीरता दिखलाई थी।

गोदावरी के निकट ही सीमा का उद्गम स्थल है। और इनसे नातिदूर कृष्णा का जन्म होता है। पूर्व घाट और पश्चिमी घाट के मध्य मे दोनो नदियाँ मिलती है। वहाँ से ये कृष्णा के नाम से आगे बढती है और पूर्वी समुद्र मे विलय होती है।

तुगभद्रा नीचे से बहकर आती है और कुरनूल मे कृष्णा से मिलती है। तुगभद्रा और गोदावरी और कृष्णा के त्रिकोण स्थल मे देवगिरि की तुर्क सूबेदारी स्थापित है। कृष्णा नदी के सम्मुख तट से ऊपर गोदावरी तक और नीचे तुगभद्रा तथा कृष्णा नदी के उत्तर तट तक पूर्व मे सागरपर्यन्त घना वन था। इसी मे गोदावरी की तलहटी और निर्झरो को छूते हुए छोटे-से भाग मे वारगल का राज्य था। वारगल का दुर्ग नष्ट हो गया था।

नीचे, तुगभद्रा के तट-प्रदेश मे, काम्पिली नामक राज्य था।

वारगल और काम्पिली के मध्य मे गहन वन था। छुटपुटे पर्वत और घाटियाँ थी। हजारो वर्षो की, घनी वनराइयाँ थीं, अभेद्य वनों मे अदृश्य पगडडियो को केवल अनुभवी मार्ग-दर्शक ही जानते थे। साधारण मुसाफिर के लिए इन वन-पथो को पार करना परम कठिन कार्य था। अनुभवी जानकार मार्ग-दर्शक भी हाथ मे कुल्हाड़ी लेकर चलते थे, क्योकि बडे-बडे पेडो की मिली-जुली डालो के सिवाय, बीच बीच मे काँटेदार लताएँ भी थीं। यही

भगवान् राम के काल का दण्डकारण्य था। प्रस्तुत कथा-काल मे इस अरण्य का यही स्वरूप शेष रहा था।

जिन-जिन स्थानो मे परम्परागत समाज-व्यवस्था की सीमा रेखा समाप्त होती है और नई तथा अजानी समाज-व्यवस्था शुरू होती है, वहाँ-वहाँ भारत मे अनादि काल से वन्य अथवा आदिवासी जातियाँ बसती है। वनवासी जीवन ही इनका गौरव है।

हिमालय और कुरुक्षेत्र के बीच सतनामी, बगाल और उत्तर प्रदेश के बीच और बगाल और कलिंग प्रदेश के बीच सन्थाल, सिन्ध और राजस्थान के बीच हू, राजस्थान और गुजरात के बीच मीणा और इसी प्रकार गोदावरी और कृष्णा के बीच दण्डकारण्य मे शम्बूर जाति बसती है। यही किरात कहे जाते है।

उन दिनो शम्बूरो का एक राजा था शम्बूरराय। ये लोग अपनी जाति के सिवाय किसी अन्य जाति के प्रति स्वामिभक्ति नहीं रखते थे। वन-वनातरो मे स्वैरविहार करना, अन्य प्रदेशों को मौका मिलने पर लूट लेना और अपने प्रदेश मे बाहरी लोगो को न आने देना। इन तीन चीजो के अतिरिक्त समाज, राज्य अथवा धर्म-व्यवस्था आदि की कोई चिन्ता इन्हे नही सताती थी। इनके वनों मे बाप से बिछुडे बालकों की तरह छोटे-बडे कई पहाड़ और डूँगर इस वन-प्रदेश मे फैले पडे थे और उनमे से हरेक पर शम्बूरराय के गढ़ बने हुए थे। इन्ही मे शकु के आकार का धरती से मानो नभ की ओर सीधी उँगली उठी हो इस प्रकार का एक अकेला पहाड़ था। जिस पर मारुतगढ नामक दुर्ग बना हुआ था। इस तरह, जाले मे मकड़ी की भाँति सुरक्षित शम्बूरराय मारुतगढ़ मे बैठा था। मारुतगढ़ का दूसरा नाम था प्यारापट्टन।

इस वन-प्रदेश से निकलकर शम्बूर लोग कहीं अपने प्रदेश मे न घुस आएँ, इस भय से काम्पिलीदेव ने तुगभद्रा के तट पर आनेगूडी नामक दुर्ग बनवाया था। यही काम्पिली राज्य की अन्तिम सीमा थी। यही से निकलकर कृष्णा के किनारे-किनारे, पुराण-प्रसिद्ध पम्पा-क्षेत्र था। यहीं राम ने बालि का वध किया था। यहाँ एक बडा-सा ढेर पड़ा है, मानो किसी भीमकाय-व्यक्ति का शव पड़ा हो। यह ढेर न तो मिट्टी का है, न रबर का ही। शायद दोनो

के सयोंग तत्त्वो का है। पम्पा के यात्री इस ढेर से चुटकी भर-भर स्मृति-प्रसाद अपने साथ ले जाते है। यहीं ऋष्यमूक पर्वत और किष्किन्धा नगरी है। अब तो अवशेष मात्र है। रामायण-कालीन माल्यवान, मातग और हेमकूट पर्वत-शृग भी यही है।

कथा-काल मे पम्पाक्षेत्र निर्जन वन-प्रदेश माना गया है। केवल तीर्थ होने के कारण भक्तजन यहाँ पम्पापति के दर्शन करने आते। यही तपाधन भगवान् विद्याशकर उपन्यास-काल मे साठ वर्ष से समाधि लगाकर बैठे थे।

तुगभद्रा और दक्षिण-तट से ठेठ रामेश्वर तक, कथा-काल मे दक्षिणापथ की जनता चार-भाषा, चार-सस्कृति और चार-धर्मो मे बँटी हुई थी और इन चारो प्रदेशो के चारो राजा परस्पर आक्रमण करके चक्रवर्ती अथवा सप्तसामन्त-चक्रचूडामणि बनने के लिए, अपने सभी नीति-कर्म भूल चुके थे और आपस मे लड़ रहे थे। किन्तु यह समय विश्व-इतिहास मे दुर्लभ, ऐसे एक महान् साम्राज्य की प्रसव-वेदना का काल था।

फिर एक दिन उस साम्राज्य का जन्म हुआ—बिना किसी युद्ध, रक्त-पात और वैमनस्य के। चारो प्रजा, भाषा और धर्म मिलकर एक हुए और उस समन्वय ने एक महान् और बलशाली राज्य को जन्म दिया। यह जन्म और रचना एक ऐसा मोर्चा बनी कि जो तुरुष्कों के विरुद्ध अन्तिम युद्ध-प्रयास का प्रतीक बना। इस प्रयास और प्रतीक पर एक जीवन-मुक्त एवं महा-तपस्वी-समाधि-सिद्ध साधु की छाया थी। इस तपस्वी साधु ने कह दिया था—मेरा अन्तकाल निकट है। और निर्वाण-काल के पूर्व ही उसने प्रजा के पुरुषार्थ के पुष्पो को एक सूत्र मे पिरो दिया था। यहीं एक दिन भारतीय सस्कृति के स्वर्ण-युग का उदय हुआ था।

४ गगू कन्याली

कथाकाल मे पम्पाक्षेत्र की पुराण-प्रसिद्धि स्मृति रूप मे ही शेष रह गई थी। उन दिनो पास-पड़ोस के प्रदेश के लोग इस भू-भाग को भगवान् विद्याशकर की तपोभूमि के नाम से ही जानते थे। पम्पा सरोवर के सूखे हुए गड्ढे को वे पहचानते थे, विशाल और अनन्त गुफा को वे बाली का भडार

बतलाते। एक विचित्र तत्त्व से बने धरती पर फैले हुए मानव-शरीर-जैसे प्रतीत होनेवाले ढेर को वे बाली का शव कहते, बिखरे हुए पत्थरो को पुरानी किष्किन्धा नगरी के खडहर बतलाते। इसी प्रकार शबरी की कुटिया का भी वर्णन करते। समीप ही दण्डकारण्य मे किरात लोग रहते थे। उनके राजा किरातराज को सस्कृति और सभ्यता की हवा अभी लगी न थी, परन्तु वह अपने-आपको रामायण-कालीन गुहराजा का वारिस बतलाता था।

पम्पाक्षेत्र के पश्चिम मे सीमान्त पर, तुगभद्रा के तट पर आनेगुडी का दुर्ग था।

इस दुर्ग के विषय मे किंवदन्ती है—बाली के मरने पर अगद को अपनी स्थिति बडी विचित्र प्रतीत हुई। भीम पराक्रम का प्रतीक और रावण-जैसे सूरमा को युद्ध मे हराकर अपनी नगरी मे बन्दी बनाकर ले आनेवाला बाली राम के हाथो मारा गया। यदि उसे मारनेवाले भगवान् राम न होते, नरोत्तम पुरुषोत्तम न होते और कोई दूसरा ही व्यक्ति होता तो हत्यारा कहा जाता, किन्तु यहाँ तो मारनेवाले स्वय श्रीराम थे। दो भाइयो के क्लेश मे राम ने छोटे का पक्ष लिया, बडे को मारकर छोटे सुग्रीव को भय-मुक्त किया।

लेकिन श्रीराम इतने पर ही चुप न रह गए। किरात भी जिस काम को करते हुए सकुचाएँ, वही उन्होने किया—बाली को मारा और उसका राज्य सुग्रीव को दिया और उसकी पत्नी तारा को भी सुग्रीव को दान मे दे दिया। अत अगद का मन विचित्रावस्था के व्यूह मे पड़ गया। अगद के लिए सुग्रीव, चाचा होते हुए भी, पिता, का वैरी था और यह वैरी वध्य न हो, फिर भी वन्दनीय तो नही ही था। धोखे से पिता का वध करा देनेवाले सुग्रीव को अगद पूज्य रूप मे स्वीकार नहीं कर सकता था। यदि वह ऐसा करता तो वीरो का समस्त सघ ही उसे 'धिक्कारता'।

इसके सिवाय, दूसरी बात यह थी कि सुग्रीव अब अगद की मा का मालिक और पति भी बन गया था। भले ही शत्रु ने इस स्त्री को दान मे दिया, भले ही उसके पति को छल से मारा और भले ही इस समय वह पिता के शत्रु ही की पत्नी बन गई थी फिर भी यह कौन कैसे कह सकता है कि सुग्रीव को स्वीकार करने की उसकी मर्जी नहीं थी!

अगद के मन मे प्रश्न था—पिता की हत्या करवानेवाले को देखे या मा की ममता के बन्धन मे बँधे ! बाली के पुत्र के रूप मे उसका धर्म था—सुग्रीव को मारकर पिता का बदला ले। माता के पुत्र-रूप मे अगद का धर्म था सुग्रीव को अपना पिता और अपना राजा स्वीकार करे।

रावण के मरने पर, लका-विजय पर भगवान् राम, सीता और हनुमान तो अयोध्या चले गए और सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य मिला। अब अगद के लिए विचित्र विपदा खडी हो गई—वह न तो सुग्रीव के अधिकार और शासन मे रह सकता था, क्योकि ऐसा करने पर वह कोई विद्रोह नहीं कर सकता था। और न अपनी मा के विरुद्ध ही जा सकता था।

अन्त मे अगद किष्किन्धा का राज्य छोडकर तुगभद्रा के तट पर रहने के लिए चला गया। स्वभाव से वह योद्धा और सैनिक था, इसलिए दुर्ग बनाकर रहने लगा। मन ग्लानि से भरा था, इसलिए उस एकान्त दुर्ग मे तपस्या करने लगा।

कालान्तर मे इसी दुर्ग का नाम अगदाई पड गया।

फिर वर्षा बाद यह दुर्ग नष्ट हो गया। इस नष्ट दुर्ग के ढेर पर चालुक्यो ने नया दुर्ग बनाया। चालुक्य राजाओं ने अगस्त्य के वातापी को बदामी नाम दिया और इस नये दुर्ग को अगदगुडी कहने लगे।

फिर बदामी के चालुक्य भी न रहे और यह दुर्ग फिर से खडहर बन गया।

अब देवगिरि के यादव-वश की एक शाखा यहाँ आ बसी। देवगिरि के सामन्तो के रूप मे रहनेवाली यह शाखा देवगिरि के नष्ट होने पर स्वतन्त्र राज्य बन गया। इन्हीं ने इसे आनेगुडी नाम दिया। कथा-काल मे इस आनेगुडी राज्य के राजा थे महाराज काम्पिलीदेव। राजधानी इनकी काम्पिली थी।

जहाँ-जहाँ यादव जाते, जहाँ जहाँ नये नगरो की रचना करते, वहाँ-वहाँ सजावट ऐसी होती कि द्वारिका की शोभा फिर से जगमगा उठती। काम्पिली नगरी भी मनोहारिणी थी। उसके चारो ओर बड़ा परकोटा था और यत्र-तत्र सैनिको से सज्जित दुर्ग और गढ़ बने हुए थे। इन दुर्गो की रक्षा करने-वाले रक्षकों की सख्या बहुत थी। इनका प्रबन्ध प्रजा के जान-माल का सर-

त्राण करनेवाले दो रगियो के हाथ मे था। वार-त्यौहार पर यहाँ धार्मिक उत्सव और समारोह भी होते।

इसी काम्पिली नगरी के राज-मार्ग पर तैंतीस वर्ष का एक नौजवान चला जा रहा था। उसकी वेश-भूषा साधारण और चेहरा थका हुआ था। उसका सिर खुला था, और पैरों मे जूते नहीं थे। साधारण किसान और उसके दिखावे मे अधिक अन्तर नही था, मात्र इतना ही कि उसकी कमर मे एक तलवार बँधी थी।

लगता था, वह बडी दूर से आ रहा है। उसने एक राहगीर से पूछा—साथी, यहाँ कही विप्र गगाराम नामक प्रसिद्ध ज्योतिषी रहते है न?

काल कठोर और कठिन था। मानव-मात्र मानो भूकम्प और ज्वालामुखी के सिर पर बैठा था। किसी को मालूम नही था, कब क्या होगा?

समस्त समाज के समस्त जीवन पर कलियुग के कालयवन की काली परछाई पड रही थी। लोग मरते, परन्तु बुरी मौत मरते। लूटे जाते तो बुरी तरह लुट जाते। उनकी सम्पत्ति तो क्या, उनके बीवी-बच्चे भी छीन लिये जाते। भाग्यवश कुछ लोग बच भी जाते, विचित्र सयोगो मे। इसका एक उदाहरण:

दौलताबाद का सूबा काम्पिली नगरी को घेरकर बैठा था। और इसकी पराजय निश्चित थी। किन्तु ईश्वर ने सहायता की और भारी वर्षा होने लगी। चारो ओर बाढ़ का पानी भर गया। यहाँ तक कि दौलताबाद के सूबा की छावनी भी पानी से भर गई। छावनी की दुर्दशा ऐसी हुई कि न तो सिपाही आगे बढ सकते थे और न पीछे हट सकते थे। छावनी का अनाज सड़ गया। सेना मे बीमारियाँ फूट निकली, यहाँ तक कि कोई किसी को पानी पिलानेवाला नही बचा। सूबा मुश्किल से अपने प्राण बचाकर भाग सका। इस दैवी सहयोग ने काम्पिली नगरी को उबार दिया और इससे भाग्य पर लोगों की श्रद्धा बढ़ गई। भला, पुरुषार्थ भी भाग्य जितना प्रबल कहाँ?

दक्षिणापथ के कई लोग तुर्कों का मुकाबला करने का प्रयत्न कर रहे थे, किन्तु इसमे भी भाग्य के योग की आवश्यकता थी। इन लोगों मे अनेक पडित

और ज्ञानी, वीर और सूरमा थे। फिर भी विधि का विधान विचित्र था। उसका लिखा तो वही पढ सकता है अथवा ज्योतिषी पढ सकता है।

अत. विचित्र बात नही यदि जवानी की अन्तिम सीढ़ी पर खड़ा हुआ कोई नौजवान किसी ज्योतिषी का पता पूछे। यह कोई नई बात नही थी।

आखिर ज्योतिषी के समान भाग्य के लेखको दूसरा और कौन लिख-पढ़ सकता है? और ज्योतिषी मे भी गगाराम विप्र! वह तो काम्पिली की शोभा था।

अत्यन्त सम्पन्न और समृद्ध देश गुजरात, जिसे तुर्कों ने पददलित किया, कोटि-कोटि की लूट हुई और हजारो पकडकर गुलाम बना दिये गए। वन-पथों पर सख्याबद्ध गुलामो की कतारें चलती और पथो के दोनो ओर मृत स्त्री-पुरुष और बच्चो के अस्थिपजर मिलते! ऐसे जलते हुए गुजरात से यह विप्र ज्योतिषी भाग आया था, बचकर निकल आया था। तब इसका नाम गगाराम था और अब दक्षिण मे गगू।

गगाराम का पता पूछनेवालो की कमी नही थी। काम्पिली के अगणित जन इसका पता पूछते। फिर अपरिचित परदेशी इसका पता पूछे, इसमे आश्चर्य की बात ही क्या!

"यहाँ ज्योतिषी विप्र गगाराम कही रहते है न?" जवान ने फिर से पूछा।

"हाँ, सीधे चले जाओ, गली के उस मकान मे वह रहते है।"

बताए हुए रास्ते पर जवान आगे बढ गया। गली तग थी और लम्बी भी। सामने छोर पर एक मकान था। उसके दरवाजे बन्द थे।

नौजवान ने बाहर से कुडी खटखटाई। कुछ देर रुककर फिर जोर से खटखटाई। दरवाजा खुल गया।

और नौजवान देखकर दो कदम पीछे हट गया। खुलते हुए दरवाजे में उसने चाहे जो चीज देखने की आशा रखी हो, किन्तु काम्पिली के ज्योतिषी के घर मे कद्दावर और प्रचड तुर्क को देखने की अपेक्षा उसे नहीं थी। इसलिए वह नौजवान उस तुर्क को देखता रह गया। लगभग पॉच हाथ लम्बा, चौड़ी छाती, और विशाल शरीर! वह सिर्फ एक लुँगी लटकाये थे।।सीने पर रीछ-

जैसे बाल और हब्शी-जैसे काले रगवाला ! उसका निचला होठ कुछ मोटा था। नौजवान आश्चर्य से स्तब्ध रह गया। भीतर से आवाज आई—हसन, बाहर कौन है ?

"एक मुसाफिर है, मालिक।"

मालिक ? नौजवान ने देखा और सुना और उसका श्वास जैसे थम गया। वर्षों से तुर्क हिन्दुओ को गुलाम बनाकर ले जाते थे और बरसो से किरात दो-चार तुर्कों को पकड लाते और उन्हे बेच देते। इधर काम्पिलीदेव ने तुर्कों के दुराचरण का मुँहतोड़ जवाब देना शुरू कर दिया था। उन्होने नियम बना दिया था कि युद्ध मे जितने भी तुर्क पकडे जाएँ उन्हे भी गुलाम बना लिया जाए अथवा बेच दिया जाए।

यह तुर्क-सेवक भी ऐसा ही कोई गुलाम होना चाहिए—आगन्तुक ने सोचा। उसने काम्पिलीदेव की नई आज्ञा और नियम की चर्चा सुनी थी। आज उसे प्रत्यक्ष व्यवहार मे देखा। इससे चारो ओर यह बात फैल गई थी कि तुर्कों मे कोई गैबी या खुदाई ताकत नहीं है। काम्पिलीदेव ने उन्हे नाको चने चबवाए है और युद्ध मे उन्हे कैदकर गुलाम भी बनाया है। और खास जरूरत होने पर किरात लोग तुर्क गुलाम को पकड़ लाते हैं।

नौजवान ने इस तुर्क को देखा, तो उसके मन मे यह प्रश्न उठा कि ऐसे तगडे और बलवान तुर्क को ब्राह्मण ज्योतिषी कहाँ से पकड़ लाए !

नौजवान ने भीतर प्रविष्ट होने के लिए पैर उठाया और तुर्क अदब से एक ओर हट गया। फिर तुर्क-सेवक ने दरवाजा बन्द कर दिया।

भीतर एक चौक था, जिसके बीच मे घना छायादार पीपल था और तुलसी की क्यारियाँ बनी थी।

सामने एक जालीदार बरामदा था। बरामदे के बीच मे एक झूला लटक रहा था। बरामदे की दीवार पर छत तक, लाल कपडे मे बँधी हुई पुस्तके और पोथियाँ सजी थीं। प्रत्येक पोथी पर सख्या लिखी हुई थी। पूरे बरामदे मे एक बड़ी-सी दरी बिछी हुई थी। और एक कोने मे पानी के मटके रखे थे, जिन पर धातु के ढक्कन ढके थे। नीचे पानी पीने के लिए कुछ पात्र रखे हुए

थे। ज्योतिषी से भेंट के लिए आनेवाले बहुसख्यक लोगो के लिए यह व्यवस्था थी।

दरवाजा बन्दकर तुर्क अन्दर आया और उसने नौजवान से कहा—आप ऊपर जाइए। पडितजी ऊपर है।

नौजवान सीढियाँ चढने लगा।

ऊपरी भाग मे भी इतना ही लम्बा बरामदा था और वहाँ भी पोथियो का पार न था। पडितजी की विद्वत्ता मे, यदि किसी को सन्देह हो तो पोथियों के इस भडार को देखने पर, दूर हो सकता था।

नौजवान जब ऊपर गया तो उसने खुले हुए दरवाजे से देखा, सामने ही ज्योतिषीराज पडित गगाराम विप्र बिराजे हुए थे।

ज्योतिषी के सिर पर लाल बनात की बडी और कामदार टोपी थी। यह टोपी कान और गर्दन तक पहुँचती थी। उसके कानो मे हीरे के कुडल थे। हीरे बडे कीमती और आबदार थे। उन पर सूर्य की किरणे पडने पर कुडलों से आलोकपूर्ण प्रतिबिम्ब ज्योतिषी के मुख के सामने पड़ता।

ज्योतिषी का चेहरा लम्बा और पतला था। परन्तु इस समय वह स्पष्ट नहीं दीख रहा था, क्योकि दाढी से ढका हुआ था। ज्योतिषी का आधा शरीर वस्त्ररहित था। और उस पर यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था। गले मे रुद्राक्ष की कई मालाएँ पडी थी।

गोरे भाल पर भस्म का त्रिपुड लगा था। गगाराम पीताम्बर पहने हुए था। इस समय वह नीचे बैठा हुआ था। परन्तु यह स्पष्ट लग रहा था कि वह एक लम्बा आदमी है। शीशम के पटिये पर मृगचर्म बिछाकर वह बैठा था। पास मे, चाँदी से मढी पादुकाएँ रखी थी। ज्योतिषी का चेहरा सूखा था और उसकी आँखें बहुत पास-पास थीं।

"आइए, बैठिए।" दाढ़ी मे छिपे हुए दो होठों से आवाज आई, "क्या काम है?"

"जी, ख्याति सुनकर, आपके पास आया हूँ। एक प्रश्न पूछना है।"

"कौन-सा प्रश्न?"

आगन्तुक नौजवान ने इधर-उधर देखा। पडितजी का अभ्यास-खड

अथवा व्यवसाय-खड एक विद्वान व्यक्ति के योग्य था। और यह छिपा न था कि इस खड मे बैठकर ज्ञान-चर्चा करनेवाला विद्वान साधारण व्यक्ति नहीं है—विद्वान तो है ही, धनवान भी है। एक ओर चॉदी के पात्र चुने हुए रखे थे। पास ही पूजा की सामग्री सजी हुई थी, मानो अभी ही प्रात.पूजन पूर्ण कर पंडितजी निवृत्त हुए है।

नौजवान ने अपनी शाल के नीचे छिपी एक थैली निकाली और पडितजी के सामने रख दी।

"फूल तो नहीं, यह पखुड़ी, दक्षिणा के रूप मे स्वीकार कीजिए। और मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।"

"क्या है तेरा प्रश्न ?" सामने पटिए पर रखी थैली की ओर ज्योतिषी ने देखा तक नहीं।

"जी, अपना प्रश्न पूछने से पहले मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूँ, ताकि प्रश्न की रूपरेखा आपकी समझ मे आ जाए। शायद मेरी कोई बात प्रश्न की विचारणा के समय आपको उपयोगी प्रतीत हो।"

"अच्छा, तुझे जो कुछ कहना हो, कह। आजकल समय बड़ा विचित्र और विकट है। इसलिए स्वाभाविक है कि लोग अपने प्रारब्ध के विषय मे उत्सुकता दिखलाएँ। इसी से मेरे पास समय की कमी रहती है।"

"मैं व्यर्थ ही आपका समय नष्ट नही करूँगा। किन्तु लौकिक व्यवहार और शास्त्राज्ञा ऐसी है कि प्रश्नकर्त्ता को ज्योतिषी अथवा वैद्य से कोई चीज छिपानी नहीं चाहिए।"

"वैद्यों की बात तो मैं नहीं कहता, परन्तु हॉ, ज्योतिषी से अपने मन की बात नही छिपानी चाहिए। बेटा, भाग्य के लेख सूत्र-रूप मे लिखे हुए रहते है। उन्हे समझने और समझाने के लिए ज्योतिषी के सामने जितने अधिक प्रसग और सयोग हों, उतना अच्छा ! परन्तु एक बात याद रखना, समय की मर्यादा होती है।"

"जो आज्ञा !" जवान ने कहा, "मैं नहीं जानता, आप हमारे प्रदेश मे कब आए, परन्तु उसके पूर्व जो घटनाएँ घटी है और जो कुछ मैं कहना चाहता हूँ उनकी गूँज दूर तक गई है।"

"नौजवान ! तेरे प्रदेश मे आने से पूर्व-तुरुष्क हमारे प्रदेश मे आ चुके थे। मैंने भी अपना राज-कोष लेकर भागते हुए राजा को देखा है। मैंने भी बिना युद्ध के सेना को तहस-नहस होते देखा है। मैंने भी गॉवो को भस्म बनते और शहरो को विनष्ट होते देखा है। ब्राह्मणो को मारे जाते, क्षत्रियों को भागते और वणिको को लुटे जाते देखा है। मैंने हजारो स्त्रियो और बच्चो को गुलाम बनाकर ले जाते देखा है। तुर्की सेना के प्रयाण-पथ पर मैंने दोनो ओर स्त्रियो और बालको के अस्थि-पजर देखे है। मैंने पवित्र रेवा नदी को ब्राह्मणो के लहू से लाल होते देखा है। मैंने अपने गॉव कन्याली मे तुरुष्को का पडाव देखा है। अब तू यही पूछना चाहता है कि तेरी बहन, पत्नी अथवा पुत्री कहॉ है? तुझे उनकी जन्म-तिथि याद है? तेरे पास तेरी अपनी जन्म-कुडली है?"

"ज्योतिषीजी, यह बात तो सच है कि मेरा स्वजन खो गया है। परन्तु वह न तो मेरी बहन है, न पत्नी और न पुत्री ही। मेरा जो खो गया है, वह तो मेरा देव है।"

"देव!" ज्योतिषी की वाणी मे विस्मय की झलक थी, "मैंने आज तक कई विस्मयजनक बातें सुनी हैं, किन्तु तेरी बात सुनकर ही मैं पहली बार विस्मित हुआ हूँ। तेरा प्रश्न तेरी पत्नी, पुत्री या बहन के विषय मे नहीं है, देवता के विषय मे है, यह जानकर मुझे भारी विस्मय हो रहा है! देवता खो गया है? कौन-सा देवता, कहाँ का देवता? क्या तेरे मन मे मानव के प्रति प्रेम नहीं रह गया है कि देवता के मोह मे पड़ा है? और तुर्कों के प्रहार से कौन-सा देव सुरक्षित रह गया कि तेरा देवता अब तक रक्षित रहता!"

"तब ज्योतिषीजी, देव की खोज मे आपका ज्योतिष सहायक नहीं हो सकता?"

"नौजवान! मानव के मस्तक मे विधि स्वय भाग्य लिखता है। परन्तु देवो के भाग्य मनुष्यों के अन्धविश्वास और अन्धबुद्धि ही लिखते है। मनुष्य की **परमता** की थाह सभी विद्याएँ पा सकती है, किन्तु मनुष्य की **पामरता** की थाह कोई विद्या नही लगा सकती!"

"पण्डितजी, जैसा आप कहते है, वैसा ही होता होगा। परन्तु मैंने अपनी

आँखो कभी मनुष्य की पामरता नही देखी । मैने तो तुर्को से लडनेवाले वीरो के पराजय के विजय युद्ध देखे है । इसी तरह की रणलीला लीलावरो के देव के विषय मे मै आपसे कह रहा हूँ ।"

'देश, काल, धर्म, सस्कृति, परम्परा और जाति के समक्ष जिस समय घोर धर्मयुद्ध उपस्थित होता है, तब मनुष्य की पामरता और परमता की परीक्षा हो जाती है। मैने तो युद्ध-स्थल को पीठ दिखाते, भागते, लुटे जाते, पकडे जाते, गुलाम बनाकर ले जाए जाते लोगो को ही देखा है । मैने देखा है कि पामर लोगो ने अपने देवता को बचाने के लिए तुर्को को गाडी भर-भर सोना दिया है ।"

"पडितजी ! आपने वारगल का नाम सुना होगा ! जिस समय राज्य नष्ट हो रहे थे, शहर नष्ट हो रहे थे और सेनाएँ भाग रही थी—राजा और नेता भाग रहे थे तब अकेला वारगल अडिग, अचचल खडा था। उसकी धरती से किसी ने पलायन नही किया । कोई पामरता का शिकार न बना । धर्मयुद्ध की पुकार किसी के द्वार से खाली न लौटी ।"

"मैंने वारगल की खबरे सुनी है । उनका तेरी बात से क्या सम्बन्ध है ?"

"जी, यदि आपने वारगल के सवाद सुने है, तो मुझे अधिक कुछ नही कहना है । इस नगरी मे कोई जीवित नही बचा था ।"

"यह भी मैंने सुना है ।"

"तब आप मेरा प्रश्न सुनिए—वारगल नगर के महादेव कुलदेव थे रणभैरवनाथ । रणभैरवनाथ की मूर्ति वारगल के युद्ध के समय गुम हो गई है । उसी के बारे मे मेरा सवाल है ।"

"पागल हो गया है क्या ? जहाँ सारा शहर भस्म हो रहा हो, वहाँ पत्थर का एक छोटा-सा टुकडा कैसे अखड रह सकता है ? जहाँ राजा से लेकर ब्राह्मण तक के घर-बार धू-धू जल रहे हो वहाँ देव प्रतिमा का हिसाब कौन रख सकता है ? वह भी राख बन गई होगी ।"

"लेकिन पडितजी, एक बात है, वह मूर्ति राख कभी नहीं होगी, क्योकि वह वारगल के असली हीरे की बनी थी। आठ अगुल ऊँची और दो अगुल चौड़ी थी । एक ही अखड हीरे से उसका निर्माण हुआ था । और इस ससार

मे ऐसा कोई मन्त्र-यत्र नही कि उस मूर्ति का अणु-भर भी उससे अलग हो सके, कट सके या काटा जा सके।"

विप्र गगाराम ने कटु हँसी हँसते हुए कहा—तो इस विषय मे अपनी सामान्य बुद्धि से प्रश्न पूछ। मेरी विद्या को कष्ट देने के लिए क्यो आया? मनुष्यो के राग-द्वेष और सगरो से बने युद्ध-जनित खडहरो मे दबे पडे पदार्थ ज्योतिष विद्या की परिधि मे नहीं आते। तू जाकर उन्हीं खडहरो मे खोज!"

"पडितजी! आज पॉच-पॉच साल से मैं साधु, अभ्यागत फकीर, दरवेश और दडी के रूप मे खडहर-खडहर मे घूम रहा हूँ, परन्तु मुझे कुछ न मिला। मैं पूछता हूँ, अपने जीवन की अन्तिम घडी मे महाराज प्रतापरुद्र अथवा भगवती रुद्राम्मा ने मूर्ति की कोई व्यवस्था की हो तो आप प्रश्न-कुडली देखिए!"

"बस्ती निर्जन वन बन गई! योद्धागण शव बन गए और तुझे देवमूर्ति की पड़ी है?"

"पडितजी! वह मूर्ति रणभैरवनाथ की है। रणभैरव वारगल के लोक-पाल, दिग्पाल है। उनके नाम पर वारगल का नया ध्वज फहराया जा सकता है। वे वारगल के सर्वस्व—सत्त्व है।"

"अब तेरा सवाल मेरी समझ मे आया।"

विप्र गगाराम उठकर खडा हो गया। ऊपर एक पोथी उठाने के लिए उसने हाथ फैलाया।

लेकिन फैला हुआ हाथ ज्यो-का त्यो रह गया।

उसने सुना—नीचे कोलाहल। कई आदमी अस्त्र-शस्त्र लेकर घूम रहे है, यह स्पष्ट प्रतीत हुआ। फिर उसने हसन की चीख सुनी। और दूसरे ही पल रक्त बहता बायाँ हाथ लिये हसन दौडता हुआ ऊपर आया।

विप्र गगाराम ने विस्मय की एक दृष्टि डाली। और मानो उसकी वाचा का हरण हुआ हो, एक शब्द भी उसके मुख से नहीं निकला।

और सामने ही, हसन की प्रचडता से भी प्रचड, गगाराम की लम्बाई से भी लम्बा एक प्रचड और कद्दावर व्यक्ति नगी तलवार लिये आया।

प्रश्नकर्त्ता नौजवान ने आगन्तुक को देखा—कौन महाराज काम्पिलीदेव?

अपना नाम सुनकर आगन्तुक ने सामने देखा—क्षण-भर देखते रहे,

दूसरे क्षण बोले—कौन, कृष्णाजी, जरा एक क्षण ठहरिए ! हम फिर बातचीत करेंगे।

और उछलकर महाराज ने गगाराम की दाढ़ी पकड ली और जोर से आवाज दी—अमरनायक नागदेव !

पच्चीस-छब्बीस वर्ष का एक नौजवान भीतर आया। उसके हाथ मे भी नगी तलवार थी।

"पकड लो इस विद्रोही विप्र गगू कन्याली को। यह तुर्को का गुप्तचर है।"

और महाराज काम्पिलीदेव ने ज्योतिषी की दाढी पकडकर अमरनायक की ओर धकेल दिया।

तभी कृष्णाजी के मुँह से आश्चर्य की चीख निकली—विप्र गगाराम की विशाल, भव्य और जोगी-जटा-जैसी दाढी काम्पिलीदेव के हाथ मे रह गई !

काम्पिलीदेव ने भीषण-अट्टहास किया—अरे, कैसा ब्राह्मण ? कैसा ज्योतिषी ? यह तो विप्र-विनोदी विप्र विरोधी, पाखडी गगू महाराज, यवनो का दास है। अमरनायक नागदेव, पकड़ लो इसे और इसके तुर्क साथी को, और ले जाओ दोनो को वध स्तम्भ की छाया मे।

५ · तुर्कों की राजनीति

गंगू ज्योतिषी और तुरुष्क सेवक हसन को अमरनायक नागदेव वहाँ से ले चला।

एक गाड़ी के सामने दो गधे जोते गए। गाड़ी के बीच मे गगू महाराज और उसके नौकर हसन को बिठा दिया गया। उनके हाथ और पैर बाँध दिये गए। बँधे हुए हाथ, गाड़ी के एक कडे से बाँधे गए। दोनो पैर गाडी के सामने की दिशा मे बाँधे गए। सबसे आगे-आगे ऊँची ऊँची टोपी पहने दो पहरेदार चल रहे थे।

और सबसे पीछे अमरनायक नागदेव चल रहा था। वह अमरनायक था, राज्य का अमलदार था—इस पहचान के लिए, तीन छोटे हीरे और एक लाल मानिक जड़ा, सफ़ेद पंख का तुर्रा वह लगाए हुआ था। यही राज्य-प्रदत्त चिह्न था।

गाडी के बैलो के सींग सिन्दूर से रँगे हुए थे। सारी गाडी सिन्दूरवर्णा थी। मृत्यु-दण्ड के ये अपराधी वधस्थल पर ले जाये जा रहे थे।

पहरेदारो के हाथो मे बडे-बडे भाले थे। और उन भालो पर काम्पिली की भगवॉ ध्वजा फहरा रही थी, जिस पर सफेद रंग का त्रिशूल बना था। यह काम्पिली की राज्य और राष्ट्र ध्वजा थी। अनेक रणागणो मे काम्पिलीदेव की शूर-वीरता और उत्सर्ग की साक्षी थी यह ध्वजा।

वधस्थल जितना दूर था, उतना निकट भी था। सारे नगर के सभी मुख्य मार्गों पर होकर यह सवारी जानेवाली थी। एक-एक मणिग्राम, बणीग्राम और मदिर के सामने यह सवारी रुकनेवाली थी, जहाँ पहरेदार और उद्घोषक रुक-कर तुरही के नाद पर घोषणा करनेवाले थे :

'सुनो, नागरिको, सुनो ! जिनका सम्बन्ध हो वे सब सुनें, जिनका कुछ सम्बन्ध न हो, वे भी सुने ! यह रहा विप्र-विरोधी गगू कन्याली, नर्मदा-तट का गुजराती ब्राह्मण—इसे और तुरुष्क गुलाम हसन को वधस्थल पर ले जाया जा रहा है। इसका अपराध है तुर्की सुरत्राण और सूबा के लिए हमारे पवित्र देश मे गुप्तचर का काम करना ! इसका यह अपराध, स्वय महाराज काम्पिलीदेव की ऑखो के सामने, प्रमाणित हुआ है और महाराज ने अपने श्रीमुख से इसे देहान्त दण्ड दिया है। सुनो ओ नागरिको ! सब सुनो ! आगे कोई व्यक्ति ऐसा अपराध करेगा तो उसे यही दण्ड दिया जाएगा। सुनो, सभी सुनो, नागरिक जन सुनो !"

इस प्रकार विप्र गगाराम को सवारी वधस्थल की ओर बढ रही थी। वधस्थल पर एक प्रचड-शिला रखी हुई थी। इस शिला पर अपराधी को सुलाया जाता था और दण्ड-हस्ती, जिसे 'राजदण्ड' भी कहा जाता था अपराधी को अपने पैरो तले कुचल देता था।

भयकर अपराधो का भयकर यह दण्ड था। दण्ड की घोषणा नगर के द्वार-द्वार पर होती थी।

इस प्रकार वधस्थल की ओर गगू महाराज की सवारी जा रही थी। उधर उसके मकान पर महाराज काम्पिलीदेव, उनके दो-चार गरुड़ और कृष्णाजी नायक रह गए थे।

काम्पिलीदेव ज्योतिषी के खड की पुस्तके उठा-उठाकर फेकने लगे। वे उनकी तलाशी ले रहे थे। कुछ तो सचमुच की पोथियाँ थीं। कुछ मे भोजपत्र के रग के कागजो पर दक्षिणापथ मे राय हरिहर क्या कर रहे है, किस प्रकार कर रहे है?—आदि का विवरण था। इन्ही पर काम्पिली नगर का पूरा हाल-चाल और गुप्त समाचार लिखे गए थे। जिस गुप्त रहस्य को इने गिने राज पुरुष ही जानते थे, वह भी इन कागजो पर अकित था

महामडलेश्वर राय हरिहर तुगभद्रा और कृष्णा के सगम-स्थान पर कुर-नूल से लेकर ठेठ पश्चिम समुद्र पर स्थित होनावर तक, कहाँ-कहाँ दुर्ग बनवा रहे है—इस विषय का पूरा विवरण इन पत्रो पर अकित था। काम्पिलीदेव पढकर चकित रह गए! एक और रहस्य अकित था—"राय हरिहर से यदि तुरुष्को का युद्ध हो तो काम्पिलीदेव राय हरिहर का साथ देगे। और इस-लिए दोरासमुद्र से राय हरिहर के प्रतिनिधि के रूप मे अमरनायक नागदेव यहाँ आया है और वही काम्पिलीदेव की सेना का सचालन करता है।

महाराज काम्पिलीदेव ने विप्र गगाराम का सारा घर खुदवा डाला। जहाँ-जहा उन्हे शक था, वहाँ-वहाँ जमीन खोदी गई। एक स्थान पर तुर्की सिक्के हुई (दीनार) मिले। देशी वराह भी मिले।

दूसरे स्थान पर भाँति भाँति के कपडे और आभूषण मिले। हीरा-मोती के अलकार और परवेश! इन्हीं मे बड़ी एक तलवार भी थी!

यह तलवार—ऐसी-वैसी तलवार न थी। सबका ध्यान आकर्षित करने-वाला था इसका आकार-प्रकार। इसे देखकर लगता था, मानो इस पर चींटियाँ चल रही है। इसके भीतर हिलते-चलते डोरे दिखाई देते थे। काम्पिलीदेव की एड़ी से चोटी तक इसकी लम्बाई थी। वजन मन-भर था। मूठ सोने की थी और उस पर हीरे जडे हुए थे।

जिन लोगों ने इस तलवार को नहीं देखा था, वे भी इसकी कीर्ति कथा से परिचित थे। तुर्को से जग लडनेवाला, युद्ध-रसिक इस तलवार को धारण करनेवाला कौन वीर था वह? कौन है, जिसे इस तलवार की प्रसिद्धि और सिद्धि का परिचय न मिला हो? जिसने इसे एक बार भी नहीं देखा, वह एक बार भी देख लेने पर इसे पहचान जाता। समस्त दक्षिणापथ मे इस

तलवार की कहानियाँ प्रचलित थी और घर-घर मे किंवदन्तियाँ फैली थीं। साधारण मानव के हाथ मे नहीं, किसी देवपुरुष के हाथ मे ही यह शोभा दे सके। इसकी लम्बाई ऐसी ही थी! इसकी नीली आभा ऐसी थी, मानो आकाश की मुस्काती हुई बिजली धातु मे ढल गई हो! एक ही बार मे हाथी का कुंभस्थल काट दे और एक ही वार मे महीन रेशम को इस प्रकार काट डाले, मानो तेज कैंची से काटा गया हो। ऐसी थी इसकी धार और इसका पानी।

इस तलवार की मूठ पर सोना मढा नहीं गया था, पूरी मूठ ही शुद्ध सोने की बनी थी। उस पर वर्षो देश-विदेश के बाजारो मे खोज करने पर प्राप्त होनेवाले विरल हीरे, लाल और माणिक जडे हुए थे। उनसे सप्त-तारक बनाये गए थे। उनके चारों ओर नीलमणि की नीली रेखा बनाई गई थी।

और इस तलवार को कौन नही जानता था?

यह थी गुजराती तलवार—गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल ने यह तलवार कर्नाटक के राजा को भेंट मे दी थी। और कर्नाटक के राजा ने गुजरात के बाघेला राजा बिसलदेव को भेंट मे दी थी। बिसलदेव के पौत्र राय करणवाघेला को यह पैतृक अधिकार मे मिली थी।

ऐसी तलवार केवल शोभा के लिए होती है, उसे कोई चला नहीं सकता, कोई काम मे ले नहीं सकता। इतनी लम्बी और भारी तलवार भला कौन चला सकता है? इसकी सोने की मूठ का वजन ही पन्द्रह सेर था!

शुरू-शुरू मे तो लोगो की यही धारणा थी। तुर्क लोगो ने गुजरात पर आक्रमण किया तब उनका सामना करने के बजाय राय करणवाघेला मैदान छोडकर भाग गया। किन्तु बाद मे उस वीर क्षत्रिय ने अपनी इस तलवार का जौहर दिखलाया। अनेक रणांगणो मे यह तलवार आकाश की सुलगती हुई बिजली की सहेली बनकर चली थी।

रायकरण दक्षिण मे भागकर आया और उसने वीर मृत्यु पाई या कैसे वह मरा यह कोई नही जानता। (दक्षिण के मुस्लिम इतिहासकारो का मत है कि गुजरात का राजा करण दक्षिण मे सवत् १३८१ तक तुर्को से लडता रहा।) वर्षों तक उस वीर का नाम साल मे एक-दो बार सुनाई देता रहा।

काम्पिलीदेव ने कहा—देखो यह तलवार ! कोई इसे चला सकता है, इस बात पर आपको विश्वास नहीं होगा। यदि मैंने भी इसे कई रणक्षेत्रों में बिजली चमकाते न देखा होता तो मैं भी मान लेता कि यह तलवार-मात्र शोभा के लिए है।

कृष्णाजी ने कहा—यह तलवार एक महारथी की है। इसके अतिरिक्त इसका दूसरा महत्त्व यह भी है कि आज भी बाजार में इसका मोल कम से-कम एक लाख वराह तो अवश्य होगा।

"लेकिन इस तलवार से ही राजा करण का अन्त आया। अवश्य इस दुष्ट ब्राह्मण ज्योतिषी और इसके गुलाम ने मिलकर, उस महावीर की हत्या की है। तभी न उनके पास है यह, वरना भगवान् पम्पापति विरूपाक्ष के मंदिर में यह सुशोभित होती अथवा राय हरिहर के राजकोष की शोभा बढ़ाती। आश्चर्य है यह तलवार कैसे इस विप्र-विरोधी दुष्ट के हाथ लग गई?" काम्पिलीदेव ने कठोर हँसी हँसकर कहा, "भगवान् कालमुख विद्याशंकर के विजय-धर्म के उत्तरी मोर्चे का मैं संरक्षक हूँ। मक्खी के बीस और इन्द्र के सौ आँखें होती हैं। लेकिन मेरे यदि हजार आँखें न हों तो मैं तुंगभद्रा को पारकर दक्षिण में आनेवाले तुर्कों से कैसे लोहा ले सकता हूँ? आक्रमण यदि होता है तो सबसे पहले जिस राज्य पर होता है उसका राजा मैं, सबसे पहले दुर्ग का दुर्गपाल हूँ।"

"महाराज आप विजय-धर्म की जो सेवाएँ कर रहे हैं, उनसे कौन अपरिचित है?"

काम्पिलीदेव ने प्रचंड रूप से हँसकर कहा—यदि कृष्णाजी नायक ही काम्पिलीदेव की खुशामद करने लगेंगे तो विजय-धर्म और विजय-राज्य का क्या होगा। मैं अपने सिर पर संकटों और आपत्तियों के पहाड़ उठा रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ। और मुझे इस कठिनाई में ही खुशी है। कृष्णाजी, मुझे मृत्यु का तनिक भी भय नहीं है। और जो मृत्यु से डरता है वह न तो काम्पिली नगर में और न अंगदाई राज्य में ही रह सकता है। तुर्कों का खयाल था कि वारंगल का विनाशकर उन्होंने अपने दाहिने बाजू को मजबूत बना लिया है और अब वह सही-सलामत है। और अब उन्हें समूचा दक्षिणापथ सहज ही

मिल जाएगा। लेकिन आज पूरे सात सालों से उनके छक्के छूट रहे है। पूरे सात वर्षों से दिल्ली का सुलतान अपने देवगिरि के सूबा, मालवा के सूबा, गुजरात के सूबा, सागर के सूबा और वारगल के सूबा के साथ दक्षिणापथ को हड़पने का षड्यन्त्र रच रहा है। परन्तु होनावर मे उदयभानु, वातापि मे सगमराय और काम्पिली मे मै काम्पिलीदेव हूँ। हम तीनो ने जो व्यूह-रेखा तैयार की है उसे तुर्क आज सात-सात वर्षों के निरन्तर प्रयास करने पर भी तोडने मे असमर्थ रहे है।

"इसके लिए, महाराज, समस्त दक्षिणापथ आपका ऋणि है। महाकरणाधिप दादैया सोमैया ने भगवान् के विजय-धर्म और विजय-राज्य-विषयक जो सूत्र-मुक्तावली लिखी है उसमे उन्होने लिखा है कि यदि दक्षिणापथ मे भारतीय सस्कृति और आर्य-परम्परा जीवित रहती है तो उसका एक-एक अक्षर महाराज काम्पिलीदेव के लाल लहू से लिखा जाएगा।"

"महाकरणाधिप का हृदय विशाल है, इसलिए वह अपने-आपको भूल जाते है। इसके बाद राय हरिहर जो उनके पुत्र के समान है, उन्हे भी महाकरणाधिप भूल जाते है। राय हरिहर स्थिरप्रज्ञ है इसलिए उन्हे नाम की चिन्ता नही। महाकरणाधिप को मेरा स्मरण है। यह उनकी महानता है। परन्तु उदयभानु और सगमराय के नाम भी कदापि भुलाये नहीं जा सकते।"

"इन महावीरो के नाम कौन भूल सकता है? आज दक्षिणापथ के घर-घर मे माता-पिता अपने बालको को इनके पुण्य-पराक्रम की कथा सुनाते है।"

"सच है, बालको के चरित्र-निर्माण के लिए प्रतापी पुरुषो की जीवन-गाथा का श्रवण जरूरी है। कृष्णाजी, महानदियो की बाढ को रोकना आसान है, लेकिन तुर्को की बाढ को रोकना आसान नही है। लेकिन दक्षिणापथ ने उसे रोककर दिखा दिया। कहने का मतलब यह है कि दक्षिणापथ मे विजय-धर्म की पहली चौकी हमारी है, इसलिए सजग रहना हमारे लिए जरूरी है।"

"जी. जो नर सावधान रहता है वह सदा सुखी रहता है। अमरापुरी मे जो जागता है वह जीता है और जो सोता है वह मरता है। भारत-भर मे हमने अधिक-से-अधिक हानि इसलिए सही कि हम अधिक गफलत मे रहे।

हमे यह समझने मे समय लगा कि तुर्कों के लिए किसी प्रकार का साहस अशक्य नही है। और किसी प्रकार की यात्रा असम्भव नही है।"

"मै अभी भगवान् विद्याशकर की पदवन्दना के लिए गया था, वही माधव नामक उनके एक शिष्य से मेरी भेट हुई। कृष्णाजी, गुरुदेव ने यह बहुत अच्छा शिष्य तैयार किया है। वह वेद की सहिता रट रहा था। उस समय मै गुरुदेव को राय हरिहर और महाराज बल्लालदेव के समाचार सुना रहा था। जब मै चलने लगा तब माधव ने कहा था—महाराज, एक बात स्मरण रखना। जिस घड़ी तुरुष्कों का लूट का मार्ग बन्द हो जाएगा उस घडी उनके अन्दर वैमनस्य जन्म लेगा। आज उनमे जो दृढता है वह हमारी निर्बलता के कारण है। हमारी निर्बलता ही उनका बल है। मैं तो माधव की बात सुनता ही रह गया।"

"अरे, यह तो उसने बड़ी अच्छी बात कही।"

"इस घटना पर मैने गुरुदेव से कहा कि अपने शिष्य को मुझे दे दें। मैंने कहा—गुरुदेव, हम सब गोमातक के दुर्ग को जीवित करना चाहते है। इस उद्देश्य को पूर्ति के लिए उदयभानुजी परिश्रम कर रहे है। तुर्कों के हमले पर हम सागर मे आगे बढ जाएँगे और यदि वे गाफिल रहेगे तो हम उन्हे भगा देगे। इसलिए तुको की राजनीति पर नजर रखने के लिए होनावर महत्व का केन्द्र है और वह एक आँख की तरह है। अब दूसरी आँख के रूप मे गोमातक की योजना करनी चाहिए। यदि यह कार्य करना है तो मुझे यह लडका दे दीजिए। इस पर गुरुदेव ने कहा था कि यह लड़का तो केवल एक है और माँगनेवाले अनेक है। आचार्य विद्यातीर्थ महाराज पूर्वदा की व्यवस्था के लिए इसे माँगते है। महाकरणाधिप सोमैया नायक भी इसे चाहते है। जठाई-मलाई के कपाय नायक थी इसे माँगते है। किन्तु अभी इस लड़के के बाहर निकलने मे काफी समय है। इसके बाद गुरुदेव को उत्तर देना कठिन था।"

"गुरुदेव आठ शिष्यो को प्रशिक्षण दे रहे है, क्या यह सच है?" कृष्णाजी ने पूछा।

"हाँ, वे सब बडे काम के आदमी है। लेकिन उनके लिए हमे मैदान

साफ रखना पडेगा। कृष्णाजी, मेरी बात मानिएगा। दक्षिणापथ जीवित रहेगा और दुनिया को दिखा देगा। तुर्कों का ज्वार सिर्फ हमारी ओर ही नहीं, बाली और ताजी द्वीपो तक गया है। सभी ओर ये लूट मचा रहे है। आग लगाते है और लोगों को गुलाम बनाते है। प्रत्येक स्थान पर इनके विनाशक प्रवाह को रोक देने की समस्या पर विचार किया जाता है, परन्तु दक्षिणापथ ही इस कार्य को सम्पन्न कर दिखाएगा और विजय-धर्म सब की आशा बनेगा। मुझे इस बात मे तनिक भी शका नही है और कृष्णाजी, इस बात मे भी शका नही है कि इस सघर्ष मे हम और आप जीवित न बचेंगे। दक्षिणापथ के विजय-धर्म की विजय-पताका दशो दिशाओ मे फहराएगी, लेकिन उसे देखने के लिए हम और तुम नहीं रहेगे।"

"किन्तु हमे उसका हर्ष-शोक तो नहीं है, महाराज!"

"नही। लेकिन सवाल समय का है। तुगभद्रा के किनारे हम जीवित मानवो की दीवार खडी कर देना चाहते है, इस काम के लिए अभी पर्याप्त समय की आवश्यकता है। इसलिए तुर्को के विरुद्ध सतत सावधान रहना पडता है। और तुर्क यह मानते है कि हमारे पास समय नहीं है। और हम जानते है कि हमे समय की जरूरत है।"

"जी।"

"इसलिए तुरुष्को के अतरग को परखने के लिए मैंने अपने स्वभाव के विरुद्ध कुछ प्रबन्ध किया है। उसके द्वारा मुझे ज्ञात हुआ है कि काम्पिली मे महाज्योतिषी आचार्य का ढोंग रचनेवाला यह विप्र-विरोधी गगू कन्याली स्वय है।"

"तो क्या यह विप्रवर गगाराम महाराज नही है? इस ज्योतिषी की प्रसिद्धि ठेठ कावेरी के पार पहुँची है और स्वय राजसन्यायी ने ही मुझे इसके पास भेजा था।"

'किस लिए? काम्पिली के किसी नागरिक के बारे मे जानने के लिए, मुझसे पूछने के बजाय चद्रगूरी के दुर्ग से आपको यहाँ भेजा?"

"जी, इसमे आपकी कोई उपेक्षा नहीं थी। यह मेरा निजी काम था।"

"लेकिन आपने भी मुझे याद न किया! ज्योतिषी आप चाहते हों तो

काम्पिली मे उनकी कमी नहीं है और मेरा तथा आपका भविष्य तो कभी से लिखा जा चुका है। तुगभद्रा के किनारे पर हम सब की मृत्यु तुर्कों के हाथो होनेवाली है। मरने पर हम सब के शवो को कुत्ते और सियार खाएँगे। मरने पर न तो हमारा अग्नि-सस्कार होगा और नही पिंड-दान। अब बताइए ज्योतिषी की जरूरत कहाँ रह जाती है?"

"आप जानते है, राजन्, वारगल के विनाश पर जन-मदिर के देव रण-भैरव की मूर्ति अदृश्य हो गई है। मै वारगल का उत्तराधिकारी हूँ और काकतीय यादवो के कुलदेव की खोज मे हूँ।"

"तो इस खोज मे आप इस पाखडी गुजराती की सहायता चाहते थे! कृष्णाजी नायक, जानते है, यह कौन है? जानते है, उसके पीछे बहुत बडी साजिश है।"

"नहीं महाराज।"

"वह ज्योतिषी नही है। वह तो यवनो का गुप्तचर है। उसके देश के जैनो ने अपना देश तुर्कों को बेचा है और अब वह दक्षिणापथ को बेचने के लिए आया है।"

"आपकी सूचना सत्य है। परन्तु कावेरी के तट तक इसकी ख्याति फैली है।"

महाराज ने अट्टहास किया—मैंने कहा न कि यह विप्र नही है। नट और दोमारो का साथी है। ऐसे हजारो नट दक्षिणापथ मे गुप्तचरो के रूप मे भटक रहे है। इसके नट और दोमार जो सूचनाएँ प्राप्त करते है, उन्हे यह तुर्कों तक पहुँचा देता है।

"अच्छा!"

"बड़ा पाखडी है। भयकर आदमी है। आपने यह तलवार देखी है न, सिरोही की भट्टी मे सात-सात साल तक पका हुआ फौलाद, जिसका वजन आधे मन से भी ज्यादा है सिर्फ इसकी धार मे लगा हुआ है। आप इस तलवार को देखते है और यह भी देखते है कि यह तलवार इसके मकान मे मिली है।"

"यह सब मैंने देखा। इस तलवार की प्रशसा भी मैंने आपसे सुनी।"

"कृष्णाजी, लोग मुझे आनेगुडी कहते है। आनेगुडी का अर्थ है, हाथी का गढ। महानवमी के दिन जब मै देवी सह्यवासिनी को भैसे का बलिदान देता हूँ, तो एक ही झटके मे उसका सिर उतार देता हूँ। मुझमे इतनी शक्ति है तथापि मै इस तलवार को नही चला सकता। आप जवान है, वीर है, योद्धा है फिर भी आप इस तलवार को उठा तक नही सकते। महामडलेश्वर के पिता सगमराय को कवियो और पडितो ने हस्तिभीम—नये भीम कहा है, किन्तु वह भी इस खड्ग से नही खेल सकते।"

"महाराज, यह सच है। अवश्य यह तलवार किसी मानव-विशेष के लिए गढी गई है और अवश्य किसी काल मे इसे चलानेवाला भी रहा होगा। लेकिन मा का वह लाल कौन हो सकता है, यह मेरी कल्पना मे नहीं आता।"

"लेकिन कृष्णाजी, मा के उस दुलारे को मैंने युद्ध-भूमि मे इस खड्ग से खेलते हुए देखा है, देवगिरि के महाराज शकरदेव जब युद्ध मे वीरगति को प्राप्त हुए, तब मैने इस तलवार को चमकते हुए देखा था। होनावर और बदामी के जगलो मे मैने इस तलवार का पानी देखा है और उस जौहरी को भी देखा है।"

"वह स्वनाम धन्य कौन था?"

"वह था गुजरात का राजा करणदेव। चारो ओर विश्वासघात और दगाबाजी से भरे हुए अपने देश को छोडकर वह कन्याली और राजपीपला के मार्ग से नर्मदा-पार दक्षिण की ओर निकल गया था। तब यह गगू उसके साथ था।"

"फिर?"

"पन्द्रह वर्ष तक देवगिरि तुर्कों के अधिकार मे रहा और उस अवधि मे रायकरण देवगिरि मे रहकर बाट-घाट मे, जन-निर्जन मे छोटे-बडे मैदान मारता रहा। फिर अचानक अदृश्य हो गया। जानते है, वह किस प्रकार गुम हुआ?"

"किसी समरागण मे काम आये होगे।"

"नहीं, इस विश्वासघाती नमकहराम गगू ने एक अँधेरी रात्रि मे उनकी हत्या कर दी!"

"क्या कहते है, महाराज!"

"यह भयकर पापी है। यवनो की एक दासी चमारिन के साथ इसने घर-ससार बसाया था। यवनो की गुलामी की थी। देवगिरि के सूबा मीर मकबूर के पक्ष मे कॉटे की तरह चुभनेवाले गुजरात के राजा से इसने विश्वासघात किया और उसे धोखे से मारा।"

"यह तो भयकर बात है।"

"भयकर ही है। अपने देश, अपने धर्म और अपने समाज को छोडकर जो आदमी विदेशी म्लेच्छो की शरण मे जाता है, वह केवल लोभ और क्षुद्र लोभ के वशीभूत होकर ही ऐसा करता है। आज यह भयकर लोभी और विश्वासघाती मेरे कब्जे मे आया है। मै आज इसे मारकर, इसका सिर देवगिरि के सूबा के पास भेज दूँगा।"

"आप समर्थ है। महामडलेश्वर ने आपको इस मडल का मडलेश्वर बनाया है। और मै तो एक साधारण सैनिक हूँ "

"ऐसा न कहिए, कृष्णाजी। आप सचमुच धन्य है। आप तो सदेह ससार-सागर से मुक्त हुए है। महाराज प्रतापरुद्रदेव की महारानी महादेवी श्यामभारती महासती उदाली ने आपको अपना पुत्र बनाया है। कृष्णाजी, निश्चय जानिए, एक बार फिर हम वारगल से विदेशी यवन को निकालकर, वहाँ अपना राज्य स्थापित करेंगे और तब आप वहाँ के मडलेश्वर बनेंगे। आपका पद मुझसे कुछ अधिक ही है। कम तो कदापि नहीं। क्योकि आपने महासती उदाली का आशीर्वाद पाया है।"

"यह आपकी महानता है। कल चाहे जो हो, आज तो मैं एक सैनिक-मात्र हूँ और आपसे एक निवेदन करता हूँ।"

"कहिए।"

"यही कि गगू भयकर है, हत्यारा है, पचद्रोह और पचमहापातक का दोषी है, फिर भी इसकी देह ब्राह्मण की है।"

"लेकिन इसके घर मे चमारिन "

"फिर भी देह तो ब्राह्मण की ही रही। सामान्य प्रजाजन इसके वध को ब्रह्म-हत्या के रूप मे देखेंगे।"

"तो क्या मैं काले नाग को जीवित रखूँ?"

"डक कट जाने पर बिच्छू भी विषहीन हो जाता है। दाँत निकल जाने पर भयकर विषधर भी दया का पात्र बन जाता है। आप इसका पिछला इतिहास जानते है, इसके कारनामो से परिचित है। अब इसके हाथ से और अधिक अनर्थ क्या होगा !"

"अधिक तो क्या होगा ? मैं जो बेठा हूँ। मैं इसे पचमहापातक का पूरा दण्ड दूँगा।"

"आप अपने प्रदेश मे सर्वसमर्थ है। अतएव आपके लिए पूर्वदा की परम्परा के अतिरिक्त और कोई मर्यादा नहीं है। यदि मैं आपको उस परम्परा का स्मरण दिलाऊँ तो क्षमा करेगे।"

"भाई कृष्णाजी, मै तो सिर्फ एक सैनिक हूँ। मेरा सारा जीवन सैनिको के बीच समरागण मे बीता है। पडित समाज के बीच मैं कभी रहा नहीं। आप रहे है। मैंने सिर्फ जिनके नाम-मात्र सुने है, उनके चरणो की सेवा करने का सौभाग्य आपको मिला है।"

कृष्णाजी ने हँसकर कहा—मै दूसरी कोई बात नही करता। आपको केवल पूर्वदा की बात याद दिला रहा हूँ। वर्णाश्रम धर्म, पडित-समाज और राज्य मे ब्रह्म हत्या महापाप माना जाता है। भले ही द्रोही है, दगाबाज है, स्वामी-द्रोही, मित्र-द्रोही, राज-द्रोही है, फिर भी गगू महाराज ब्राह्मण है। और इस-लिए लोग इसके मृत्य-दड को उचित नही मानेंगे।

"अरे कृष्णाजी, तुको के द्वारा विनष्ट वारगल के आप राजा, वीर बल्लाल-देव के आप दण्डनायक और आप खुद तुर्कों के गुप्तचर को जीवनदान देने के लिए मुझसे कहते है !"

"मैं तो मात्र पूर्वदा के प्रमाण के अनुसार ब्रह्म-हत्या की ओर से विमुख होने के लिए आपसे निवेदन करता हूँ।"

"ब्राह्मण ? गगू कन्याली ब्राह्मण ? कृष्णाजी, दक्षिणापथ की निर्बलता के कारण तुर्क विजयी हुए है। गगू कन्याली तुर्कों का ब्राह्मण है। विजय-धर्म के अनुयायी दक्षिणापथ मे अब गगू ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता, राक्षस कहा जाएगा। ऐसे नामधारी ब्राह्मण का वध ही सच्चे ब्राह्मणत्व का पोषण करेगा।"

"आप समर्थ है, किन्तु जो एक बार ब्राह्मण कहलाया, उसे मारते हुए सकोच होना ही चाहिए।"

"यदि आप मेरे स्थान पर होते तो क्या करते ?"

"आप क्या करना चाहते है ?"

"मैं ? काम्पिलीदेव क्या करना चाहता है, यह बात न तो छिपी रहती है और न छिपाकर रखी जाती है। सच मानिए, काम्पिलीदेव के निर्णय मे साक्षात् ब्रह्मा भी परिवर्तन नही कर सकता। इसलिए मै क्या करना चाहता हूँ, यह आप पर प्रकट है। तथापि मैं आपको बतलाता हूँ—इस समय सारे नगर मे गगू कन्याली का वधमडल घुमाया जा रहा है। अन्त मे वह वधस्थल पर लाया जाएगा। काम्पिली के दुर्ग के मध्य मे निश्चित स्थान पर दण्ड-हस्ति उपस्थित रहेगा। इस हाथी को पूरी तालीम दी गई है। एक बड़ी शिला पर हाथ-पैर बँधे गगू महाराज को सुला दिया जाएगा। तत्पश्चात् दण्ड-हस्ति उसकी छाती पर अपना पैर रख देगा। उस समय महावत को अमरनायक अपनी राज-मुद्रा दिखलाएगा। तब महावत हाथी को आज्ञा देगा। उस समय हाथी अपने पैर पर अपने शरीर का वजन डालेगा और एक छोटी पर मोटी चीख के साथ गगू महाराज के मुँह से खून का फव्वारा फूट निकलेगा। इस प्रकार इस पचमहापातकी के पापी के शरीर का कचूमर निकल जाएगा।"

"आप सविवरण सुना रहे हैं।"

"हाँ, हम तो अन्तिम सीमा पर स्थित है। दो-चार दिन मे दो चार अपराधी पकडे ही जाते है और दण्ड-हस्ति के सामने फेक दिये जाते हैं। इसलिए इतना विवरण हमे याद रह गया है।"

कृष्णाजी चुप रहा। काम्पिलीदेव का निर्णय अटल था। उसे ब्रह्म-हत्या का डर न था। उसे पूर्वदा की मर्यादा के उल्लघन का भी सकोच न था। कृष्णाजी सोचता रह गया।

काम्पिलीदेव ने एक दम भावहीन स्वर मे कहा—फिर इस दुष्ट का सिर काट लिया जाएगा और देवगिरि के सूबा मीर मकबूर को उपहार के रूप मे भेज दिया जाएगा।

"आप जो उचित समझें कीजिए। मैं आपको क्या कह सकता हूँ। लेकिन   "

"लेकिन आपने मुझे यह नहीं बतलाया कि आप मेरी जगह होते तो क्या करते ?"

"महाराज, यदि मैं आपकी जगह रहूँ तो गगू महाराज को जीवित ही देवगिरि के सूबा के पास भेंट-रूप मे भेज दूँ।"

"जीवित ! आप पागल तो नही हो गए है ?' यह भयकर आदमी है। स्वामी-द्रोही, धर्म-द्रोही, राज्य-द्रोही ! इसने अपने एक राजा की हत्या की है। कृष्णाजी, आखिर आप दक्षिणापथ मे क्या लाना चाहते है ? पचमहापातकियो और पचमहाद्रोहियो का जयजयकार ?"

"महाराज, तुगभद्रा के तट से आपने तुर्कों के दल-बादल देखे है और मैंने भी वारगल के खडहरो से तुर्कों को देखा है। फिर भी मेरी और आपकी दृष्टि मे अन्तर हो, लेकिन मै यह मानता हूँ कि तुर्कों के गुप्तचरों को उनके पास जीवित भेज देना अधिक अच्छा है।"

"वाह ! मुझे अच्छी बात बतलाई आपने। गुप्तचर मरा सो मरा। तुर्कों को दूसरे की खोज करनी पडेगी। यदि यह जीता रहे तो एक न एक नया पाखड पैदा करेगा।"

"एक गुप्तचर के मरने से तुर्कों की बाढ़ रुक न जाएगी, राजन् ! उन्होने इतने गुलाम बना दिए है कि नित्य नये गुप्तचर वे भेज सकते है। यदि हम एक गुप्तचर को मारते है तो तुर्क समझते है कि अभी हम उनसे भयभीत है। और अगर गुप्तचर वापस जाता है तो वे जान लेंगे कि हमे उनका तनिक भी भय नहीं है। और महाराज, हम भयभीत नहीं, और भयभीत होनेवाले नही, यदि शत्रु पर यह बात स्पष्ट हो गई तो समझिए हमने आधी लडाई जीत ली।"

"स्पष्ट हो या न हो, वे तो यह भी सोच सकते है कि हम उनसे इतने भयभीत है कि उनके गुप्तचर को, वध्य होने पर भी, नही मारते।"

"इसीलिए मैं कहता हूँ, महाराज, तुर्कों को देखने और समझने मे आपकी और मेरी नजर मे अन्तर है। मेरी धारणा है कि हमे समय की जरूरत है। हमे वह समय तभी मिल सकता है जब हम तुर्कों पर यह छाप डाल दें, कि

हम इसी घडी लडने को तैयार है। महाराज, जिस प्रकार उत्तर मे रणथम्भौर ने तुर्कों को विचार मे डाल दिया था उसी प्रकार दक्षिण मे वारगल ने तुर्कों को सोचने के लिए मजबूर कर दिया था। हमारे देश, समाज और शासन के विषय मे उनके मस्तिष्क मे अब दूसरी तरह के विचारो का उदयन आरम्भ हो गया। उन्होने समझ लिया है कि केवल लुटेरे बनकर रहने से काम चलनेवाला नही है। व्यवस्थित राज्य-शासन आवश्यक है।"

"यह सब मेरे लिए व्यर्थ है। तुर्कों के मन और मस्तिष्क का अध्ययन करना मेरा नहीं, महाकरणाधिप और महामडलेश्वर का काम है। कृष्णाजी, मेरा तो यही खयाल है कि तुर्क आए तो उनसे लड लेना। या तो उन्हे मार देना या खुद खतम हो जाना। यह तो एक सीधी-सादी बात है—जैसे एक वार और दो टुकडे। आपने जिस राजनीति की चर्चा की वह मेरी समझ से बाहर है, यह तो मानो योद्धाओ के खड्ग को घास काटने के काम मे लेने के बराबर है। मेरी तो एक ही दृष्टि है—मेरी सीमा मे कोई गुप्तचर आता है तो फिर वह चाहे कोई क्यो न हो, पक्षद्रोही और पक्षपातकी के लिए दण्ड-हस्ति प्रस्तुत है। फिर भी मैं आपकी बात पर विचार करूँगा, किन्तु वह मुझे शायद ही पसन्द आए।"

बाहर तुरही की आवाज सुनाई दी। फिर ढोल बजने लगा।

काम्पिलीदेव ने कहा—वधमडल दुर्ग मे लौट आया है। हमारी बातचीत मे काफी वक्त कट गया। चलिए हम दोनो साथ वधस्थान की ओर चले। वहाँ मेरी जरूरत पडनेवाली है।

६ · दण्ड-हस्ति का न्यायदान

गुप्तचर के रूप मे पकडे गए विप्र-विरोधी गगू कन्याली का घर-बार जमींदोज कर देने की आज्ञा देकर काम्पिलीदेव अपने महल की ओर रवाना हो गए। उनके साथ कृष्णाजी भी थे।

उस काल मे नट और नट के करतब दिखलानेवाले लोगो को दोमार कहते थे। एक समय ऐसा था कि दोमार देवाग और ब्राह्मण जितना पूज्य और पूज्य नहीं तो सह्य माना जाता था। दोमारों को स्पृश्य और अस्पृश्य

दोनो ही नही माना जाता था। जिस प्रकार विप्र-भट्ट को अपने कीर्त्तन और कथावाचन के लिए जन-मदिर और सभामडप की सुविधा मिलती है, उस प्रकार दोमार को भी वही सुविधा मिलती है। जब तक वह गाँव मे रहता है तब तक जन-मदिर के रसोईघर मे भोजन पाता है, और कई दोमार तो ऐसे भी होते है जो जाति-मान्य और अग्रहार के अधिकारी माने जाते है। दोमारो पर किसी प्रकार का पेरू (उस काल का राज-कर) नही लगता। उन पर तीस की पूर्वदा (उस काल मे प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आय का तीसवाँ भाग कर के रूप मे देना पडता था।) भी लागू नहीं होती थी। एक गाँव से दूसरे गाँव जाने के लिए गाँव के पचो की ओर से उन्हे वाहन की सुविधा दी जाती थी। यदि मार्ग मे दोमार लूट लिया जाए तो जिस गाँव से उसने प्रस्थान किया हो, और जिस गाँव मे जाता हो, दोनो के महाजन उसकी हानि की भरपाई करते। जोगी, देवाग और दोमार इन तीनो को तो किरात भी नहीं लूटने थे।

यह था उस काल मे दोमार का स्थान, परन्तु तुर्को के आक्रमण के बाद के समय मे दोमार म्लेच्छ से भी हीन माने गए। जब तुर्क आक्रमण करते, तब वे दोमारो को पकड़कर गुलाम के रूप मे ले जाते। और फिर उन्हीं को गुप्तचर बनाकर भेज देते। रोज-रोज की गुलामी से तो घूमने-भटकने का काम मनमौजी दोमारो को अधिक पसन्द आता है और वे नट के रूप मे गुप्तचर बनकर खुशी से निकल पडते।

इसलिए नट तुर्कों का चर होता है यह उस काल मे एक सामान्य मान्यता थी।

ब्राह्मण जितना पवित्र, उतनी उसकी जिम्मेदारियाँ भी अधिक थीं। इसलिए गगू कन्याली का अपराध और वध का दण्ड जनता को उचित ही प्रतीत हुआ। एक तो गगू विप्र-विरोधी, दूसरा पचद्रोही और फिर गुप्तचर— भला ऐसे अधम पातकी को मृत्यु-दण्ड न दिया जाए तो तुगभद्रा की सीमान्त के दुर्गों मे दण्ड-हस्तियो को रखने का अर्थ ही क्या होता?

काम्पिली नगर की प्रजा वर्षो से ज्वालामुखी, भूकम्प और महाप्रलय के ऊपर बैठी थी। तुर्को के प्रचड प्रकोप से कोई अनजान न था। कलयुगी काल-यवन ने इस रहस्य को गाँव-गाँव और घर-घर प्रकाशित कर दिया था। और

अब लोग कहते कि वैसा ही दूसरा कालयवन दिल्ली का सुलतान बन बैठा है। इस सुरजाण के मन मे भी तुगभद्रा के पार चढाई करने के मनसूबे उठे है। इसलिए उसने वारगल को नष्ट किया है और अपनी राह साफ करके वह आग और तलवार लेकर दक्षिणापथ मे आनेवाला है।

इसका यह दुरागमन आज भी हो सकता है, कल भी हो सकता है और साल-भर बाद भी। कब होगा, यह तो सिर्फ सुरजाण ही जानता है किन्तु एक बात तो दिन के प्रकाश की तरह उजागर थी कि तुर्को का आक्रमण अवश्य होगा। देर-अबेर, कालयवन का यादवराज और उसकी प्रजा से भीषण सहार-सग्राम होगा, और अवश्य होगा। ब्रह्मा भी इस घटना को नहीं टाल सकता। और एक तुरुष्क प्रेमी दोमार कवि-भट्ट ने लिखा है—विधि के लेख मिट सकते है, लेकिन तुर्को के लेख कदापि नही मिट सकते।

इस प्रकार की धारणाओ और अफवाहों के कारण जनता मानों ज्वालामुखी के फटने की राह देख रही थी, किन्तु उसका मन एकाग्र और सजग था। उसे गगू कन्याली को दिए गए मृत्यु-दण्ड मे किसी प्रकार की नवीनता नही प्रतीत हो रही थी। अतएव वधस्थल पर दर्शको की भारी भीड़ एकत्र हो गई थी।

ऐसे दुष्टो को अवश्य मृत्यु दण्ड मिलना चाहिए। यह आततायी है और आततायियो का विनाश करने पर ही यादव-कुल-शिरोमणि भगवान् कृष्ण अनन्त कीर्ति के स्वामी बने। और इस न्याय की कठोरतापूर्वक व्यवस्था करने के कारण ही काम्पिलीदेव ने प्रसिद्धि पाई थी। अतएव वधस्थल के चन्द्रस्थान पर सैकडो नर-नारी एकत्र हो गए थे।

और वह प्रचण्ड काली शिला! अति प्राचीन काल मे भद्राचल मे ज्वालामुखी प्रकट हुआ था, उसमे से लावा निकला था। उस लावा के बुझने पर जो ठोस पदार्थ बना, वही यह शिला है। यह काली शिला मानव-रक्त से अनेक बार धोई गई है। और खून का चिकनापन अब भी अवशेष है। सूर्य की किरणे पडने पर इसके लाल और काले रग चमकने लग जाते है।

इस शिला के पास खड़ा है दण्ड-हस्ति। स्वय महाराज की सवारी का राज-हस्ति—राजमगल। ऐसा हाथी जब जवानी बीतने पर कुछ कम चचल, एकाग्र और स्थिर हो जाता है, तब वह दण्ड-हस्ति बनता है। और यह दण्ड-

हस्ति ऐसा था मानो किसी पर्वत का शिखर धरती पर उतर आया हो, मानो किसी ज्वालामुखी ने कोई प्रचण्ड शिला-खण्ड धरती पर फेका हो। पन्द्रह हाथ ऊँचा, जीवित पहाड-सा वह प्रतीत होता था, मानो मातग पर्वत का शिखर जैसे धरती पर आ बैठा हो। इस पुराने दण्ड-हस्ति ने इतनी अधिक सख्या मे वध-कार्य पूरे किये थे कि वह वध-दण्ड की प्रत्येक विधि से परिचित था।

राजमगल दण्ड-हस्ति के आने पर, लोगो ने उसके लिए शिला तक मार्ग बना दिया।

महाराज काम्पिलीदेव आए। लोगो ने उनका अभिनन्दन किया। उसी समय गाडी से अपराधियो को उतारा गया और उनके हाथ पैर बाँधकर उन्हे शिला तक लाया गया। अमरनायक नागदेव ने महावत को राजमुद्रा दिखलाई। महावत ने उसे दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया। और वह दण्ड-हस्ति के पास जाकर खडा हो गया।

अमरनायक ने अपनी बुलन्द आवाज मे कहा—गगृ महाराज, तुम विप्र-विरोधी हो, इसलिए तुम्हे यह दण्ड नहीं दिया जा रहा है, तुमने अपने स्वामी से राज-द्रोह, मित्र-द्रोह और धर्म-द्रोह किया है और इन पच-द्रोहो और पापों के लिए तुम्हे मृत्यु-दण्ड मिलना चाहिए, फिर भी उसके लिए यह दण्ड नहीं दिया जा रहा है। नीच जाति की एक औरत के साथ तुमने अपने ब्राह्मणत्व को भ्रष्ट किया, उसके अपराध मे भी यह दण्ड नहीं दिया जा रहा है। तुमने तुर्कों का दासत्व स्वीकार किया है और गुप्तचर बनकर तुम इस दुर्ग मे आए। इस अपराध के लिए तुम्हें यह मृत्यु-दण्ड दिया जा रहा है। काम्पिली का न्याय तुम्हारा निर्णय करे, उसके पूर्व तुम्हे कुछ कहना है?

हाथ-पैर बँधे गगू महाराज ने चारो ओर देखा। चारो ओर उसने कठोर और दृढ चेहरे देखे। उसका अपना चेहरा सूखा और मुरझाया हुआ था। उसका बदन उघाड़ा था, लेकिन यज्ञोपवीत अब भी गले मे पडा था और भाल पर भस्म-रेखा थी। उसके गले और हाथ मे रुद्राक्ष-माला थी। उसकी आँखे फटी-फटी-सी थी और शरीर काला नीला नजर आ रहा था।

गगू के पापों का हिस्सेदार हसन, दण्ड-हस्ति के सामने वामन-जैसा लग रहा था। वैसे वह लम्बा-तगडा तुर्क था। उसने अपने होठ-दाँतो से दबा रखे

थे और उन पर लहू की बूँदे झलक आई थी। वह भयभीत और त्रस्त था। उसकी नजर दण्ड-हस्ति पर टिकी थी। उसे कोई देखता न था। हाँ, गगू की बात अलग थी। उसने ब्राह्मण होते हुए राक्षसो को भी लज्जित करने-वाला काम किया था।

"गगू महाराज!" अमरनायक ने फिर से घोषणा की, "तुम जानते हो कि महाराज ने तुम्हे मृत्यु दण्ड दिया है और इस स्थल पर आनेवाला व्यक्ति कभी जीवित नही लौटता। अपनी मृत्यु से पूर्व तुम्हे कुछ कहना है?"

गगू महाराज ने कहा—तुरुष्क सूबा के हाथ लम्बे है। दिल्ली के सुरजाण मुहम्मद तुगलक की आँखो मे ज्वाला है। मेरा वध करनेवाला जीवित नही रहेगा।

लोगो ने एक नि श्वास लिया। सैकडो लोगो का यह एकत्र निःश्वास मानो हवा की लहर के समान प्रतीत हुआ। काम्पिलीदेव ने कृष्णाजी के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"देखा कृष्णाजी?" और दो कदम आगे बढकर वह गगू महाराज की बराबरी मे खडे हो गए।

"तुरुष्कों के सूबा के हाथ लम्बे है, इस बारे मे मुझे शक है, परन्तु इस बारे मे शक नहीं कि तुम्हारा सिर इन दो हाथो मे हम पकड़ लें, इतने लम्बे तो ये जरूर है।"

साँप-जैसी जहरीली आँखो से गगू महाराज काम्पिलीदेव को देखता रहा। उसके सिर के कुछ केश खडे हो गए। वह काम्पिलीदेव को इस तरह देखता रहा मानो साँप फन फैलाकर देख रहा हो। उसकी दृष्टि खूनी थी। क्रुद्ध नाग की थी। मनुष्यो को मारनेवाले काले नाग की जीभ की तरह उसकी पतली जीभ उसके सूखे होंठो के बीच मे घूम रही थी।

"काम्पिलीदेव, तुम ब्राह्मण नहीं, इसलिए यह नहीं जानते कि ब्रह्मराक्षस कैसा होता है। ब्राह्मण का वैर उसकी मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहता है और अन्तत. किस का सिर तुरुष्क सूबा के हाथ मे पड़ता है, यह जिस समय घटित होगा उस समय तो तुम जिन्दा भी नही रहोगे।"

काम्पिलीदेव ने अट्टहास किया। इस अट्टहास को सुनकर क्षण-भर के लिए तो मातग के श्रृग के समान दण्ड-हस्ति भी अपनी अलिप्त स्वस्थ दशा

मे से जैसे डगमगा गया। दिशाओ मे डमरू बज रहे हो, इस प्रकार यह अट्ट-हास दर्शको के सिरो पर छा गया।

फिर वह कहने लगे—लीजिए, सुनिए कृष्णाजी, आप जिसकी सिफारिश कर रहे थे उस पचद्रोही की बात सुनिए। यह हमे मौत का डर बताता है।

फिर उन्होने गगू की ओर हाथ उठाकर कहा—अरे गॅवार, यदि तुझे डर ही दिखाना है तो मौत को मेरा डर बता।

"शान्त होइए।" कृष्णाजी ने कहा, "शान्त होइए, महाराज! आपकी निर्भयता जग-जाहिर है। इस पातकी से विवाद करना आपको शोभा नही देता।"

"सच बात है कृष्णाजी, जब मै आदमी को मौत से डरते या मौत से डराते देखता हूँ, तो मेरा मन अकुला उठता है। मौत के साथ मर्द की दोस्ती होती है। सच्चा मर्द तो मरने पर ही अमर होता है। भला लोग इस बात को क्यो नही समझते? इस ससार मे डरने-जैसी तो कोई चीज नहीं।" महाराज ने गगू की ओर देखा।

गगू ने कहा—और काम्पिलीदेव, आप मुझे मौत का डर दिखाते है, जिसने रायकरण के साथ पन्द्रह-पन्द्रह वर्षा तक वनवास किया है!

"और अन्त मे तो तुमने उनकी हत्या ही कर डाली न!" काम्पिलीदेव ने कटाक्ष किया।

गगू का चेहरा नीला पड गया। वह चुप रहा। उसने आस पास देखा। उसके पीछे राज्य शासन के उग्र अवतार के समान अमरनायक नागदेव नगी तलवार लेकर खडा था। नागदेव के पीछे, कुछ दूर पर दण्ड-हस्ति खडा था। उसके पास उसका महावत खडा था।

"यह विवाद व्यर्थ है महाराज," काम्पिलीदेव ने कहा, "अपराधी के पच-महापातक और पचमहाद्रोह कुख्यात है। काम्पिलीदेव दोस्त को भूलता नहीं और दुश्मन को कभी माफ नहीं करता। अमरनायक, आपको मेरा आदेश मिला है और राज-मुद्रा भी मिली है। अब आप आदेश का पालन कीजिए।"

"जी," अमरनायक ने अपराधी के सामने देखकर कहा, "महाराज,

पूर्वदा है कि दण्ड-हस्ति का दण्ड व्यवहार मे लाने के पूर्व, अपराधी की जीवन की कोई इच्छा या भूख बाकी हो तो उसे पूरा किया जाता है।" फिर अपराधी के सामने देखकर अमरनायक ने कहा, "अपराधी, तेरी कोई अन्तिम इच्छा—खाने-पीने या मृत्यु के बाद तेरी देह की व्यवस्था की, शेष है ?"

"आपमे से कोई नर्मदा के किनारे पैदा नही हुआ, इसलिए यह नही जानता कि जीवन की भूख या प्यास क्या चीज है। भूख क्या चीज है, अगर इसे जानना चाहो तो अगला जन्म नर्मदा के किनारे मॉगना। मौत के बाद मेरे शव की व्यवस्था के विषय मे पूछते है, अमरनायक ? आप मेरी इच्छा पूरी करेगे ?"

"राज-दण्ड जीवित लोगो के लिए है, मुर्दों के लिए नहीं।"

"तो सुनिए, मरने पर मेरे शव का अग्नि-सस्कार न करे। इसे यहीं दफन कर दे।"

"तुम ब्राह्मण, तुम्हारा शव गाड़ा जाए ?"

गगू महाराज ने भीषण हॅसी हॅसकर कहा—जिस क्षण मेरी मृत्यु होगी उसी क्षण अमरनायक, मेरी यह देह मेरी न होकर, ब्रह्मराक्षस की होगी। आज या कल उस ब्रह्मराक्षस की शान्ति का भार काम्पिली नगरी पर पडेगा। दूसरी बात यह है कि मै इस काम्पिली नगरी को भस्मसात होते हुए देख रहा हूॅ। तुम्हारे नर-नारियो को तुर्कों के हाथों पकडे जाते देख रहा हूॅ। तुर्कां के सिंहासन तक तुम्हारे बच्चो और स्त्रियो के अस्थिपजर पटे हुए देखता हूॅ, मानो यह सारा मार्ग हड्डियों का बना हुआ हो।

सुननेवाले लोगो ने तिरस्कारपूर्वक धिक्कार कहा। यदि किसी के मन मे कोई शका रही हो, तो गगू के इन शब्दो ने उसे दूर कर दिया कि यह अपराधी ब्राह्मण नही हो सकता, तुर्कों का गुप्तचर ही हो सकता है। इसका वध ही हो सकता है, दूसरा कुछ भी नही।

गगू महाराज काले नाग की तरह ऊॅचा उठा हुआ खडा था। उसने चिल्लाकर कहा—हॉ, सजा पर अमल करो। तुर्कों के पानी की थाह लेना चाहते हो तो ले लो। तुगभद्रा और गगा-गोदावरी के पानी से भी तुर्कों का पानी गहरा है। यदि तुम्हारे मन मे मृत्यु का महत्त्व नहीं है तो मेरे मन मे

तो उसका अस्तित्व ही नही है। सच्चा सवाल तो महाराज, मौत के बाद का है। और तुम्हे उस सवाल का जवाब पाने मे, मै मदद भी करूँगा, किन्तु अपनी मौत के बाद। अब मुझे अधिक कुछ नही कहना है। मेरी मृत्यु लाने के लिए अन्तिम तीर तुम्हारे तरकस मे है उसे भी आजमा लो, लेकिन महाराज, एक बात याद रखना—योद्धा अधूरा काम छोडकर मरते है तो सीधे स्वर्ग मे जाते है, ब्राह्मण अधूरा काम छोडकर मरते है तो ब्रह्मराक्षस बनते है। अपना काम पूरा करने के लिए उनके पास यह दूसरा मार्ग भी है।

गगू महाराज के चेहरे पर मौत का पीलापन छा गया था। उसके बाल और रोगटे खडे थे, किन्तु उसकी आवाज मे तनिक भी कम्प नही था।

लोगो ने दण्ड-हस्ति द्वारा कुचलकर मारे जाते अनेको को देखा था। उन सब अपराधियो ने मौत को प्रत्यक्ष देखकर हाहाकार किया था और दया की भीख माँगी थी। लेकिन इस पक्षपातकी ब्राह्मण की निर्भयता सब को विस्मित कर रही थी। क्या सचमुच यह ब्रह्मराक्षस बनकर लौटेगा?

अमरनायक ने देखा कि बात बढ़ाने मे लाभ नही है। उसने अपराधियों को मौत से बचने के लिए अपने पैरो की धूल चाटते देखा था, लेकिन यह तो मरने के बाद बदला लेने की घोषणा कर रहा था। इसलिए उसने विलम्ब अनुचित समझा। उसने सिपाही को हुक्म दिया—पूर्वदा सन्तुष्ट है। हमने उसकी मर्यादा का पालन किया है। अपराधी का मरणोन्माद प्रलापवत् है। अपराधी, मै तुझे यह सूचना देना चाहता हूँ कि दण्ड-हस्ति के पैरो-तले तुझे न्याय मिलने पर, तेरा सिर देवगिरि के सूबा और तेरे कृपालु स्वामी मलिक मीर मकबूर के पास भेज दिया जाएगा। सिपाहियो, अपराधी को हाथ-पैर बाँधकर शिला पर सुला दो और दण्ड-हस्ति को आगे बढा दो।

"मृत्यु-दण्ड देनेवालो! मृत्यु-दण्ड को सहन करनेवाले को भी देखो। सिपाहियो की जरूरत नही। बढाओ अपना दण्ड-हस्ति।" इतना कहकर गगू महाराज स्वय मजबूत कदम उठाता हुआ शिला तक चला गया।

सैकड़ो अपराधियों के खून से सनी हुई शिला पर वह लेट गया। 'हे नर्मदा! मानव-मन की भावना और वासना के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप की उग्र माता! तूने विध्वसी कौला और अघोरनाथ गगनाथ को भी देखा है। हे

माता, तूने देखा है कि जब व्यक्ति की भावना और वासना उग्र-कठोर और निर्मम हो जाती है तो क्या होता है ? मा नर्मदे, यदि तुझमे अपनी कोई शक्ति शेष रही हो तो मुझे मृत्यु पर ब्रह्मराक्षस बनाना।" और लेटे-ही-लेटे समस्त पृथ्वी को जैसे सुनाते हुए आवाज दी, "अमरनायक, अपना दण्ड-हस्ति बढाओ।"

अब तो मानो दर्शको के हृदयो के स्पन्दन बन्द हो गए। सब के नाक की साँस जैसे रुक गयी थी। सब के प्राण मानो कठ मे आ गए थे। वातावरण मे बडी घबराहट फैल गई थी।

किसी ने ऐसी मृत्यु देखी न थी। किसी ने मृत्यु के लिए ऐसा उपहास देखा न था। अपराधी भयकर था। अपने ही मुख से वह तुर्को का जासूस साबित हुआ था। पचद्रोही था। पचपातकी था। उसके पाप ऐसे थे कि सात-सात भव तक रौरव नरक मे पडने पर भी मुक्ति नही हो सकती थी। ऐसे अपराधी तो तड़प-तड़पकर मरने चाहिए।

लेकिन यह अपराधी तो और ही भाँति मर रहा था। लोगो ने कवियो द्वारा लिखित वीर मृत्यु के वर्णन सुने है। कुछ वैसी ही मृत्यु मानो इस अपराधी को मिल रही थी। यह जीवित रूप मे भयकर था। इसकी मृत्यु जीवन से भी भयकर थी। यह ब्राह्मण नहीं हो सकता। अवश्य आसुरिक आत्मा है—रावण और हिरण्यकशिपु का अश है। भयकर व्यक्ति भयकर मृत्यु से मरते है, यह ईश्वरीय न्याय है। लेकिन भयकर व्यक्ति भयकर मृत्यु का भयकर तिरस्कार करते हुए मरते है, इसे क्या कहा जाएगा ?

दण्डशिला पर दण्ड-हस्ति के पैरो-तले कुचले जाकर मरे हुए अनेक अपराधियों की भयकरता का शोर जैसे उस सूखी हुई शिला के लहू से उठ रहा था। गगू शिला पर लेटा था, सो उठ खडा हुआ। क्षण-भर के लिए लोगो को भ्रम हुआ, मानो कोई प्रेत उठकर खड़ा हो रहा है। इस भारी धृष्टता को देखकर जैसे काम्पिलीदेव भी मात खा गए। कृष्णाजी नायक के अग-अग से जैसे पसीना छूटने लगा।

कृष्णाजी दौड पडा और इसके पहले कि कोई उसे रोके गगू के पास जाकर कहने लगा—गगू महाराज, दक्षिणापथ मे कावेरी के पार तक तुम्हारी

जिस ज्योतिष विद्या की प्रशसा पहुँची है, यदि वह सच है तो मुझे बताइए, रणभैरव की मूर्त्ति कहाँ है ?"

"तुम्हारा ही नाम कृष्णाजी नायक है ?" गगू महाराज ने इतनी शान्ति से कहा कि सुननेवालो का लहू जम गया, "तुम्हे रणभैरव से क्या काम है ? वारगल और उसके रक्षक विनष्ट हो गए है। मृत्यु तनिक भी प्रतीक्षा नहीं कर सकती। वारगल के राजा गए, राज्य गया, आबादियाँ चली गई, घर चले गए, वहाँ पत्थर की एक मूरत का क्या मोल ? अथवा तुम भी हमारे गुजरात के ब्राह्मणो और जैनों-जैसे हो कि उन्हे मदिरो की रक्षा की फिक्र मे मनुष्यो की रक्षा की बुद्धि नही उपजी ?"

कृष्णाजी ने कहा—वारगल के रणभैरव की मूर्त्ति पत्थर की होते हुए भी पत्थर की नही है।

"तब ?"

"फिर से कहता हूँ, रणभैरव वारगल के नगरदेवता थे महत्त्व इसी बात का है। वह वारगल की राजमाता के देव थे, यह महिमा तो मैं भी जानता हूँ। मैं एक साधारण पाड्य हूँ। बहुजन-समाज का एक सामान्य जन हूँ। मेरे मन मे वारगल के राज्य की कामना नही है। लेकिन वारगल की देवमूर्ति महाराज, आप ज्योतिषी है, मुझे इतना भविष्य बता दीजिए।"

गगू हँसने लगा। मौत के समक्ष भी मनुष्य हँस सकता है ? यह कैसा आदमी है ! भगवान् ने इस भयकर अपराधी को किस मिट्टी से बनाया है ? प्राचीन काल मे असुर, दैत्य, राक्षस आदि जिस मिट्टी से पैदा होते थे, क्या उसी मिट्टी से ?

"कृष्णाजी, इस समय ज्योतिष देखने का मुझे समय नही है। और जरा याद तो करो, मेरा अपराध ही क्या है ? मेरी विद्या, मेरी श्रद्धा और मेरी सेवा मैंने तुर्को को अर्पित की, यही न ? और कृष्णाजी, इस अन्त समय, तुम मेरी उसी विद्या का अवलम्ब चाहते हो ? मुझे इसका तनिक भी खेद नहीं है। इतना ही कि इन सब लोगो को इससे शर्म आ रही है।"

धीमे-धीमे कृष्णाजी खड़ा हो गया। उसके चेहरे पर निराशा छा गई। गगू उसकी ओर देखता रहा। फिर सबको सुनाता हुआ कहने लगा—कृष्णाजी !

मैंने अपना ज्योतिष बतलाया है कि मरने पर मैं ब्रह्मराक्षस बनूँगा। मेरे मरने पर, तुम मेरे शव से अपना सवाल पूछना, वही तुम्हे जवाब देगा।"

और हाथ के इशारे से गगू महाराज ने कृष्णाजी को दूर हट जाने का आदेश दिया और चिल्लाकर कहा—अमरनायक, ये सब दर्शक आतुर हो रहे है। अपना दण्ड-हस्ति बढ़ाओ और दर्शको की आतुरता का अन्त करो।

और शिला पर लेटे-लेटे ही उसने पुकारा—नर्मदे हर

यह पुकार इतनी स्वाभाविक थी कि क्षण-भर के लिए दर्शक-जनता कुछ समझ न सकी। स्वाभाविक रूप मे ही लोगो ने इस हर-नाद को सुना।

अमरनायक ने इशारा किया। महावत ने इशारा किया। दण्ड-हस्ति आगे बढा। अब वह शिला के अति समीप आ गया।

महावत ने हाथी के पैर पर अकुश का भाला चुभोकर सकेत मे कुछ कहा। दण्ड-हस्ति ने अपना दाहिना पैर उठाया, वही पैर जिसके नीचे आज तक कई अपराधी कुचले गए थे।

दण्ड-हस्ति ने पैर उठाया और मानो उस पैर के साथ दर्शक जनता की साँसे भी उठी रह गई।

शिला पर लेटे हुए गगू महाराज ने फिर से जोर से पुकारा—नर्मदे हर! नर्मदे हर!! जय नर्मदे हर!!!

और इसके बाद जो घटना हुई, उसे देखकर जन-जन स्तब्ध रह गया!

महाराज काम्पिलीदेव भी स्तब्ध रह गए। कृष्णाजी की आँखे फटी रह गई। महावत भी चकित रह गया—अपराधी को पैर से कुचलने के पहले ही दण्ड-हस्ति वापस लौट गया!

सब एक-दूसरे की ओर देखने लगे। शिला-वध के काम मे शिक्षित दण्ड-हस्ति शिला के पास से लौट जाए यह आज पहली बार हुआ।

काम्पिलीदेव ने जोर से कुछ कहा। अमरनायक ने महावत को आदेश दिया। महावत ने हाथी के पैर पर अकुश मारा। धीमे पैरों हाथी आगे बढा, अपनी छोटी आँखों से वह गगू को देखता रहा। लेकिन अपना पैर उस पर न रखकर, उसके पास रख दिया।

इस बार महावत ने शोर मचाया। आगे आकर उसने हाथी को पीछे

"देखा न कृष्णाजी, ऐसी कोई पूर्वदा है ही नही। इस प्रकार की घटना पहले कभी घटित हुई होती, तब तो पूर्वदा की मर्यादा विचारणीय है। पूर्वदा एक ही है—अपराधी को मृत्यु-दण्ड। दूसरी कोई पूर्वदा नही है।"

"महाराज, विचार कीजिए।" कृष्णाजी ने कहा, "एक व्यक्ति की मृत्यु दो बार नही हो सकती। दण्ड-हस्ति ने न्याय दिया है महाराज! उस न्याय को स्वीकार कीजिए।"

"अरे!" महाराज ने दाँत पीसकर, हाथ के झटके से कृष्णाजी की तलवार परे हटा दी। और अपनी तलवार हवा मे उठाकर, शिला पर लेटे हुए, विप्र-विरोधी गगू की ओर दौडे और जैसे सचमुच ब्रह्मराक्षस जाग रहा हो, इस प्रकार उसने टकटकी लगाकर दण्ड-हस्ति को देखा और दूसरी नजर दौड़कर अपनी ओर आते हुए काम्पिलीदेव पर डाली।

काम्पिलीदेव निकट आ गए। एक पैर शिला पर रखकर उन्होने तलवार उठाई।

फिर क्या हुआ यह कोई समझ न सका। भागते हुए दर्शक, देखने के लिए रुके नही। महाराज, अमरनायक और सैनिक सभी जैसे मत्रचालित-से रह गए। जिस तेजी से साँप फन मारता है उसी तेजी से गगू ने अपना हाथ फैलाया। और दूसरे ही क्षण महाराज काम्पिलीदेव की तलवार गगू के हाथ मे आ गई। अपने घुटने पर रखकर उसने तलवार के दो टुकडे कर दिये और उन टुकड़ों को दूर फेक दिया।

और अमरनायक के सैनिको की गिरफ्त मे खडे हुए अपने तुर्क गुलाम को गंगू महाराज ने पुकारा—चल बच्चा हसन! मेरे भाग्य मे क्या है, यह तो कोई नही जानता किन्तु तेरे भाग्य मे राज-योग है, चल बच्चा!

फिर मानो धरती से चिपकी हुई-सी दर्शकों की भीड मे से रास्ता काटकर गगू महाराज और हसन वहाँ से चल पडे।

और उन दोनो ने मुड़कर पीछे देखा तक नही!

७ कृष्णाजी नायक की विदाई

आज तक काम्पिलीदेव महाराज के वधस्थान से कोई वध्य अपराधी जीवित लौटा न था। कोई बचकर जिन्दा निकल न जाए, यह काम्पिलीदेव की कठोरा आज्ञा थी। यह उनकी राजनीति का अनिवार्य अग था।

ऐसे अवसरो के लिए उन्होने अपने मन को विशेष प्रकार का प्रशिक्षण दिया था। और अपने हृदय मे मृत्यु-दण्ड के अपराधियों के लिए अत्यन्त कठोरता उपजाई थी। और उसके साथ ही शासन-प्रणाली और राज्याधिकार के ऐसे पक्के नियम बना दिए थे कि अपराधियों के लिए दया, माया या करुणा आदि के लिए लेश-मात्र भी स्थान नहीं रह गया था।

महाराज काम्पिलीदेव के हृदय मे करुणा न थी, ऐसी बात नहीं थी। उस पर्वताकार महाबली के हृदय मे करुणा के स्रोत बहते थे। परन्तु उनकी यह मान्यता थी कि कई व्यक्ति ऐसे है जो उनकी इस करुणा के एक बिन्दु के भी पात्र नहीं है। ऐसे व्यक्तियों मे उन्होने दोमारों, जासूसों, चरो और विदेशी तुरुष्को से मेल-जोल रखनेवालो, पचमहापातकियों और पचद्रोहियों का समावेश किया था।

और इसमे भी, दोमारों और नटो से उन्हे भारी नफरत थी। दोमारों ने अपने नट-प्रयोगो के लिए तुर्कों की छावनियो मे आवागमन शुरू किया था। और इसलिए तुर्क लोग जिन लोगो को गुलाम बनाते, उनमे दोमारों और नटो की खासतौर पर भर्ती रहती थी।

उस समय हिन्दू जाति की दशा कछुए-जैसी थी। जिस प्रकार कछुआ अपनी ढाल के नीचे छिप जाता है और शुतुरमुर्ग रेगिस्तान की बालू मे अपना सिर छिपाकर बैठ जाता है, उसी प्रकार हिन्दू जाति अनेक प्रकार के जातीय बन्धनों मे बँधी हुई थी। एक बार किसी व्यक्ति के तुर्कों के पास चले जाने पर, धर्म-भ्रष्ट हो जाने पर उसके लौटने की कोई आशा नहीं थी। हिन्दू लोग उन्हे अपनी जाति से अलग कर देते थे।

इसलिए तुर्कों के लिए मैदान साफ था। नटों को पकड लेने पर और उन्हे मुसलमान बना देने पर उनके फिर से हिन्दू धर्म मे दीक्षित होने के सभी

मार्ग बन्द हो जाते थे। इसलिए तुर्क इस अवस्था से लाभ उठाते थे और लोगो को पकडकर न केवल गुलाम ही बनाते थे, वरन् उनसे अनेक भॉति के अपने उद्देश्य पूरे करते थे।

ऐसे नट भॉति-भॉति के तमाशे दिखलाते और जब तमाशबीन इकट्ठे होते तो उनकी बातचीत से कई तरह के लाभ उठाते। फिर उन बातो की रिपोर्ट अपने तुर्क मालिको को देते। ऐसे गुप्तचरो के पकडे जाने पर विजय-धर्म के प्रहरी उन्हे कडी से-कडी सजा देते।

अतएव काम्पिलीदेव ने जब गगू महाराज-जैसे घोर पापी को वधस्थान से सकुशल लौटते देखा तो उनके रोष का ठिकाना न रहा!

उन्होने तलवार निकाली और गगू महाराज के पीछे दौड लगाई—खड़ा रह पापी, खडा रह! तूने दण्ड-हस्ति पर जादू किया है, किन्तु इतने से ही तू भागकर नहीं जा सकता। इस वधस्थल तक आकर कोई अपराधी जीवित जा नहीं सकता। ठहर जा पातकी!

गगू महाराज दूर चला गया था, सो खडा रह गया। उसने पीछे देखा—मुझे बुला रहे है, महाराज? आपने ही दण्ड-हस्ति का न्याय मुझे दिया था। दण्ड-हस्ति ने अपना न्याय मुझे दिया। अब और क्या कहना चाहते है?

"ठहर जा पापी, वशीकरण करनेवाले, तू एक पशु पर अपना मन्त्र चला सकता है, मुझ पर नहीं चला सकता। मेरे राज्य की सीमा मे आकर कोई अपराधी जीवित भाग नहीं सकता।"

उन्होने तलवार चलाई त ै दूसरी तलवार उस तलवार से टकराई। काम्पिलीदेव ने कहा—कृष्णाजी, मेरे मार्ग से हट जाओ। मेरे न्याय का उपहास कर कोई पापी जीवित नहीं लौट सकता।

"राजन्, शान्त होइए। रोष मे आप पूर्व परम्पराओ को भूल रहे है।"

"पूर्व परम्परा की बाते मैं आपसे फिर करूँगा। इस समय मेरा रास्ता छोड़ दो।"

"राजन्, यह बात ऐसी नहीं की बाद मे की जा सके। अभी और इसी समय होगी। तभी आप दूसरा कदम आगे बढ़ा सकते है।"

काम्पिलीदेव का क्रोध और बढ गया। कहने लगे—आप पूर्वदा के

पडित नहीं है, राजगुरु भी नहीं । इस समय मुझे आपसे बात करने की फुर्सत नही है । आपको मेरे राज्य मे हस्तक्षेप करने का अधिकार भी नहीं है ।

इतना कहकर महाराज ने आगे पैर बढाये । लेकिन कृष्णाजी अपने स्थान पर डटा रहा—महाराज, मृत्यु-दण्ड का अपराधी यदि किसी कारण से अवध्य रहे तो उसे एक से दूसरे सूर्योदय तक अवसर देना ही पडता है ।

"अरे, तब तक तो यह दुष्ट तुगभद्रा के उस पार भाग जाएगा । गुप्तचरों का काम करनेवाले अपराधियो के लिए पूर्वदा नहीं होती ।"

महाराज ने आगे बढना चाहा, परन्तु कृष्णाजी ने रास्ता न दिया तो वे तीन कदम पीछे हट गए और उन्होने जोर से अपनी तलवार चलाई । लेकिन तभी पीछे से किसी ने विद्युत्-वेगपूर्वक उनकी तलवार पकड़ ली । महाराज का हाथ पकडनेवाला यह हाथ इतना मजबूत था कि महाराज भी उसकी पकड से अपना हाथ न छुड़ा सके ।

अपना हाथ पकडनेवाले उस व्यक्ति को देखने के लिए कृष्णाजी ने पीछे देखा । और देखते ही उनके हाथ से तलवार छूट गई और उनके मुह से निकला—राजसन्यासी !

उसने देखा कि एक प्रचण्डकाय साधु उसका कन्धा पकडकर खडा हुआ है । उसके हाथ मे बड़ा-सा दड था । इस कारण उसे दडस्वामी कहते थे । दडस्वामी के पीछे एक बढिया सफेद घोडा खडा था ।

"राजसन्यासी ! आप आप आप आप "

"हॉ, मैं समय पर पहुँच गया । मैं दडस्वामी हूँ । अतएव किसी एक स्थान पर रात्रि मे रुक नही सकता । इसलिए यहॉ आने के लिए इस घोडे को खूब दौडाया, तब यह खबर न थी कि दक्षिणापथ के दो ध्रुव परस्पर टकरा रहे है, उनमे द्वन्द्व-युद्ध चल रहा है। ठीक हुआ कि मै समय पर पहुँच गया । और अनर्थ टल गया ।"

"आप क्या इसे अनर्थ कहते है ? एक अनर्थ को रोकते समय दूसरा अनर्थ बच गया । स्वामीजी, वह देखिए, कदम बढाकर चला जा रहा है गगू महाराज, पचमहापातकी और पचद्रोही और आप मेरा रास्ता रोक रहे है ।"

राजसन्यासी हँसने लगे—एक मामूली नट और गुप्तचर चला जा रहा है,

क्या इसी के लिए दक्षिणापथ के दो धुराधर खड्ग निकालकर एक दूसरे के सामने खडे है ?

"स्वामीजी," कृष्णाजी ने कहा, "आपने राज्य छोड दिया किन्तु पूर्वदा का त्याग नहीं किया है। जरा बताइए, इस समय आप अपने पूर्व रूप वीर बल्लालदेव तृतीय होते तो क्या करते ?"

"साधारण नट के लिए आप दोनो के बीच इतना बडा मतभेद नही खडा होना चाहिए।"

'मैं भी यही कहता हूँ, स्वामीजी," महाराज काम्पिलीदेव ने कहा, "मै भी यही कहता हूँ, यदि इस पचमहापातकी को बचकर जाने दिया जाएगा तो यह किरातो के वन मे घुस जाएगा और फिर इसका पता नहीं चलेगा। समुद्र से भी अधिक घनघोर किरातो के वन है। इसलिए अब भी कहता हूँ, कृष्णाजी, मैं इस समूह का मडलेश्वर हूँ, दक्षिणापथ के विजय-वर्म के महा-मडलेश्वर का पट्टसामन्त हूँ, आनेगुडी राज्य का राजा हूँ। ऐसा मैं, महाराज काम्पिलीदेव, जिसने आज तक किसी से याचना नही की, आपसे याचना करता हूँ कि मेरे मार्ग से हट जाइए। अब भी वह पापी नजर से दूर नहीं हुआ है और उसका तुरुष्क गुलाम भी ओझल नहीं हुआ है। उन दोनो का वध होना चाहिए, यह मेरा न्याय है। न्याय का पालन होना ही चाहिए। मित्र के रूप मे आप मेरी बात नही सुनते, दण्डनायक के रूप में भी आप मेरी बात नही सुनते। महामडलेश्वर के सामन्त के रूप मे भी आप मेरी बात नहीं सुनते अतएव मैं इस राज्य के शासक के रूप मे आपको आ ज्ञा देता हूँ कि "

सुनकर कृष्णाजी ने राजसन्यासी की ओर देखा। राजसन्यासी ने कहा—शान्त कृष्णाजी ! शान्त हो जाइए, काम्पिलीदेव !

काम्पिलीदेव ने जैसे पराजय स्वीकार कर ली हो, इस तरह अपना खड्ग नीचे झुका लिया। विकराल रोष से उनकी आँखे सुलग रही थी। पजे से छूटकर जानेवाले शिकार को भूखा बाघ जिस प्रकार देखता है, उसी प्रकार काम्पिलीदेव चुपचाप गगू और उसके गुलाम को देखते रह गए।

तुंगभद्रा नदी आई। गगू महाराज और उसके गुलाम हसन ने किसी

नाव या नाविक की राह न देखी। न किसी को पुकारा ही। दोनो पहने हुए कपडों सहित पानी मे आगे बढ गए।

तैरते हुए दोनो उस पार पहुँचे। किनारे खडे होकर, जिस प्रकार पशु अपनी पीठ का पानी झटक देता है, इस प्रकार दोनो ने अपने कपडे झटक दिए और जगल मे गायब हो गये।

लेकिन तब तक काम्पिलीदेव उन्हे अनिमेष देखते रहे। फिर उन्होने एक लम्बी साँस ली। अपने न्याय की यह अवहेलना उन्हे असह्य हो, इस प्रकार उनके लम्बे दाँत उनके होठों को दबाये रहे और दबे हुए होठो पर लहू की बूँदे झलकती रहीं।

पराजित राज्य-शासन और निराश राजसी स्वभाव की तेजी उनके चेहरे पर छा गई। उनकी वाणी मे कम्पन था और उनकी आँखो मे सुलगती हुई अग्नि थी। उन्होंने एक-एक शब्द के स्पष्ट उच्चारण के साथ कहा—कृष्णा-जी, कोई मेरे अपने ही राज्य मे, मेरे मडल मे मेरे न्याय की अवहेलना करे, यह मै कदापि बर्दाश्त नही कर सकता। फिर चाहे अवहेलना करनेवाला स्वय महाकरणाधिप हो अथवा महामडलेश्वर। और आपका यह कृत्य तो मैं कदापि सहन नहीं कर सकता। मेरे राज्य की सीमा मे आपके लिए स्थान नही।

पल-भर रुककर महाराज ने आवाज दी—सैनिक!

चार सैनिक दौड़कर आए। महाराज ने उन्हे आज्ञा दी—यह सामने तुगभद्रा बह रही है। यह आनेगुडी राज्य की उत्तरी सीमा है। और जिन्हे हमारे आतिथ्य पर कोई अधिकार नही रहा है, उन कृष्णाजी को नदी के उस पार छोड़ आओ।

"महाराज!" राजसन्यासी ने उलहने की वाणी मे कहा, "काम्पिलीदेव, आप यह क्या कर रहे है?"

"स्वामीजी," काम्पिलीदेव ने सायास विनयपूर्वक कहा, "आप दण्ड-स्वामी है। अब मुझे आपको कुछ नहीं कहना है। आप एक घड़ी से अधिक कहीं रुक नहीं सकते, है न? आपको मैं एक बात की याद दिलाना चाहता हूँ। आपको यहाँ आए एक घड़ी से भी अधिक समय हो गया है।"

राजसन्यासी ने साश्चर्य कहा—काम्पिलीदेव ! आप मुझे भी सीमा से बाहर निकाल रहे है ?

"स्वामीजी, मै आपको सीमा से बाहर कैसे निकाल सकता हूँ, भला ? दण्डस्वामी का आपका व्रत ही आपको सीमा से बाहर भेज रहा है। मै तो केवल यही चाहता हूँ कि आपका व्रत भग न हो।"

"समझा !"

"आपकी कृपा है स्वामीजी ! अमरनायक !"

अमरनायक नागदेव आगे बढ़ा।

"मेरा राज्यादेश सुनिए—आगे से आप किसी नट-दोमार या विप्र-विरोधी को पकड़े तो उसे मेरे पास न लाएँ, तुरन्त तलवार के घाट उतार दे। तुग-भद्रा का गहरा पानी आपकी मदद करेगा।"

"जी, लेकिन महामडलेश्वर "

"महामडलेश्वर से मै मिल लूँगा। इस बीच आप मेरे आदेश का पालन करे। कृष्णाजी को तुगभद्रा के उस पार पहुँचा दे। मैं अपने न्याय मे अव-रोध डालनेवाले किसी व्यक्ति को अपनी आँखो के सामने नही देख सकता।"

"महाराज, अविनय क्षमा करे। चाहे कुछ भी हो, किन्तु कृष्णाजी महा-मडलेश्वर के विश्वासपात्र विशिष्ट व्यक्ति है। जातिमान्य, और लोकमान्य है। और महाराज, तुगभद्रा के उस पार तो महाघातकी शम्बूर लोग रहते है।"

"तो, इन्ही से पूछ लीजिए, किस ओर की सीमा के पार ये जाना पसन्द करते है ? जैसे भी ये जाना चाहे, व्यवस्था कर दीजिए। वैसे तो ये सर्वथा निडर व्यक्ति है, फिर भी इन्हे किरातो का भय हो तो बात अलग है।"

और पीछे एक नजर भी डाले बिना महाराज काम्पिलीदेव अपने महलों में लौट गए। राजसन्यासी की वन्दना करने जितनी शिष्टता या विनम्रता भी उनमे न रही यानी क्रोध की अग्नि ने उसे भी भस्म कर दिया।

काम्पिलीदेव के जाने पर अमरनायक नागदेव, राजसन्यासी और कृष्णा-जी परस्पर एक-दूसरे को देखते रह गए। अमरनायक नौजवान था। जैन-समय का अनुयायी था। राष्ट्र का नवसर्जन उसकी साक्षी मे हो रहा था। इस महाप्रयास के तीन अग्रगण्य नेता थे—भगवान् कालमुख विद्याशकर के

आदेशानुसार राजगुरु क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ राजगुरु थे। राजगुर सभ्यता, संस्कृति और सस्कार-विषयक निर्णयो का निर्णायक था। राजगुरु वही बन सकता था जो चारो समयो के आचार्यों मे सबसे अधिक वृद्ध हो। इस समय शृगेरी मठ के शकराचार्य-पद पर आसीन क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज राज-गुरु के पद पर प्रतिष्ठित थे। उनकी आयु पचासी-नब्बे वर्ष की थी।

उनके बाद, दूसरे सर्वमान्य नेता थे—राजसन्यासी वीर बल्लालदेव ने अपना सारा राज्य भगवान् कालमुख विद्याशकर के चरणो मे धरकर स्वय राजसन्यास की दीक्षा ली थी।

और तीसरे नेता थे—महाकरणाधिप। भगवान् विद्याशकर के विजय धर्म का शासन-कार्य भगवान् के अवतार के रूप मे यही चला रहे थे। उपरोक्त दोनो नेताओ से आयु मे यह छोटे थे, किन्तु समस्त दक्षिणापथ मे तुरुष्को से होनेवाले भीषण रण-सगर मे अनवरत जूझनेवाले यही महावीर थे। यह पाड्य नायक सोमैया थे। स्वप्न मे भी इन्होंने तुर्कों को सिर न झुकाया था। जनसाधारण दादैया अथवा शकर के अवतार के रूप मे इन्हे जानते थे। स्वय भगवान् विद्याशकर ने इन्हे अपने विजय-धर्म-शासन का महाकरणाधिप नियुक्त किया था।

और विगत सात वषो से इन तीनों महापुरुषों का एक ही पुरुषार्थ था—'समय'-'समय' के पारस्परिक साम्प्रदायिक मतभेद दूर करना और सबको विजय-धर्म के उपासक बना देना। सात वर्षों का यह अनवरत परिश्रम व्यर्थ नहीं गया था—सदियों के राग-द्वेष, धर्म-द्वेष, व्यक्ति-द्वेष मिट रहे थे। पूर्व-परम्पराएँ पुनर्जीवित हो रही थी। साम्प्रदायिक मतभेद भुलाए जा रहे थे। वैमनस्य मिट रहे थे और सौमनस्य बढ रहे थे। जैनो के जिन चैत्यो को वैष्णव, भागवत या शैवधामो मे बदल दिया गया था, उन्हे फिर से महाआचार्य नाग-कीर्ति देव को सौप दिया गया था। महामडलेश्वर राय हरिहर ठेठ अगस्त्येश्वर से लेकर होनावर तक पुनर्व्यवस्था की प्रतिष्ठा और स्थापना मे दत्तचित्त हो निमग्न थे।

पुनर्व्यवस्था का यह महत्कार्य असाधारण था। अत्यन्त कठिन था। समस्त विजय धर्म-साम्राज्य की सीमा के प्रत्येक घर-मकान, खेत-खलिहान, सार्व-

जनिक स्थल, बाग-बगीचे, नदी-तालाब और गोचर भूमि के प्रत्येक बखेडे का निपटारा कर देना, झगडनेवाले उभय दलो के बीच प्रेम-शान्ति का बीज बोना और नवीन आस्था और सग्राम के लिए उनमे नवीन भाव सचार करना—यही थी वह पुनर्व्यवस्था !

इसकी स्थापना के लिए आवश्यकतानुसार नए आदेश-पत्र, भोज-पत्र, अधिकार-पत्र, निर्णय-पत्र आदि प्रकाशित करने पडते थे। स्थान-विशेष की नीति-रीति और लोक-व्यवहार के अनुरूप चलना पडता था। काम जितना बडा था, उसके करनेवाले भी उतने ही बडे थे !

और इसी व्यवस्था ने नागदेव को अमरनायक के पद पर नियुक्त किया था !

अमरनायक नागदेव ने हाथ जोडकर कहा—गुरुदेव ! महाराज के रोष की सीमा नहीं है। किन्तु यह बात नही कि इस रोष का कोई कारण नहीं है। जिस प्रकार इस प्रदेश से तुर्कों को सूचनाएँ और समाचार मिलते है, उसी प्रकार हमे भी तुर्कों के अधीनस्थ प्रदेश से सूचना समाचार प्राप्त होते है। वधस्थल पर खड़ा किया गया यह गगू महाराज भयकर जासूस है, यह हमे मालूम है और इसमे शका नहीं है। ससार के सभी सम्भव पाप इस व्यक्ति ने किये हैं। पिछले पापो के अतिरिक्त, हमारे प्रदेश मे रहकर इसने गुप्तचर का काम किया है और इसके कई जासूसो को हमने पकडा हे और दड दिया है। यह अपराधी बड़ा भयकर और हानिकारक है।

सुनकर राजसन्यासी हँसने लगे, बोले—तभी तो तुम्हारे महराज ने उसे दण्ड-हस्ति का न्याय दिया। इसी न्याय का पात्र था वह ! इसके भीषण अपराध के विषय मे आपको शका हो सकती है, किन्तु हमे नहीं।

नागदेव की समझ मे न आया, आखिर राजसन्यासी कहना क्या चाहते है—"लेकिन फिर ."

"लेकिन तुम्हारे महाराज के अधिकार की सीमा है। अमरनायक, तुम जानते हो कि हमारा धर्म विजय-धर्म है। हमारी मर्यादा पूर्वदा है। पूर्वदा का अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। फिर चाहे वह कितना ही बडा या कितना ही छोटा क्यों न हो। यही है हमारे लिए भगवान् विद्याशकर महाराज

का आदेश। यही हमारे महाकरणाधिप का आदेश है। हमारे महामंडलेश्वर भी यही कहते है। भयंकर से भयकर पापी को, यदि भगवान एक अवसर देना चाहे तो उसमे अन्तराय डालनेवाले हम कौन होते है?"

"जी!" नागदेव ने कहा, "इस विषय मे मै शकित नही हूँ। इस विषयक सत्यासत्य का निर्णय तो राजगुरु ही दे सकते है। और उनके निर्णय की प्रतीक्षा तक मुझे महामडलेश्वर महाराज काम्पिलीदेव की आज्ञा माननी चाहिए।"

"तुम्हे अपने कर्त्तव्य का पालन करने मे किसी प्रकार का सकोच न रहना चाहिए। हमे तनिक भी दु ख नही है। और अपनी स्थिति का तुम्हे स्पष्टीकरण देना पडे, ऐसा अवमर उपस्थित भी नही हुआ है अमरनायक!" राजसन्यासी ने कहा।

इस पर अमरनायक ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया—जी, इसलिए विनती है कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी राजमुद्रा लौटा दूँ। अन्यथा अपने दडनायक के आदेश का पालन करना चाहता हूँ।

"समझ गया!" राजसन्यासी ने हँसकर कहा, "समझा! महाराज काम्पिलीदेव ने मेरे विषय मे जो हुक्म दिया है, उसी के बारे मे आप सकेत दे रहे है। इस कठिन काल मे हम नही चाहते कि हमारे किसी साथी के कर्त्तव्यपालन मे द्विधा उत्पन्न हो। कृष्णाजी नायक अभी काम्पिली की सीमा छोडकर चले जाएँगे और मैं भी चला जाऊँगा। आप निश्चिन्त रहे।"

कुछ देर नागदेव राजसन्यासी को देखता रह गया। फिर उसने कृष्णाजी को देखा और कृष्णाजी राजसन्यासी के आदेश को शिरोधार्य कर मौन खडे थे। नागदेव राजसन्यासी के चरणो मे सिर नवा ढुलक पड़ा—गुरुदेव! गुरुदेव! यह सब क्या होने जा रहा है? गए कल ही जो आपका अपना राज्य था, आज उसी की सीमा से आपको बाहर निकलना पड रहा है! और कृष्णाजी

"धैर्य रखिए और अपनी मुद्रा का स्मरण रखिए।" राजसन्यासी ने कहा, "तुम नौजवान हो, नए अधिकारी हो, लेकिन मैं काम्पिलीदेव को वर्षो से जानता हूँ। इनका स्वभाव राजसी स्वभाव है। कई बार अपने निर्णय ये बदल देते हैं। क्रोध मे आकर जो फैसला करते है, शान्त होने पर उसे बदल

देते है। ये उतावले है, कठोर है, पर हृदय और मन से एकदम कोमल है, उदार है। कलियुग मे भीम के अवतार है।"

"जी!" नागदेव की कुछ समझ मे न आया कि आगे क्या कुछ कहे या न कहे।

"चलिए कृष्णाजी!" राजसन्यासी ने अपने घोडे की लगाम हाथ मे ली।

"गुरुदेव!" नागदेव ने कहा, "आज्ञा मिले तो अपने योद्धा या सैनिक आपके साथ भेज दूँ। महाराज का कोप सह लूँगा।"

उत्तर कृष्णाजी ने दिया।

"नही नागदेव, कोप सहने का प्रश्न ही नही है। हमे योद्धाओ की जरूरत नही! सामने तुगभद्रा बह रही है। यही सीमान्त है, मै उसके पार चला जाऊँगा।"

"नायक, आप महाराज काम्पिलीदेव पर अपना क्रोध न उतारकर, समस्त दक्षिणापथ पर उतारना चाहते है क्या? मै राय हरिहर के सम्मुख कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा? यदि आप किरातो के उस प्रदेश मे जाते है तो मेरी स्थिति क्या होगी? इस किरात-वन मे जाने पर कोई व्यक्ति जीवित नहीं लौटता।"

और नागदेव ने राजसन्यासी की ओर देखा—गुरुदेव, आप कृष्णाजी नायक को समझाइए।

"मुझे समझाने की जरूरत नहीं।" कृष्णाजी ने कहा, "नागदेवजी, मुझे समझाने की जरूरत नही। गुरुदेव से मेरा निवेदन है—मुझे कोई आदेश न दे। न मुझे समझाने-बुझाने का ही प्रयत्न करे। मेरी राह गंगू महाराज के पीछे-पीछे जाती है।"

"गगू महाराज के पीछे?" नागदेव ने विस्मय से पूछा, "आपका गगू महाराज से सम्बन्ध?"

"सम्बन्ध नही, और है भी। वह चाहे जैसा पाखडी हो, नट हो, गुप्तचर हो, विरोधी हो, हत्यारा हो। परन्तु उसकी ज्योतिष विद्या तो सत्य है। इस तथ्य की ख्याति दक्षिण तक प्रचलित है। और मैं चाहता हूँ कि उसकी आग प विद्या का सहारा लेकर वारगल के रणभैरवदेव की मूर्ति का पता लगाऊँ।"

"तुममे भी, कृष्णाजी नायक, मनुष्य को छोडकर मूर्ति का मोह उत्पन्न हुआ है ? या मूर्ति के अमूल्य नवलखे हीरे की शान पर मन मुग्ध हो गया है ? आज समस्त दक्षिणापथ अपने नरो मे देवघरो का सृजन करने का प्रयास कर रहा है और एक आप है कि एक पाखडी और धर्म-भ्रष्ट अपराधी से देवमूर्ति का पता पाने की आशा रखते हैं ?"

"नागदेव, यह बात आप नही समझ सकते । इस खोज की वेदना का अनुमान आप नहीं लगा सकते । मुझ पर महाराज प्रतापरुद्र का ऋण है । मुझ पर वारगल का ऋण है । मुझे अपने पितरो का तर्पण वारगल मे करना है । और वारगल के देव है रणभैरवनाथ लेकिन जाने दीजिए । आप नही समझ सकेंगे कि मैं पत्थर की देवमूर्ति के लिए एक पाखडी और पक्ष-द्रोही से उसकी विद्या की भीख क्यो माँग रहा हूँ ?"

"मैं आपको कुछ कह नहीं सकता । क्योकि वारगल मे आपने जितना जो कुछ देखा है उतना तो मैंने सुना भी नहीं । फिर भी क्या आप यह महसूस नहीं करते कि हम भी वारगल का ही तर्पण कर रहे है ? क्या आपको यह नहीं लगता कि दक्षिणापथ मे महाराज प्रतापरुद्र का श्राद्ध अधिक अच्छी तरह हो सकता है ?"

"मुझे वारगल बुला रहा है । और वारगल की पुकार मृत्यु की पुकार है । मुझे महाराज प्रतापरुद्र की महासती ने अपना दत्तक नही औरस पुत्र माना है । मेरा हित और स्थान वारगल मे है । मेरा जीवन और मरण वारगल मे ही होगा । गुरुदेव !" उसने गुरुदेव राजसन्यासी की ओर देखकर कहा, "गुरुदेव, कई बाते हमारी समझ के बाहर रहती है । और कई ऐसी भी होती है जिन्हे हम समझ ही नहीं सकते । कई बातो से अपना मुख नही मोड सकते । दक्षिणापथ की शुद्धि के लिए, पाड्यभूमि को तुर्क-रहित कर देने के लिए और इस हेतु के लिए सबसे पहले अपनी सेवा और जीवन-लीला समर्पित करने की मेरी बहुत बड़ी कामना थी, परन्तु मेरी माता की आज्ञा मेरे पिता का तर्पण मुझे वारंगल मे ही करना है । वारगल के कुलदेव की मूर्ति हीरे की बनी है । इसलिए वह खोजनीय हो, सो बात नही, बात यह है कि इस मूर्ति की साक्षी मे मेरे पूर्वजो का मेरे पिता ने शौर्य-तर्पण

किया था। इसलिए यह मूर्ति मेरे लिए पूजनीय है। यह देवमूर्ति एक ऐसा ध्वज बन सकती है कि जिसकी छाया मे वारगल मे हम तिर्यको की एक बहुत बड़ी सेना खडी कर सकते है, अतएव मै उसी मूर्ति की खोज मे जाता हूँ।"

राजसन्यासी ने कहा—कृष्णाजी!

"प्रभु!" कृष्णाजी ने दोनो हाथ जोडकर कहा, "मुझे मत रोकिए। और महाकरणाधिप से कहिएगा कि उनकी सेवार्थ मै अपना शेष जीवन देने मे असमर्थ हूँ। यदि वारगल से जीवित लौटूँगा तो मदुरा की विजय के लिए अपने प्राणो की बाजी लगा दूँगा। और राय हरिहर से कहिएगा, आपकी राय-रेखा, व्यवस्था दक्षिणापथ के लिए जीवन-रेखा बन जाएगी। आप इस राय-रेखा को भली-भाँति पूर्ण कर सके यदि आपको इतना समय वारगल दे सके तो मैं कृतकृत्य होऊँगा और मुझे यह सन्तोष मिलेगा कि मैंने अपने धर्म-पिता का श्राद्ध किया है। अन्यथा "

"अन्यथा क्या?" नागदेव ने पूछा।

"अन्यथा वारगल के वनो मे, मैदानो मे सोये हुए शूर-वीरो के शोणित मे शोणित मिला देना जीवन का एक अमूल्य विसर्जन-पर्व होगा।"

और इतना कहकर नागदेव से गले मिलकर, राजसन्यासी के चरणो की वन्दना करके कृष्णाजी तुगभद्रा की उस ओर चले गए, जिस ओर सामने भयकर शबूरो का भयकर शासन था।

दोनो वीर कृष्णाजी को देखते रह गए। उन्हे कृष्णाजी का यह काम पागलपन लगता था। परन्तु वे इस पागलपन को रोक नहीं सकते थे।

कृष्णाजी तुगभद्रा के जल मे उतर पडे और तैरकर उस पार चले गए। उस पार वह पल-भर खडे रहे। उन्होने क्षितिज पर एक काले बिन्दु की तरह खडे हुए राजसन्यासी और अमरनायक को देखा। और इस ओर इन दोनो ने कृष्णाजी को एक बिन्दु बनते हुए देखा। फिर घनघोर वनराई मे कृष्णाजी अदृश्य हो गया। नागदेव ने होठ काट लिये।

राजसन्यासी ने एक दीर्घ निश्वास लिया और अपने घोडे पर बैठकर पम्पा-क्षेत्र की ओर चले गए।

८ वल्लरी

तुंगभद्रा का पारकर गंगू महाराज और हसन ने वन मे प्रवेश किया। पल-भर मे सघन वनराई ने उन्हे घेर लिया।

उस वनराई मे बरगद का एक घना घनघोर पेड था। जानकार कहते थे और लोग मानते थे कि जब धरती माता पैदा हुई, तब यह बरगद भी पैदा हुआ था और तब से यहीं अटल-अमर खडा है। जिन दिनो भगवान् राम किष्किन्धा मे वास करते थे, उन दिनों इसी बरगद के नीचे सुवर्ण कुटीर बनाकर रहे थे।

और बरगद यह अकेला एक वृक्ष न था। वन से भी सघन वन था। वन की अनेक जटाएँ निकलकर नीचे धरती मे बैठ गई थीं और फिर से जड बनकर उग आई थीं और इस तरह उन्होने एक विशाल रगमडप की रचना कर दी थी। किरात देश की सीमा मे स्थित यह वट-वृक्ष काम्पिलीगढ़ के अति निकट था, तथापि दुर्गम-अभेद्य प्रतीत होता था। इस वट को लेकर अनेक कर्णापकर्ण लोक-कथाएँ प्रचलित हो गई थीं।

भागवतों के समर्थ आचार्य रामानुज ने इस वटराज का माहात्म्य लिखा था। यह भी मान्यता थी कि इस रामवट मे रामजी की सेना के उन कतिपय वीरों के प्रेतो का वास है, जो लकायुद्ध मे मारे गए थे। और आज भी हनुमानजी उन वीरो के दर्शन के लिए आते है और इस प्रवाद-सवाद के अन्धविश्वासी किरातों के सारे कष्ट सहकर भी, खतरा मोल लेकर भी हनुमानजी के सम्भाव्य दर्शन की कामना से यहाँ आते थे।

एक ओर वारगल का विनाश हुआ। देवगिरि का विनाश हुआ। इन दोनो घटनाओ के फलस्वरूप किरात प्रदेश के दोनो ओर का मैदान साफ था। तुर्क अपनी लूटमार मे लगे थे, इसलिए उन्हे इतनी फुर्सत न थी कि जनता की रक्षा के लिए किरातो को वश मे करते, इस प्रकार किरात-दल निर्द्वन्द्व विचरण करने लगे और हनुमान-जयन्ती और ऐसे ही अवसरो के आस-पास दर्शनार्थ आनेवाले भागवतों को त्रास देने लगे। जयती के मेलो मे वे लूट मचाते और कई भागवत दर्शनार्थियो को पकडकर ले जाते।

इन अनाचारो पर रामवट की यात्रार्थ आनेवालो की सख्या इतनी कम होती गई कि अखड ब्रह्मचारी बजरंगबली भी चाहे अपने जन्म-दिवस पर सचमुच वहाँ आते हो, तब भी लोग वहाॅ जाने को तैयार न थे! कथा-काल मे यह स्थान अति भयकर माना जाता था।

वहाॅ से तुगभद्रा का प्रवाह दृष्टिगोचर होता था। पुरातन किष्किन्धा के अवशेष नजर आते थे। पाॅचो पाण्डवो के अवतार-स्वरूप पचपर्वतो के शृग दृष्टिगोचर होते थे। ये पाॅच पर्वत थे—ऋष्यमूक, हेमकूट माल्यवान, किष्किन्धा और मातग। और ऐसा प्रतीत होता था मानो ये पर्वतराज इस पौराणिक क्षेत्र की दुर्दशा पर शोक प्रकट कर रहे है और चिन्ता मे मग्न मौन खडे है। इस स्थान से काम्पिलीदेव का दुर्ग नजर आता था। महाराज का महल दिखाई देता था। मूलसघ के पार्श्वनाथ मदिर का स्वर्ण-कलश नजर आता था। इस मदिर के द्वार सौ वर्ष तक बन्द रखे जाने पर, अब खोल दिए गए थे, क्योंकि काम्पिलीदेव ने विजय-धर्म का आदेश और शासन-स्वीकार किया था। इस मन्दिर की स्थापना आचार्य श्रीभद्रबाहु ने की थी।

यहीं से काम्पिली दुर्ग की दीवारो पर, बुर्जों पर पहरा देते सैनिक सूरमा दिखलाई देते थे। यह अवस्था और व्यवस्था किरातराज शबूरराय की निर्-अकुशता और काम्पिलीदेव की दुर्दम्य शक्ति की द्योतक थी।

किरातीय प्रकोप प्राप्त इस भूमि तक पहुँचकर गगू महाराज नीचे बैठा, और उसने हसन से भी नीचे बैठने को कहा।

हसन ने उत्तर दिया—मालिक, काम्पिली का राजा आप पर क्रुद्ध है, उसकी मनोदशा देखते हुए यह साफ जाहिर है कि उसके आदमी हमारे पीछे पहुँचने ही वाले हैं। इसलिए इस वक्त आराम करने के बजाय, चलते रहना ज्यादा अच्छा है! यही इस ताबेदार गुलाम की अर्ज है।

"तू अगर पकड़कर गुलाम न बना लिया जाता, तब भी गुलाम बनने के काबिल ही है।" गगू महाराज ने तिरस्कारपूर्वक कहा, "चल बैठ जा! क्यो हसन, तू कभी मलिक था? कभी तूने किसी जग मे सिपहसालार का काम किया है?"

"जनाब, आप मेरी बात करते हैं? मुझे मलिक कौन बनाता? मलिक

बनने के लिए किसी अमीर की सिफारिश चाहिए। जो मलिक नहीं, उसे तुर्क लोग लूट का हिस्सा नहीं देते।"

"तो तू मलिक नहीं था ? फौज के पीछे-पीछे तुर्की लुटेरो के कई झुड चलते है, मुर्दा पर जिस तरह गिद्ध झपटते है उस तरह ये लुटेरे फौजो द्वारा लुटे हुए, जलाए हुए, और विनष्ट गॉवो को फिर से लूटते है और भस्म करते है। क्या तू ऐसे लुटेरे दलो का सदस्य भी नही था ?"

"नहीं जी ! मैं तो खानसामा था एक। मलिक जब जग मे जाते, मैं उनकी बीवियों की देखरेख करता। उनका हुक्म बजा लाता।"

"अच्छा, यह साफ नजर आ रहा है कि तू मलिक-वलिक नहीं। मामूली लुटेरा भी नहीं। सिर्फ एक भटियारा है। वरना तेरी समझ मे एक चीज अच्छी तरह आ जाती।"

"कौन-सी चीज, मालिक ?"

"भागते-भागते अगर राह मे नदी या जगल आ जाए तो भागना नहीं चाहिए, रुकना चाहिए।"

"पीछे से दुश्मन के सिपाही आ रहे हो, तब भी ? तब तो वे जरूर हमारी गर्दन उड़ा देगे।"

"लेकिन किरात प्रदेश मे काम्पिलीदेव अपने सिपाही भेजने का खतरा नहीं उठाएगा। तू बैठ जा।"

"लेकिन मालिक, वह कितना नाराज हो गया था ? लगता था, जैसे जमीन से ज्वालामुखी फूट पडा है। वह सिपाही भेजे बिना न रहेगा।"

"सावधान सदा सुखी—इस दृष्टि से तेरी राय सत्य है हसन, लेकिन तुझे एक बात मालूम है ?"

"कान-सी, मालिक ?"

"दक्षिणापथ के महाकरणाधिप के श्रीमुख का आदेश है और उसे होना-वर से काम्पिली तक के मडलेश्वरों, दुर्गपालो और राजाओं ने दुहराया है कि जहॉ तक राजगुरु चतुर्समय का सकलन न कर लें, रायरेखा अकित न हो जाए, भगवान् विद्याशकर की अनुज्ञा न मिल जाए, वहॉ तक तुर्कों या किरातों से किसी प्रकार क बखेड़ा मोल न लिया जाए।"

"तो क्या दक्षिणापथ के लोग बुजदिल हो गए है, मालिक ! जग की मुमानियत है ? वह भी किरातो और तुर्कों के खिलाफ ? फिर तुर्क इन्हे चैन क्यो लेने दे रहे है ? क्या उन्हे इस हुक्म की जानकारी नही है ?"

'अरे बेवकूफ ! मुझ पर आरोप क्या था ?"

"जासूसी करने का।"

"तो जान ले, इस हुक्म की किसी को जानकारी नहीं है तो अब हो जाएगी।" गगू महाराज हॅसने लगा।

अब मानो हसन की समझ मे आ गया कि गगू महाराज के कथन का आशय क्या है। वह खिलखिलाकर हॅसने लगा। आनन्द मे मग्न होकर उसने कहा—वाह ! खूब ! मेरे मालिक खूब ! सब-कुछ समझ मे आ गया।

"तेरी समझ मे आ गया ! लेकिन बहुत देर से समझा, हसन !"

"यह बात सच है मालिक !"

फिर बरगद के नीचे मालिक और गुलाम, दोनो बैठे। उनके पास किसी तरह का सामान या सरजाम न था। भीषण विचारमाला के तूफान मे खोया गगू महाराज अपने सामने देखता बैठा रहा। उसकी निर्निमेष दृष्टि मानो बाहरी दुनिया को देख नहीं रही थी, वरन् मन की हजार-हजार अँधेरी गलियो मे घूम रही थी। वहॉ जो कुछ वह देख रही थी, उसे देखकर प्रसन्न होने के स्थान पर अधिक विषैली बनती जा रही थी।

पाषाण-खड से जैसे पुतला गढ़ा गया हो, इस प्रकार गगू महाराज उस वट-वृक्ष के नीचे बैठा ही रहा, मानो पुराकाल के किसी असुर का प्रेत भटक-कर रामवट तक आ पहुँचा हो !

हसन को किसी प्रकार की फिक्र न थी। किसी प्रकार के विचार-विनिमय की आवश्यकता न थी। उसे केवल दो ही चीजे कष्ट दे रही थीं—एक तो यह कि काम्पिलीदेव के सिपाही पीछे-पीछे आ न रहे हो ! दूसरी यह कि क्षुधा-निवारण के लिए क्या किया जाए ?

यह हसन किरातों के हाथ पड़ गया था और किरातो ने उसे गुलाम के रूप मे काम्पिली के बाजार मे बेच दिया था और इस तरह वह गुजराती

ज्योतिषी की सेवा मे उपस्थित हुआ था। अब उसे भूख की कोई चिन्ता न थी, चिन्ता थी अति आहार की।

आज उसे अपना अतीत अत्यन्त सुहावना प्रतीत हुआ। उसे ज्ञात हुआ कि भूख की चिन्ता बहुत बडी चिन्ता है।

आज तक के उसके दासत्व-काल मे भूख और आहार दो ही सबसे अधिक विचारणीय प्रश्न रहे है। इतना खाना कि एक प्रहर तक अलसाकर आराम करना पडे। इतना खाना खाकर मध्याह्न की वामकुक्षि पर साँझ तक लेटना और वामकुक्षि की पूर्ति होने पर फिर से रात्रि-भोजन की व्यवस्था करना —हसन के दृष्टिकोण मे ससार मे यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न थे।

इसलिए आज वह घबरा गया। भूख की पहली पुकार उठते ही आज खाद्य-सामग्री उसके सामने नहीं थी, और यह बात उसके लिए एकदम नई हो रही थी।

क्षुधा बढने लगी। भोजन का कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष साधन सम्मुख नही था। और उसका मालिक यो बुत बनकर बैठा था।

उसकी दृष्टि वट की डालियो पर लगे हुए वटफलो पर पडी। वह पेड पर चढ़ गया और फल एकत्र करने लगा। कुछ देर बाद वह नीचे उतरा। मालिक ने भी कुछ न खाया था। इसलिए अपनी खोज के फल उसे भी भेंट किये।

गगू महाराज की आँखे खुली थीं और उनमे लाल-लाल झाँइयाँ चमक रही थी। उसका कपाल नगारे की खाल की तरह तन गया था और उस पर खजर की धार की तरह तीन गहरी तीखी रेखाएँ बन गई थीं। उसके गाल भोजपत्र-जैसे सूखे और भावहीन थे। उसके होठ दाँतो से दबे थे और उन पर रक्त की बूँदे उभर आई थी। हाथ की मुट्ठियाँ बँधी थी और उँगलियों के नख हथेलियो मे गड गए थे। उसका शरीर इस प्रकार निर्जीव पड़ गया था, मानो दृष्टि मे दावानल प्रकटाने के लिए आँखो मे आ बैठा हो।

ऊँचे-ऊँचे पर्वत पर बैठा बनैला शिकारी पशु, शिकार की ताक मे बैठा हो, ऐसी उसकी नजरे थीं। जहन्नुम का जैसे कोई खौफनाक दरवाजा खुल

गया हो और उसकी कब्र से हचमचाकर मानो कोई ककाल उठा हो, इस तरह बैठा था गगू महाराज !

"मालिक, मालिक जरा तो बोलो !" हसन ने कहा, "मालिक, जरा तो बोलिए, मुझे डर लग रहा है ।"

गगू महाराज जैसे किसी भयकर दिवास्वप्न मे से चौक पडा । "क्यो शोर मचाता है, बेवकूफ !" उसने चिल्लाकर कहा और हसन का हाथ झटक दिया ।

गगू महाराज अट्टहास करने लगा । जिसे सुनकर हसन का खून ठडा पड गया । चुपचाप उसने वट के फल महाराज के सामने रख दिये ।

"यह क्या है ?"

"मालिक, भूख का इलाज है ।"

गगू हसन को देखता रह गया । हसन उसकी नजरे देखकर थरथरा रहा था । वह नजरे झुकाए जमीन पर बैठा रहा । उसने सोचा कि उसका मालिक किसी खौफनाक खयाल या ख्वाब मे डूबा हुआ है । हसन ने दड-हस्ति की लाल-लाल आँखे देखी थीं । गगू महाराज की आँखे इस समय वैसी ही थीं । अगर हसन उन आँखो से अपनी आँखे मिलाए तो जलकर उसकी आँखे खाक हो जाएँ और वह अन्धा हो जाए ।

गगू महाराज की आँखें हसन के कपाल पर जमी रहीं । तुरुष्क दास के सिर पर केश तो होते नहीं । केश-विहीन अपने मस्तक पर हसन को हजारों चींटियाँ चलने का बोध हुआ और मालिक की आँखों की आग से उसे अपना रोम-रोम जलता हुआ प्रतीत हुआ ।

"मेरे मालिक, मेरे मालिक, मेरे मालिक !" हसन जैसे तस्बी पढ रहा हो इस प्रकार होठ हिलाने लगा, इससे अधिक जोर से बोलते हुए उसे भय लग रहा था ।

आखिर महाराज हँसने लगा । बरगद के पत्तों की आवाज से वह हँसी टकराई । हसन ने आँखे उठाई । गगू महाराज का चेहरा स्वस्थ हो रहा था । उसके भीषण खयाल या ख्वाब की कोई छाया अब उसके चेहरे पर शेष न थी । अपने स्वामी की स्वस्थता की छाया हसन के चेहरे पर भी पडी ।

"मालिक, आपको क्या हो गया था ?" हसन ने अदब से पूछा ।

"हसन, तूने अपनी जिन्दगी मे किसी से पूरा बदला लिया है ?"

"मालिक, मुझे तो भूख की फिक्र के सबब और कोई चीज कभी याद न रही।"

"तो चुप होकर सुन, आज से मेरा और तेरा रास्ता अलग होता है।"

हसन के चेहरे पर अजब एक खौफ छा गया।

"तो क्या मालिक, आप मुझे बेच देंगे ? आप जब किसी खौफनाक खयाल मे नही होते है तब तो आप-जैसा भला मालिक मेरे लिए दूसरा और नहीं। मालिक, तेरे मन मे मेरे लिए मोह है या नहीं—यह तो मैं नहीं जानता, लेकिन मेरे मन मे तेरे लिए बहुत मुहब्बत है। तूने मुझे दूसरे मालिकों की तरह कभी अपना गुलाम नहीं माना। गुलाम की तरह मुझे नही रखा। तूने किसी दिन मुझे कोडे नहीं लगाए। तूने किसी दिन मेरी उँगलियाँ काठ के शिकजे मे नहीं दीं। तूने किसी दिन मेरे सिर पर भारी पत्थर नहीं रखे। मालिक, तूने मुझे कुत्ते या गधे की तरह नहीं रखा। मेरा क्या कसूर है, मालिक, कि इन्सानी मुहब्बत मेरे दिल मे जगाकर, अब तू मुझे दोजख मे ढकेल रहा है ? इससे तो यही बेहतर है मालिक, कि तू यहीं मेरी गर्दन उडा दे, मैं एक लफ्ज भी नहीं बोलूँगा। लेकिन मुझे अपने पास से हटाकर किसी दोजख मे न धकेल।" इतना कहकर हसन ने गगू के पैर पकड लिये, "मालिक, मैं तुझसे और कुछ नहीं माँगता, सिर्फ मौत माँगता हूँ। मुझे मौत दे, लेकिन छुट्टी मत दे।"

"हसन, उठ और मेरे सामने देख। मैं जिस तरह भयकर बदला ले सकता हूँ उस तरह अपना हक भी छोड सकता हूँ। हसन, जिस वक्त दड-हस्ति लौटा उस वक्त मैंने तुझे क्या कहा था, कुछ याद है ? मैंने कहा था—बच्चा हसन, तेरे भाग्य मे राजयोग है !"

हसन हँसने लगा—गुलाम को तो दो बार खाना नसीब हो जाए, यही गनीमत है। मेरे लिए तो यही बडे-से-बडा राजयोग है।

"सुन हसन ! ध्यान लगाकर सुन। अपनी विद्या मैं चाहे जिस काम मे लूँ, लेकिन यह विद्या झूठ नहीं है। तेरी किस्मत मे राजयोग है। तू एक-न-एक दिन किसी मुल्क का हाकिम बनेगा। इसलिए मैं तेरी बुलन्द किस्मत को अपने बदले की आग मे नही जलाऊँगा।"

"हाँ, अगर मैं किसी मुल्क का हाकिम बन जाऊँ तो सबसे पहला काम यही करूँ कि बडी-से-बडी फौज लेकर काम्पिलीगढ को नेस्तनाबूद कर दूँ। वहाँ नमक बो दूँ। उसके एक-एक पत्थर को चकनाचूर कर दूँ। और उसके हरेक राजा को हाथी के पैरो तले मरवा डालूँ।"

गगू हँसा—इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि तेरी बुलन्द किस्मत मेरा बदला लेने मे सहायक सिद्ध हो सकती है। हसन, मैं तुझे आजाद करता हूँ। तू जा, तुर्को के पास जा! तेरा भाग्य तुझे वहाँ ले जाएगा, वहीं तुझे बुलाया जा रहा है!

निराशामयी वाणी मे हसन ने कहा—मालिक, आप ऐसी आवाज और अहसास से अपनी बात कह रहे है कि पल-भर के लिए मेरी आँखो मे भी वह नजूमी रोशनी रोशन हो गई है! मालिक कहाँ मैं एक अदना गुलाम और कहाँ हुकूमत! हुकूमत अमीरेसदर तो क्या, अमीरेहाजरिन या मलकेदीनारी को भी नसीब नहीं, फिर मेरी तो बात ही नहीं उठती!

गगू महाराज फिर से हँसने लगा—हसन! खुदा देता है तो छप्पर फाडकर! मलिक गैरशास्प एक मामूली मलिक था, फिर भी 'अलाउद्दीन खिलजी सिकदर-सानी' के नाम से शहशाह बना। बना या नहीं? मलिक काफिर एक गुलाम था, फिर भी उसने हुकूमत की। मलिक खुशरू चमाड़ था, तथापि दिल्ली का सुलतान बना। क्या सुलतान नही बना? फिर तू ही बता, तू हसन गुलाम किस वजह हसनशाह नही बन सकता?

"नहीं मालिक! इस दुनिया मे मेरे दिल मे दो बातें घुसी बैठी है। एक तो अलाउद्दीन खिलजी की बुलन्द तकदीर। दूसरा गगू बहमन का मुझ पर रहम! अगर हसन को उसका तकदीर अपनी यारी देता है और हसन अगर शाह बनता है तो उसका नाम 'अलाउद्दीन हसन गगू बहमनी' रहेगा! और उसकी औलाद भी बहमनी कही जाएगी। मगर मालिक मेरे मालिक . वह दिन कहाँ जब मियाँ के पैर मे जूतियाँ रहेगी?"

"हसन, तू एतबार रख, तेरी तकदीर तुझे जूतियाँ भी देगी और ताज भी!"

"मालिक, आप जानते है, तुर्कों की फौज मे भर्ती होने के लिए कैसी-कैसी मुसीबतो का मुकाबला करना पडता है! पहले तो किसी अमीरेसदर को

नजराना देना पड़ता है, तब वह अपनी टुकडी मे भर्ती करता है। फिर किसी अमीरेहाजरीन को नजराना देना पडता है अमीरेसदर बनने के लिए। फिर मनसब बनने के लिए सूबा या सुलतान को नजराना पेश करना पडता है। मालिक, आप मेरा मजाक क्यो कर रहे है? मै छोटा-सा गुलाम, मालिको की लातें और जूतियाँ खानेवाला हूँ।"

"हसन, मैं तेरे राजयोग पर जूआ खेलने को तैयार हूँ। तू अभी दौलताबाद के नाम से मशहूर देवगिरि जा, वहाँ से तेरी तकदीर तुझे जहाँ बुलाए वही चले जाना।"

"दौलताबाद जाकर मैं क्या करूँगा, मालिक? किसी बेगम का खानसामा बनकर रह जाऊँगा? क्या यही है मेरी किस्मत?"

"तेरी तकदीर पर एतबार रखकर मैं तुझे एक बात कहता हूँ, तू उसे पोशिदा रख सकेगा?"

"मालिक!"

"कसम ले, इस दुनिया मे तुझे जो सबसे प्यारी चीज है उसकी।"

"मालिक, मुझे अपने खुदा की कसम। मेरे-जैसे गुलाम के लिए आप खुदा के बन्दे हैं, आपकी कसम!"

"तो सुन हसन, तू दौलताबाद जा। दौलताबाद मे फाँसी-चौक है। जानता है, उसे फाँसी-चौक क्यो कहते हैं।"

"नहीं।"

"इस चौक मे देवगिरि के आखिरी राजा हरपालदेव के जिन्दा शरीर से चमडी उतार ली गई थी। जानता है चमड़ी उतरवानेवाला कौन था—आज का दिल्ली का सुलतान मुहम्मद तुगलक। तब यह शाहजादा उलुग खाँ के नाम से देवगिरि का सूबा था। हरपालदेव की खाल मे घास भरकर, उस पुतले को इसी चौक मे फाँसी पर लटकाया गया था।"

"यह मैंने अपनी आँखों देखा है मालिक, तब मैं वहाँ खानसामा था।"

"ऐसा मशहूर यह फाँसी-चौक तुझे ढूँढना नहीं पडेगा। उस चौक मे मलिक रहमान तगी नामक एक आदमी रहता है, वह जाति-भ्रष्ट हिन्दू-चमार है। और सारे दौलताबाद में मलिक मोची के नाम से मशहूर है। वह अमीरे-

सदर भी है। तू उसी के पास जाना और कहना कि मैं आपकी लड़की से मिलना चाहता हूँ।"

"माशाअल्ला ! यह तो मौत के मुँह मे जाना है।"

"नहीं, मैं तुझे उस जगह भेज रहा हूँ, जहाँ तेरी तकदीर ने तेरे लिए बहिश्त की रचना की है।"

"गुलाम मरने के बाद बहिश्त मे नहीं जाता, मालिक ! वह तो दोजख मे जाता है।"

"हसन, याद रख। मैं नज़्मी हूँ। आसमान के तारे मेरे कानो मे गुफ्तगू करते है। किस्मत मुझसे मिलकर अपने लेख लिखती है। और लिखने पर मुझसे पढवाती है। तुझे मुझ पर एतबार नहीं ?"

"जी, जी !"

"याद है तुझे, जब हम दौलताबाद छोड़कर काम्पिली आए थे, तब मैंने तुझसे क्या कहा था ?"

"जी, जी !"

"तुझे मैंने कहा था कि हम मौत के मुँह मे जा रहे है।"

"जी, जी !"

"बोल," गगू महाराज ने आँखे निकालकर कहा, "हसन, याद रख, हरेक इन्सान के लिए तकदीर का एक कौल होता है। हजारों-लाखों सालों से आदमी और तकदीर का साथ रहता आया है। तकदीर कभी किसी का पीछा नहीं छोडती। फिर चाहे आदमी सातवे आसमान मे रहता हो, या सातवे पाताल मे।"

"मालिक, सच बात है आपकी। इन्सान नाचीज है, तकदीर बडी चीज है।"

"और अगर किसी आदमी पर एक बार मौत सवार हो जाती है और सवार होकर दूर हट जाती है तो उस आदमी की तकदीर हमेशा के लिए खुल जाती है। इस तरह, हसन, तू बुलन्दबख्त है।"

"इस हिसाब से तो मालिक, आपकी तकदीर मुझसे ज्यादा बुलन्द होनी चाहिए। मैंने तो मौत को सिर्फ़ लौटते हुए देखा है मगर आपने तो उसे गले से लगाया है।"

"मेरी बात जाने दे हसन ! तकदीर पढने का पेशा मेरा है, तेरा नही है ।"

"यह तो सच बात है, मालिक !"

"तो एतबार रख, ईमान रख । और मलिक रहमान तगी के पास जा और उसकी लडकी से मिलने को कह !"

"मालिक ! अगर मलिक तगी के एक से ज्यादा लडकियाँ हो तो ? अगर वह मेरी बात सुनकर टाल दे, तब भी क्या मै आपकी बात पर यकीन रखूँ ?"

गगू महाराज ने कठोर स्वर मे कहा—मेरी बात पर तुझे एतबार और यकीन रखना ही पडेगा, रखना ही पडेगा ।

"अच्छा मालिक ! अब मै बेफिक्र हो गया ! यह सब मेरी अक्लमन्दी नहीं, आपके हुक्म की बात है । अगर आपका यही हुक्म है तो यह तावेदार उसका पालन करेगा । आपके हुक्म पर अमल करने पर कोई मलिक मेरी फाँसी का हुक्म दे तब भी मैं परवाह नही करूँगा । मेरी दरख्वास्त सुनकर मलिक रहमान मुझे जिबह कर दे तो इसे मैं अपनी किस्मत का खेल समझूँगा । लेकिन मुझे जिबह न करे और दरख्वास्त को दाद दे, तो मै उसकी किस लडकी से मिलूँ ?"

"उसके एक ही लडकी है, हसन ! उसका नाम है नाम है "

"जी !"

"निगार !"

"निगार बानू ?"

"हाँ, इसी निगार बानू से तू मिलना । और उससे कहना कि अपना तकदीर आजमाने के लिए किसी अमीरेसदर के रिसाले मे भर्ती होना चाहता हूँ । जब तक तू उसे 'सकेत-चिह्न' नहीं देगा, वह तुझसे बात नहीं करेगी, तू उसे वल्लरी के नाम से पुकारना । तुरन्त वह तेरी बाते सुनने लग जाएगी ।"

"जी !"

"कहना कि गगाराम महाराज ने कहलाया है उनका जनेऊ आपके पास है, उसे सँभालकर रखना ।"

"जी !"

"इतना सुनकर, वह तेरे कहे पर एतबार लायेगी । तुझे सारी सहूलते देगी । अगर तू मलिक रहमान के रिसाले मे भर्ती होना चाहेगा, तो इसके

लिए भी इन्तजाम कर देगी। दूसरे अमीर के यहाँ जाना चाहेगा, तो उसका और नजराने का बन्दोबस्त भी हो जाएगा।"

"मालिक! मेरे मालिक! मुझे ख्वाब तो नहीं दिखला रहे है न?"

"अरे मूर्ख! पामर!! मै तुझे ख्वाब नही दिखला रहा हूँ। तेरी किस्मत का अन्दाज बता रहा हूँ। तेरे भाग्य मे राजयोग है। वही तेरी मजिल है। वल्लरी से मिलना उस मजिल की ओर पहला कदम है!"

गगू महाराज कुछ देर चुप रहा। कई प्रकार के मधुर-तिक्त विचार उसे परेशान कर रहे हो, इस प्रकार के रुद्रधनुष उसके भाल पर बनते-बिगडते रहे! उसकी नाक का छोर काँपने लगा। उसकी शक्ल-सूरत अस्त होते सूरज की रोशनी मे खडे किसी खडहर-सी नजर आने लगी। उसकी आँखों से आग के शोले निकलने लगे। हसन गगू का विकराल रूप देखकर काँपने लगा। आखिर घबराकर उसके चरणो मे सिर नमाकर बैठा रहा!

धीरे-धीरे गगू महाराज के चेहरे की कठोरता दूर हुई। आँखों की ज्वाला का शमन हुआ। खडहर मे मानो गुलाब का बगीचा लहरा उठा हो, इस प्रकार गगू का चेहरा खिलने लगा।

वह हँसने लगा। साफ, स्वच्छ हँसी प्रसन्नता!

"हसन! मुझे तेरी तकदीर पर भरोसा है। इसलिए तुझसे एक बात कहना चाहता हूँ। जानता है, यह निगार कौन है?"

"मलिक रहमान की लडकी।"

"मलिक रहमान की लड़की और मेरी औरत"

छिटकती हुई कमान के छोर की तरह हसन उछलकर खडा हो गया। उसकी आँखे अधमुँदी-सी रह गई। अतीव विस्मय से उसका चेहरा चकित रह गया!

वह गगू महाराज के सामने ताकता रहा। ताकता रहा! एक अक्षर भी उसके मुँह से न निकल सका।

"हसन! तेरी तकदीर पर मैं जूए का दाँव लगा रहा हूँ। तुझे मलिक रहमान के पास भेजता हूँ। तेरे ईमान पर भरोसा रखकर, तुझे अपनी बीवी के पास भेज रहा हूँ। लेकिन, एक बात याद रखना, बच्चा!"

"जी !"

"मैं मणिधर, फणिधर काला नाग हूँ ! अगर मुझसे बेईमानी की तो याद रखना ! निगार तुर्क है, चमार की भ्रष्टा लडकी है, फिर भी मेरी बीवी है ! समझा !"

पल-भर के लिए हसन इस चुनौती और चेतावनी को समझ न पाया। फिर सिर हिलाकर कहने लगा—मालिक, तूने मुझे जो ख्वाब दिखलाया, वह खुशनुमा था, लेकिन मै दौलताबाद नही जाऊँगा।"

"क्यो ?"

"बेईमानी और शक की बू लेकर हसन कहीं नहीं जाएगा।"

"अरे बेवकूफ ! तू खाक भी न समझा ! जब तू निगार को देखेगा तब तुझे मेरी बात समझ मे आ जाएगी।"

"मालिक ! एक बात कहूँ ?"

"कह !"

"अमीरेसदर आपके ससुर है। परीसूरत नाजनीन निगार आपकी बेगम है। फिर आप नजूम देखने के, गुप्तचर के और हाथी के पैरो बँधने के खतरे मोल लेते है ! आप भी दौलताबाद चलिए। मैंने मौत को बहुत करीब से देखा है, लेकिन आपने उसे गले लगाया है। नजूम के हिसाब से मुझसे बड़ा राजयोग आपके लिए है। मैं आपका गुलाम बनकर रहूँगा। फिर भी आपको मेरा भरोसा नही होगा तो मैं अपनी आँखे फोड़कर, आपकी और बेगम की खिदमत करूँगा !"

"हसन, तेरे नसीब मे राजयोग है। मेरे भाग्य मे कालयोग है। तू अपने रास्ते जा और मुझे अपनी राह जाने दे।"

"आपकी अपनी राह ?"

"हाँ, तेरी और मेरी राहे इस रामवट से जुदा होती है। तुगभद्रा के किनारे-किनारे तेरा मार्ग देवगिरि की दिशा मे है और मेरा इस अघोर वन मे।"

"मालिक, अघोर वन के किरातो से तुर्क भी शह पाते हैं।"

"तू मेरी फिक्र न कर। जा यहाँ से।"

"जी !"

"हसन, तू अपनी तकदीर आजमा ले। मै तुझे आजाद करता हूँ। बिदा की इस घडी मे तुझे देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।"

"आपने मुझे आजाद किया, इससे ज्यादा और क्या दे सकते है? मालिक, तूने मुझे सब कुछ दिया।"

गगू महाराज की आवाज कठोर और कठोर हो गई—हसन, मै तुझ पर एहसान नही करता। तेरी तकदीर बुलन्द है और मैं उसे अपने वैर का माध्यम बना रहा हूँ। हसन, सब-कुछ भूल जाना, मुझे भी भूल जाना, लेकिन मेरे वैर को न भूलना।"

"मालिक, लोग कहते है कि गुलाम का कोई खुदा नहीं होता। मैं नहीं जानता कि एक गुलाम को खुदा की कसम लेने का हक भी है या नहीं! लेकिन अपने ईमान, अपनी किस्मत और अपने खुदा की कसम खाकर कहता हूँ कि मैं गगू कन्याली को कभी नही भूलूँगा। और काम्पिली नगर के काम्पिली-देव को भी नहीं भूलूँगा।"

"अच्छा, अब तू जा।"

"जाऊँ? आपको किरातो के इस जगल मे छोडकर?" एकाएक हसन रुक गया। गंगू महाराज पत्थर की मूरत की तरह निश्चेष्ट बैठा था।

दूर—दूर से हजारो किलकारियो का कोलाहल सुनाई दिया।

धीरे-धीरे यह कोलाहल नजदीक आ गया।

"किरात!" हसन का चेहरा डर से सफेद पड़ गया। "मालिक, आप जानते है, खोफनाक किरात किसी को जिन्दा नहीं छोड़ते। भागिए!"

दर्शक की देह ठडी पड जाए ऐसा—मौत की बर्फ-जैसा स्मित गगू महाराज के मुख पर छा गया।

उसने कहा—भाग्य से दूर कोई आदमी नहीं भाग सकता। मेरी तकदीर यहीं है, जिन्दा रहूँ या मर जाऊँ। तेरी तक़दीर यहाँ नही है, तू भाग जा।

"मालिक, तुझे छोडकर?"

"मुझे छोड़कर भाग, बच्चा हसन, जब तक भागने का मौका है तब तक कहीं भाग जा।"

अब तक कुटिल किलकारियाँ और करीब आ गई थीं।

"भाग बच्चा, हसन !" गगू महाराज ने उसे धक्का दिया, "जा ! मेरा चाहे जो हो, तू अपनी तकदीर की राह मत चूक जाना।"

हसन गगू महाराज को देखता रह गया। उसके कानो मे किरातो की किलकारियाँ कटार की तरह चुभने लगीं।

"जा हसन ! एक आखिरी बात याद रखना, दिल्ली का सुरजाण मुहम्मद तुगलक अजीब आदमी है। उसकी शरण मे तेरी किस्मत की मजिले है। लेकिन ध्यान रखना, उसके पास काम्पिलीदेव से भी अधिक सख्या मे दण्ड-हस्ति है। होशियार रहना !"

गगू महाराज ने उँगली उठाकर दिशा बताई, "जा हसन, सलाम वाले-कुम ! खुदा तेरा रहबर बने !"

किलकारियाँ और निकट आ गई। महाराज ने हसन को फिर से धक्का दिया—जा खुदा हाफिज !

हसन पीछे देखता हुआ चल पड़ा। उसके पैरो मे मानो किरातो की किलकारियाँ चुभने लगी ! वह दौड़ने लगा, मुट्ठियाँ बाँधकर दौडा—एक नजर डालकर भी उसने पीछे नहीं देखा !

६ किरातराज शम्बूरराय

विचित्र वेश-भूषा, और वस्त्रों से असगत शस्त्रास्त्रो से सुसज्ज एक टोली रामवट के सामने की वनराजि से निकल आई।

तुगभद्रा नदी के दोनो तटो पर, आज तक जितने लोग रहते थे, जितनी जातियाँ, सम्प्रदाय और धन्धे के लोग रहते थे, उन सबके अपने-अपने धर्म और कर्म के अनुसार वस्त्र और व्यवहार थे। तुर्को के अमीर जरीदार कुरते और सलवार पहनते। कन्धे से कमर तक चमडे के पट्टे पहनते और उनमे तलवार, छुरी, कटार और दूसरे हथियार सजाते। इसी प्रकार मलिको की भी अपनी विशेष भूषा थी। दक्षिणापथ का योद्धा सूती कुरता और मुडा पहनता, खड्ग और कटार सजाता। देवाग लोग माथे पर पगड़ी-जैसा वस्त्र बाँधते। शेष ऊपरी बदन खुला रखते और मुडे पहनते। संन्यासी भगवाँ कपडे पहनते

और यति सफेद कपडे पहनते। भागवत् लोग खम्भाती धोती पहनते और काशी का उत्तरीय ओढते। वणिक लोग घुटनो तक कुरता और नीचे सलवार की जगह धाती पहनते। तुर्क और आर्य मे कोई ही जूते पहनता था—तुर्को मे सिर्फ अमीर और हिन्दुओ मे पृथ्वी-श्रेष्ठी—ये दोनो जूते पहनते थे। शेष की पोशाक से ही जाति का अनुमान लग जाता था।

लेकिन वनान्तर से यह जो टोली आ रही थी, इसकी वेश-भूषा का कोई ठिकाना न था।

इसकी वेश-भूषा मे ऐसा विचित्र मिश्रण था कि उसे देखकर किसी प्रकार के व्यवसाय की कल्पना ही नही की जा सकती थी।

अन्य जातियो मे पोशाक की तरह हथियार भी वर्ग और व्यक्तित्व का सकेत देते थे, परन्तु इस टोली मे ऐसा कोई नियम न था।

इस टोली के सदस्यो का रग, सिर से पैर तक एकदम काला था। होठ मोटे थे और कान बाहर निकले हुए थे। ऐसी यह टोली बार-बार उछलकर किलकारियाँ भर रही थी। भीड़ के दो-चार व्यक्ति बार-बार उछल कूदकर सींग-जैसा एक वाद्य बजाते और तेज और बेढगा स्वर इस तरह गुँजाते मानो हवा के सीने मे खजर भोक रहे हो!

गुड की डली पर जिस तरह चीटियाँ जमा हो जाती है, किसी मृत देह पर कीडे लग जाते है इस प्रकार यह भारी भीड नजदीक और ज्यादा नजदीक आ रही थी—रामवट की ओर बढ रही थी।

आगे-आगे कुछ जगली लोग एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उछलते हुए बढ़ रहे थे। वे इस कुशलता, क्षिप्रता और सफ़ाई से पेड़ों के सिरों पर उछलते आ रहे थे मानो किसी मैदान मे दौड़ रहे हों। उनमे से दो आदमी काम्पिली नगरी को ओर देख रहे थे।

रामवट के मध्यस्थ वट से कई शाखाएँ और जड़े धरती मे जमकर नए वट-वृक्ष बन गई थीं। इस तरह वट की घनी घटा मडप:बन गई थी। और उपवट मानो मडप के स्तम्भ बन गए थे। ऐसे ही एक वट के पीछे गगू महाराज बैठा था और गौर से इस भीड को देख रहा था, कान लगाये सुन रहा था।

आजीवन भटकनेवाले इस अनुभवी ब्राह्मण को यह समझते देर न लगी कि यह भीड भयकर पशुओं से भी भयकर किरातो की है।

किरात अपने इस वन मे किसी सस्कृत व्यक्ति को न आने देते थे, न बसने ही देते थे, क्योकि ऐसा होने पर वन के कट जाने का भय था। नये नगर और गाँव बन जाने का सकट था। प्राचीन काल मे गोदावरी और तुगभद्रा के बीच मे अनन्त दण्डकारण्य था। यह अरण्य इसी प्रकार कट-कटकर अधिकाश मे साफ मैदान और बस्ती बन गया था। शेष केवल कृष्णा के पूर्वी किनारे का प्रदेश बच रहा था।

यही प्रदेश किरातों का वतन था। यही इनका पिता और इनकी मा था। वन से किरातो को प्यार था। गॉव, नगर और घर-बार से, खेती, धर्म और सम्प्रदाय से उन्हे घृणा थी इसलिए इस वन मे किसी का प्रवेश नही होने देते थे। प्रविष्ट व्यक्ति को वे तत्काल मार डालते थे, फिर चाहे वह किसी भी देश या जाति का क्यो न हो, इसलिए किरातो का पेशा बन गया था—लूटमार और लूट के माल पर मौज करना। यह छोटा-सा काम उनकी समाज-नीति, अर्थनीति और राजनीति बन गया था और इसी मे उनकी सभी नीतियॉ समाई थीं।

टोली के बीच मे एक पशु वार पर वार सहकर चीत्कार भरता दौड रहा था।

टोली का अग्रभाग अब स्पष्ट दिखलाई पड रहा था। उसके बीच मे एक बड़ी-सी नीलगाय थी। उसकी ग्रीवा और पीठ मोटे रस्सो से बँधी थी। उसके अग-अग से खून बह रहा था। रह-रहकर यह या वह किरात अपने भाले या तलवार की नोक इस नीलगाय के बदन मे चुभो देता, और वह चीत्कार करती भागने लगती।

लेकिन इस चीत्कार को सुनकर किरातो की टोली अतिशय आनन्द पाती और उछल-कूदकर अपना आनन्द व्यक्ति करती।

साथ ही पेड़ो की चोटियो पर चढे हुए दूत आगे बढते जाते थे। उनकी नजरे काम्पिली की ओर थीं।

टोली के बीच में एक विशालकाय व्यक्ति था। वही एक ऐसा आदमी था जिसने सिर से पैर तक सचमुच कपडे पहन रखे थे। उसके माथे पर पखों

का मुकुट था और एक हाथ मे भारी भाला था। यदा-कदा वह अपना भाला बढाकर किसी किरात को छू देता और जब वह किरात मुडकर देखता तो वह विशालकाय व्यक्ति उसे सकेत से कोई आदेश देता।

यह विशालकाय व्यक्ति नायक प्रतीत होता था और अपने भाले की नोक से शासन चलाता प्रतीत होता था।

एकाएक गगू महाराज के आसपास किलकारियाँ उठीं। गगू महाराज ने देखा, दो किरात उसके पीछे आकर खडे थे और भाले की नोक से गगू महाराज को भाग न जाने से रोक रहे थे। इन दोनो भालेदारों की पुकार सुनकर किरातराज घटनास्थल पर आया। उसने गगू महाराज को देखा, उसके पत्थर-जैसे काले चेहरे पर शिकारियो का क्रूर हास्य झलक उठा। उसका इशारा पाकर किरातों ने गगू महाराज को बड़ के उस पेड से बाँध दिया।

नीलगायवाली टोली भी आ गई। टोली ने नीलगाय को, पैर बाँधकर जमीन पर डाल दिया और उसे भी बड के पेड से बाँध दिया।

नीलगाय के शरीर पर तलवार, छुरे और भालो के कई घाव थे, जिनसे लहू बह रहा था और उस लहू की गन्ध से ललचाकर वन की हरी मक्खियो के झुड नीलगाय के घावों पर आ बैठे थे। उनके डक की मार से नीलगाय बार-बार चीत्कार करती थी, तड़पती और उछलकर गिर जाती थी। उसकी यह दशा देखकर किरात बहुत-बहुत प्रसन्न होते और किलकारियाँ मारते थे।

कुल्हाडे की चोट-जैसा एक शब्द उठा और उसे सुनकर सभी किरात एक पक्ति मे खडे हो गए। यह किरातराज का हुक्म था।

किरातराज ने मुँह से एक भी शब्द न कहकर गगू महाराज की ओर उँगली उठा दी।

पेड से बँधे गगू महाराज को देखकर क्षण-भर के लिए किरात स्तब्ध रह गए, मानो वे किसी अजीब जन्तु को देख रहे हों।

एक जवान किरात अपना भाला ताने गगू महाराज की तरफ बढा और जैसे इस नए जानवर की जाति जानना चाहता हो, इस तरह गगू महाराज के शरीर को भाले की नोक से छूने लगा।

"जरा ठहरो !" किरातराज ने कहा, "हमारे आज के आनन्द मे विघ्न डालनेवाला यह कौन है ?"

किरात एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। इस सवाल का जवाब देने के लिए कोई तैयार न था।

"तू कौन है ? कहाँ से आया है ?" एक किरात ने पूछा।

' ठहरो !" किरातराज बोला, "नहीं जानते यह काम्पिली का जासूस है ?"

गगू महाराज तिरस्कारपूर्वक हँसने लगा—काम्पिली के दुर्ग पर खड़ा हुआ कोई योद्धा या प्रहरी इस वन की ओर आँख उठाकर देख सकता है ?

इस कथन का तात्पर्य समझने मे किरातराज को तनिक कष्ट उठाना पड़ा—तो तू मूलसघ का आदमी है ?

गगू ने जवाब न दिया।

"आखिर आज मूलसघ की हिम्मत तो बँधी कि उसने तुझे भेजा ! आज सैकड़ो बरसो से, हर बरस के हर दिन, इसी वेला इसी रामवट के नीचे हम आते है और साथ मे नीलगाय लाते हैं, जिसकी पूँछ हम काम्पिलीदेव को भेंट मे भेज देते हैं। आज तक किसी ने कुछ न किया, लेकिन आज तुझे क्यो भेजा ?"

"मुझे किसी ने नहीं भेजा। मैं खुद ही आ निकला हूँ।"

"किरात-वन कोई रगशाला नहीं है कि कोई यहाँ आ निकले। जब किसी की मौत आती है, तभी वह इधर आता है।"

"तो मान लीजिए कि मेरी मौत आ गई है।"

किरातराज ने सिर हिला-हिलाकर कहा—जाँच करो। चरों से पूछो, काम्पिली मे किसी तरह की हलचल हो रही है ?

तत्काल दो-तीन किरातों ने शोर मचाया। उत्तर मे पेड़ो के सिरों पर उछलनेवाले किरातो ने हाथ के सकेत से 'ना' का उत्तर दिया।

किरातराज ने फिर से पूछा—बता, तू कौन है ? काम्पिली का ? मूलसघ का ? कहाँ का आदमी है ?

"क्या बतलाऊँ ? मैं तो सिर्फ एक मुसाफिर हूँ।"

"हमे अपने वतन मे किसी मुसाफिर की जरूरत नहीं और हमारे यहाँ

कभी कोई मुसाफिर आता भी नहीं। अगर कभी कोई आ भी गया तो, जिन्दा लौटता नहीं। यह जाहिर बात है। फिर तू ही इतना मूर्ख कैसे हो सकता है कि मरने के लिए यहाँ मुसाफिरी करने चला आया?"

इस बार गगू महाराज ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

लेकिन किरातराज कहने लगा—गलत है, बिना कारण, बिना लालच, बिना मतलब कोई आदमी मरने के लिए कभी नहीं आता। तू एकदम झूठा है। सच-सच बता दे अगर अपनी खैर चाहे।

"क्या बताऊँ?"

"कह दे कि मैं झूठा हूँ।"

"हाँ, झूठा हूँ।"

"तो बस, तू झूठा है, यह तूने अपने मुँह से कबूल किया है। इसलिए सच-सच बता दे, तुझे किसने भेजा है? हमारे दुश्मनों, तुरुष्क, काम्पिली और मूलसघ मे से किसने तुझे भेजा है? तू तुर्क नहीं है। मूलसघ हमसे दूर है। लेकिन आज का दिन ऐसा है कि मूलसघ ने तुझे भेजा है, इस बात की सम्भावना है। किसका भेजा तू यहाँ आया है? अगर चुप रहेगा तो आदमी की जीभ खुलवाने के हमारे पास और भी कई जरिये है।" किरातराज ने उँगली उठाकर तड़पती और चीखती हुई नीलगाय को दिखलाया। फिर अट्टहास करके बोला, "नीलगाय बड़ा भोला जानवर है, तेज भी है। महाराजाओं और अमीरों ने इसका सरक्षण किया है। आज तक किसी ने इसे मुँह से बोलते हुए नहीं देखा। फिर भी तू देख रहा है कि हम इसे यहाँ तक घसीट लाये है। और जमीन पर फेंक दिया है। अब यह लगातार चीखे जा रहा है, इसी तरह तेरी जीभ खुलवाने मे भी हमे जरा भी कष्ट नहीं होगा।"

"मेरे मुँह में भी जीभ है। और कहो तो मैं कुछ बोलकर दिखा दूँ, लेकिन मुझे क्या बोलना चाहिए?"

"देख सुन," किरातराज ने कहा, "लगभग ५० वर्ष पूर्व की बात है। उस समय के काम्पिलीराज जैन-धर्म के अनुयायी थे और निगठनाथ की पूजा करते थे। यहाँ से तुझे जो मन्दिर दिखाई देता है, वहाँ पम्पापति की मूर्ति है। किन्तु पहले वहाँ निगठनाथ की मूर्ति थी। उस समय मूलसघ के दो

वणिक् मेरे पिता के पास आये और उन्होंने हमारे दुर्ग मे रहने की इजाजत माँगी। मेरे भोले पिता ने आज्ञा दे दी। अब वे दोनो बनिये लगे व्यापार करने और कुछ ही दिनों मे उन्होने सारे किरात-वन को देवागों की भीड से भर दिया। और किरातों के लिए कई कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। उनका रहन-सहन भ्रष्ट कर दिया। मेरा पिता अपनी दुर्बुद्धि पर पछताया। वन के स्थल, गुप्त मार्ग और रहस्य कोई जान न पाये-यह हमारे लिए बड़ी बात है। उन्होंने तो हमारे वन को, दुर्ग को, वोर वणिकों का वणिग्राम बना दिया। तब मेरे पिता ने एक उपाय ढूँढ़ निकाला, उनसे कहा—तुम दोनो बनिये बरसों से यहाँ रहते हो, व्यापार करते हो और धन कमाते हो। तुम हमारे कहलाते हो, और हम तुम्हारे कहलाते है। अतएव तुम दोनो अपनी एक-एक बेटी मेरा ब्याह कर दो। बस, इतनी बात थी कि दोनो बनिये पूँछ दबाकर भाग निकले। उनके पीछे-पीछे मेरा बाप दौडा और उन्हे इस बरगद के पास धर दबाया। लेकिन बनियों ने अपने सैनिको के साथ रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर लिया था और मेरे पिता को इस बात की आहट भी न मिली और बहुत बड़ा बखेड़ा खडा हो गया और बडी कठिनाई से मेरा बाप बचकर निकल सका। उसके साथी किरात मारे गए और दोनो वणिक् काम्पिली की ओर भाग गए।"

यह घटना सुनकर गगू के चेहरे पर स्पष्ट हँसी छा गई। मानो किरातों की पराजय और काम्पिली की विजय दोनो उसके लिए मजाक की बात थी।

"हँस ले भाई, हँस ले। उस दिन काम्पिली का राजा भी इसी तरह हँसा था।" किरातराज का चेहरा अचानक कठोर हो गया मानो कठोरता ने स्वयं अवतार लिया हो। फिर वह कहने लगा, "तभी न काम्पिली के एक कवि ने किरातराज को अपनी कविता मे 'महिषासुर' कहा था। उस दिन से काम्पिली-देव तुगभद्रा को पारकर इस ओर आना भूल गया।"

"काम्पिलीदेव किरातों से डर गया! क्या कहते हो?"

"हाँ।"

"कैसे?"

"क्या तू जानता नहीं, हम अपने शत्रुओं की कैसी दुर्गति करते है?"

"नहीं।"

"मूलसंघ का बडे-से-बडा उत्सव गोमटाभिषेक है। काम्पिलीदेव का बडे-से-बड़ा पूजा-पशु नीलगाय है, यही उनका राज्य-चिन्ह है। वे लोग प्रतिदिन नीलगाय की पूजा करते हैं। अपनी पालकियों मे नीलगाय को जोतते है। होरमर्ज का घोडा और काम्पिली की नीलगाय इन दोनो के योग से वे एक नई सन्तति पैदा करना चाहते हैं। काम्पिलीदेव को नीलगाय प्राणों से भी प्यारी है और काम्पिली राज्य मे नीलगाय के हत्यारे को मृत्युदण्ड दिया जाता है।"

"यानी ?"

"यानी हम एक ढेले से दो पक्षी मारते हैं। किरात सब-कुछ भूल सकता है, अपना प्रतिशोध नहीं भूल सकता। मूलसघ का बडे-से-बडा पर्व गोमटाभिषेक है। उस दिन बनिये लोग इसी जीव की हत्या नहीं होने देते और उसके लिए पैसा भी खूब खर्च करते है। इसलिए हम उस दिन एक ऐसे स्थान पर जहाँ से काम्पिलीवाले हमे अच्छी तरह देख सके अचूक रीति से नीलगाय मारते है। देखते है कि मूलसघ या काम्पिलीदेव, दोनो मे से किसी मे इतना दमखम है कि हमे ललकारे। किन्तु . किन्तु कोई सामने नही आता।"

"बात तो ठीक है, अब मेरी समझ मे आ गया कि तुम लोग किस लिए नीलगाय को सता रहे हो और क्यों काम्पिली नगरी के इतने निकट आ गए हो।"

"नीलगाय को सताने का हमे कोई शौक नहीं, लेकिन सताने पर उसकी चीख-पुकार काम्पिली मे सुनाई दे और महाराज भी सुन लें। .बस यही हम चाहते है।"

"लेकिन इस सारे बखेडे से मेरा क्या सम्बन्ध है ?"

"सम्बन्ध इतना ही।" किरातराज ने धीरे से कहा, "आज इतने बरसो बाद तुम्हे यहाँ भेजने की फिक्र उन्हे हुई, यही हमारे लिए आनन्द की बात है। अब यह जानना रहा कि तुझे यहाँ भेजनेवाला कौन है ? काम्पिलीदेव या मूलसघ ?"

गगू ने सिर हिला दिया।

"खैर, तू और तेरा भाग्य जाने। तेरे भाग्य मे मुसीबत लिखी है सो उसे कौन टाल सकता है ? हम तो इतना ही जानना चाहते थे कि तुझे यहाँ किसने

भेजा ? और इतना बता देने पर तुझे अपने कष्टों से छुटकारा मिल सकता है। और हमे भी यह ज्ञात रहे कि हम अपने दोनो शत्रुओं मे से किसे तेरा सिर भेजें ?"

किरातराज ने इशारा किया। इशारा पाकर किरातों ने गगू महाराज को पकड लिया और उसे रामवट से बाँध दिया। रामवट का तना बहुत मोटा था, यदि पन्द्रह आदमी हाथ से हाथ मिलाकर घेरा डाले, तब तना उनकी पकड मे आ सकता था। तने पर काले-काले धब्बे भी थे।

किरातराज ने पूछा—अरे महाराज, जानता है, ये धब्बे कैसे पड गए है ?

"नही।"

"तो अभी जान लेगा।" इतना कहकर किरातराज ने गगू महाराज से पन्द्रह कदम की दूरी पर किरात खडे कर दिए।

इनमे से एक किरात आगे बढा। उसने धनुष उठाया। फौलाद के फल-वाला बाण उठाया और धनुष पर तीर चढ़ाया। जिस प्रकार बिफरा हुआ भौंरा घुन्नाता है, उसी प्रकार तीर छूटा और गगू महाराज के माथे पर बालो से ऊँचा उड़ता हुआ पेड़ के तने मे पैठ गया।

उसके बाद दूसरा किरात आया। उसने परशु निकाला और उसे तीन-चार वार हवा मे घुमाया और गगू महाराज की ओर छोड़ दिया। कान को छूता हुआ परशु बरगद के तने मे घुस गया। उसका हत्था गगू महाराज की ग्रीवा से आ लगा।

इस तरह तीसरा, चौथा और पाँचवाँ किरात आया, किसी ने भाला किसी ने खड्ग और किसी ने छुरी फेंकी। लेकिन सभी शस्त्रास्त्र गगू महाराज के शरीर को छूकर पेड़ के तने मे घुस गए।

"क्यो महाराज," किरातराज गगू के पास आया, "अब भी कुछ कहना है ?"

तिरस्कारपूर्वक गगू हँसने लगा—क्या तुम मेरी जीभ इसी तरीके से खुल-वाना चाहते हो ?

किसी ने यह कल्पना तक न की थी कि गगू महाराज मे इतना साहस होगा। गगू महाराज ने बडे रोब से कहा—जरा सामने आइए।

"क्या मतलब ?"

"मेरे पैरों मे जूतियाँ हैं, जरा इन्हे निकाल कर देखिए। मेरी पगतलियो की क्या दशा है ?"

किरातराज की आज्ञा पाकर, एक किरात आगे बढ़ा। उसने पगतलियाँ जो देखीं तो पाँच कदम पीछे हट गया।

गगू महाराज के पैरो मे बड़े-बडे घावों के निशान थे। तलवार के घाव थे। जलने के निशान थे। आग पर चलने के दाग थे।

महाराज ने अपनी दोनो हथेलियाँ ऊँची उठाई। हथेलियो के बीच मानो खजर के निशान थे।

गगू ने ललकारकर कहा—यह जबान खुलवाने के लिए तुर्कों ने मेरी हथेलियों में खजर भोककर मुझे पेड़ से बाँध दिया था। मेरे पैरो पर जहरबन्द के वार किए थे। सुलगती हुई आग पर मुझे खडा किया था। लेकिन, किरात-राज, कोई मेरी जबान न खुलवा सका! और आप भी ज्यादा-से-ज्यादा अत्याचार कर सकते हैं, लेकिन यह जबान खुलेगी नहीं। और अभी तो आपको मेरी पीठ देखनी है।"

सब एक दूसरे की ओर देखने लगे।

गगू महाराज ने अपनी बात जारी रखी—लेकिन मैं सच कहता हूँ कि मैं किसी का भेजा हुआ आदमी नहीं हूँ। न तो मेरा मूलसघ से सम्बन्ध है और न ही काम्पिलीदेव से। मैं तो अपने वैर का बदला लेने के लिए निकला हूँ।

"और हम भी अपने वैर की वसूली के लिए निकले है। किरातों की दुनिया मे अगर किसी जासूस को भेजा जा सकता है तो तेरे जैसा-आदमी ही यहाँ आ सकता है। तू ब्राह्मण है ?"

"मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। किरातराज, लोग मुझे विप्रराज नहीं विप्र-विरोधी के रूप मे पहचानते है। मैं ब्राह्मण नहीं, ब्रह्मराक्षस हूँ।"

"रामवट के नीचे ब्रह्मराक्षस ?" किरातराज आगे बढा। उसने अपनी कटार निकाली और गगू के शरीर से छुआकर कहा, "खून! तेरा खून तो मनुष्यों-जैसा ही है। तेरे जख्म से मनुष्यों की तरह खून बहता है। इसलिए तू भूत-प्रेत या राक्षस नहीं है। तू तो जीता-जागता आदमी है!"

फाँसी की यह कोठरी पिछले सौ-सवा सौ सालो से अपने मेहमानो की अन्तिम सराय के समान थी। इसकी दीवारों पर लहू के लाल दाग पडे थे। कैदियो ने मौत की राह देखते हुए, अपनी उँगलियो के नखों से या जजीर की कड़ियो से अपने नाम लिखने की कोशिश की थी।

अस्त होते हुए सूरज की आखिरी किरणे इस कोठरी के एकमात्र छेद या खिड़की से अन्दर आती थीं और लहू से धुली हुई दीवारों को खूनी रोशनी से चमका देती थी। किसी-किसी वक्त रोशनी की परछाईयाँ इस तरह पडती मानो वे किसी का नाम ढूँढ रही है और तब नाम साफ-साफ पढे जा सकते थे।

इस कैदी ने भी नामो की यह फेहरिस्त पढी थी, जिसमे अलाउद्दीन खिलजी यानी सिकन्दर-सानी के बडे बेटे शाहजादा खिजर खाँ का नाम भी लिखा था। उस शाहजादे को अन्धा कर दिया गया था। वह मौत की राह मे दीवाना बनकर इस कोठरी की दीवारो से सिर पटकता था। तभी उसने जजीर की कडियो से अपना नाम लिख दिया था। और उसी नाम के नीचे उसी शाह-जादे को अन्धा करनेवाले मलिक काफ़ूर का नाम भी लिखा था। मलिक काफ़ूर, जो खम्भात के एक मामूली गुलाम से बढकर दिल्ली का खानखाना बन गया था और कलयुगी कालयवन के नाम से भयकर ख्याति पा गया था। आखिर उसका भी वही अजाम हुआ जो उसने दूसरो का किया था, अपने मालिक का किया था। इसी फेहरिस्त मे अलाउद्दीन खिलजी के दूसरे शाह-जादे शहाबुद्दीन और तीसरे शाहजादे मुबारक के नाम भी थे। और फिर इसमे अलाउद्दीन खिलजी के बाद दिल्ली की हुकूमत और सल्तनत के दावे-दारो मे से किन-किन के नाम नही थे?

जब यह कैदी इन नामो को पढता तो कभी हँसता, कभी रोता और कभी पागल की तरह नाचने लग जाता, क्योकि, खुद इसने भी इन नामों के लिखने-वालो के खिलाफ दॉव-पेच खेले थे। यह भी गुलामो के गुलाम से शाहो का शाह बना था

कोन-सा मुसलमान इतिहासकार ऐसा है, जो कानोजी परवारी उर्फ खुशरू खॉ गुजराती उर्फ सुल्तान हिशामुद्दीन का नाम नही जानता? या उसे भूल सकता है? लेकिन इस नाम को याद कर लेने पर वह लानत ही भेजेगा।

इसने तुर्कों की दिल्ली पर इतने जुल्म ढाये, जितने तुर्कों ने गुजरात पर नहीं ढाये थे। इतना ही नहीं, इसने सारे अमीरो और जागीरदारों का कचूमर निकाल दिया था। इसने सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के तमाम शाहजादों और मलिक काफ़ूर का काम तमाम कर दिया था। इसने कोई कमी न रखी थी कि तुर्कों के खिलाफ गुजरात खड़ा हो जाए। इसने बहुत बड़ा जूआ खेला। इस खेल मे पहले जीता भी—गुजरात के ही नहीं दिल्ली के तख्त पर भी बैठा, लेकिन गुजरात मे ही दम नही था, बेचारा यह क्या करता!

हजारो दुश्मनो के बीच घूमनेवाला यह कैदी, एक दोस्त की धोखाधड़ी का शिकार हुआ। एक तातारी तुर्क ने इससे दगा किया। इसने उसे नौकरी दी, उसने इसे दगा दिया। वह फौज का मलिक बन गया।

मलिक बनकर उसने इसे वही भेजा, जहाँ यह आज बैठा था।

आज बैठा-बैठा यह कैदी जल्लाद की राह देख रहा था कि उसे एक फकीर का यह सवाल याद आया—मगर कोई देखे-न-देखे खुदा देखता है।

फकीर की बात सच निकली। दगा करनेवाला खुद भी दगा का शिकार बना। और अब जल्लाद की तलवार के सिवाय इसका और कोई भविष्य नही था। लेकिन उसे इसके लिए कोई अफसोस न था।

अतएव, फाँसी की कोठरी का दरवाजा खुलते ही उसने अपने करतार का स्मरण किया। उसका मन गुजरात मे लगा था।

द्वार पूरा खुल गया, लेकिन जल्लाद आया नही।

"अरे तुम!" आगन्तुक को देखकर उसे विस्मय हुआ। उसे जल्लाद के आने की आशा थी, अपने से दगा करनेवाले दगाबाज की नहीं।

"हाँ, मैं!" फखरू ने कहा।

फखरूद्दीन यानी मलिक गाजी का दूसरा बेटा। और कैदी का जिगरी-दोस्त किसी जमाने का!

मलिक गाजी वही था, जिसे कैदी ने तातार से बुलाया था। जब कैदी इस कोठरी मे आया तब मलिक गाजी गयासुद्दीन के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा।

"आओ फखरू, आओ! अच्छा हुआ आखिरी मुलाकात के लिए तुम

आए। सल्तनत का जूआ खेलनेवालो के बीच बिरादरी और भाईबन्दी का रिश्ता हो, तब भी धोखेबाजी की मनाई तो नही है।"

फखरू की आँखो मे अब भी कुछ शर्म बाकी थी, वह चुप रह गया।

कैदी ने कहा—सब-कुछ भूल जा दोस्त! तूने आखिरी मुलाकात की याद रखी, इतना ही काफी है।"

फखरू ने रुकते रुकते उत्तर दिया—अब्बाजान तो रजामन्द नहीं थे लेकिन

"सब-कुछ भूल जाओ। मुझे जरा भी अफसोस नहीं है। मैंने कइयो को यहाँ भेजा, फिर मुझे भी यहीं आना पड़ा तो फिक्र कैसा?"

"अजीज! मेरे पास ज्यादा वक्त नहीं है। जल्लाद बाहर खड़ा है।"

"तो क्या तुम यह देखने के लिए आए हो कि आखिरी वक्त तुम्हारे पैरों पड़कर मैं जान की भीख माँगता हूँ या नहीं?"

"नहीं दोस्त, ऐसा नीच खयाल मेरे दिल मे नहीं आया।"

"अच्छा फखरू! मेरा एक काम करेगा?"

"कौन-सा काम?"

"ख्वाबो का जूआ खेलने चला था, जिन्दगी की एक बात भूल गया। आज बस यही एक रंज बाकी है।"

"कहिए, क्या बात है?"

"मेरी एक लड़की है। तू उसकी देख-भाल कर सकेगा? उसके बाप से जो व्यवहार हो रहा है, वह उस तक तो नहीं पहुँचेगा न?"

"खुशरू! एतबार रखो, तुम्हारी उस लड़की की हिफाजत मैं अपनी जान देकर भी करूँगा।"

"तो सुन, देवगिरि मे मलिक रहमान तगी नाम का एक मलिक है। उसका असल नाम परमार तगी है, जाति का वह चमार है, तुर्क बन गया है।"

"क्या वह भी तुम्हारे गुजरात का ही है?"

"हाँ, लेकिन फखरू, जब कि मैं इस दुनिया मे चन्द लहमों का मेहमान हूँ इसलिए मेरा कहा सच मानना कि मलिक रहमान सीधा-सादा आदमी है।

वह खुशरू खॉ के गुजरात का गुजराती नही है। वह सोमनाथ के ब्राह्मणों, खम्भात के जैनो और पाटण के राजपूतों के गुजरात का गुजराती है।"

"मलिक रहमान के बारे मे आपकी गवाही मुझे मञ्जूर है।"

"इसी मलिक की शरण मे है मेरी बेटी। उसका नाम मेहर है। तुम उसकी रक्षा करना।"

फखरू ने वचन दिया।

फिर दोनो दोस्त गले मिले।

फिर जल्लाद आया। और नए सुलतान गयासुद्दीन तुगलक के हुक्म से खुशरू खॉ गुजराती उर्फ सुलतान हिशामुद्दीन का सर दिल्ली के चॉदनी चौक मे धड से अलग कर दिया गया!

फखरू मलिक उलूग खॉ के नाम से देवगिरि का सूबेदार बनकर आया।

उसने रहमान का पता लगाया और मेहर को देखा।

मेहर को देखा और मलिक उलूग मेहर का दीवाना बन गया।

सचमुच मेहर ऐसी ही थी!

तुर्कों का एक तरीका था। हर साल लश्करी मजलिस का जल्सा होता। खेल-कूद और तमाशे होते। शमशीर की प्रतियोगिता मे जो बाजी मार लेता उसे शानेशमशीर का खिताब मिलता, हजारों अशरफियॉ मिलतीं।

एक बार ऐसी ही एक मजलिस मे सुलतान का शाहजादा खुद शाने-शमशीर का दावेदार बनकर मैदान मे उतरा। आज तक ऐसे तमाशो मे शाही या सूबाओं के खानदान का कोई आदमी सामने नहीं आया था, लेकिन आज फखरू उर्फ मलिक उलूग खॉ खुद मैदान मे आया, क्योकि मलिक रहमान के जनानखाने मे मेहर भी दर्शक बनकर बैठी थी।

और मेहर का दिल शाहजादे के प्रति आकर्षित होना चाहिए था, लेकिन न हुआ और उसका दिल गुजरात के सूबेदार मलिक अबुराजी के बेटे गैर-सप्पा बहाउद्दीन की ओर आकर्षित हुआ। क्योकि यही नौजवान तलवार की प्रतियोगिता मे विजयी हुआ था। इसने खुद शाहजादा उलूग खॉ को भी हरा दिया था।

मलिक उलूग की अनुमति हो या न हो, लेकिन गयासुद्दीन तुगलक की

सम्मति पाकर बहाउद्दीन ने मेहर से ब्याह कर लिया था। इसके बाद वह सागर का सूबा बना दिया गया था।

इसके बाद मुहब्बत और विलास के दिन बीतने लगे। अमन और चमन मे चैन को बसी बजने लगी।

मेहर का जीवन सुनहरे सुख से भर गया। गैरसप्पा मामूली योद्धा नही था। इधर मेहर भी कुछ कम खूबसूरत न थी। दोनो के सुख और प्रेम की सीमा न रही।

तथापि उनके सुखी जीवन के आकाश मे सकट का एक काला बादल अवश्य घिरा था। मलिक उलूग खॉ के मन मे मेहर के लिए इश्क की आग अब भी जल रही थी।

उलूग दूसरे मलिको-जैसा न था। वह पढ़ा-लिखा और विद्वान् व्यक्ति था। उसकी बुद्धि असाधारण थी। फुर्सत का समय वह गाने और नाचने-वालियो मे न बिताकर पुस्तकों के बीच बिताता था। जिस इल्म की ओर बढता, उसे हासिल करता, जिस विद्या की ओर दृष्टि जाती, उसकी साधना अवश्य करता। उसकी विद्वत्ता काशी के किसी पडित-जैसी ही बहुमुखी और अगाध थी।

मेहर को भुलाने के लिए वह दिन-रात पुस्तको मे डूबा रहता। उसे भूलने के लिए अपने हरम मे उसने कई सुन्दरियाँ रख ली थीं, लेकिन मेहर के लिए दिल में जो प्यास उठी थी, वह वैसी ही बिनबुझी अपनी जगह बरकरार थी।

कुछ वर्ष बाद।

फिर से तुर्कों के शानेशमशीर का उत्सव आया। यो तो हर साल इस तमाशे और खेल की तैयारियॉ होतीं। लेकिन इस साल पिता की मृत्यु पर मलिक उलूग खॉ 'मुहम्मद तुगलक' के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा था। तख्तनशीन होने पर वह देवगिरि आया था और इसी लिए यह जलसा हो रहा था।

दर्शक-वृन्द मे सन्नाटा छाया था, क्योकि आज सुलतान खुद मैदान मे उतरा था।

सुलतान का चेहरा गम्भीर था और उसकी आँखें चमक रही थीं। उसकी आँखो मे पागलपन लाल लहू बनकर तैर आया था।

मैदान मे आते ही सुलतान मुहम्मद तुगलक ने गैरसप्पा बहाउद्दीन को पुकारा—गैरसप्पा, आज उस दिन की अधूरी बात पूरी होगी।

"अधूरी? कोई बात अधूरी नही है, सरकार।" गैरसप्पा ने कहा, "उस दिन की बात अलग थी। आज की बात अलग है। आज आप मेरे सुलतान है और मै आपका ताबेदार हूँ। अगर आपको शानेशमशीर के खिताब की जरूरत हो तो मै उसे कदमो मे पेश करता हूँ। आज सात सालो से मैने आपके लिए सँभालकर रखा है।"

सिपाही, मलिक अमीर, खान और पर्दे मे बैठी खानदानो की बेटियाँ और बाँदियाँ सब देखती-सुनती रह गयी। सब के सुनते-देखते सुलतान ने गैरसप्पा से कहा—शानेशमशीर की ताकत और इल्म का सही आधार उसका दाहिना अँगूठा है। शाही खानदान के हम दोनो बेटे आज तलवार न मिला-कर सिर्फ दाहिना अँगूठा ही मिलायेंगे।

गैरसप्पा बहाउद्दीन के चेहरे पर मानो कालिख पुत गई और शरीर मे कँपकँपी छा गई। पर्दे मे बैठी मेहर भी काँप उठी।

गैरसप्पा को जवाब देने का मौका न देकर सुलतान ने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। और सबके देखते ऊँचा उठा दिया, फिर दाहिना अँगूठा पकड़कर खीच लिया।

और दर्शको को देखकर विस्मय हुआ कि अँगूठा गैरसप्पा के पजे से छूटकर सुलतान के हाथ मे आ गया है।

अब गैरसप्पा के काटो तो खून नही। उसका चेहरा काला पड गया। उधर शामियाने मे मेहर बेहोश होकर गिर पड़ी।

सुलतान मुहम्मद तुगलक ने अँगूठा इस तरह ऊँचा उठाया कि सब लोग देख सके और जोर से कहा—मलिक रहमान!

मलिक रहमान तगी पास आया। ताजीम देकर खड़ा रहा।

"मलिक रहमान, तुर्की फौज की जगी काबिलियत, शानेशमशीर की शान और शाही खानदान की इज्जत, तीनों को दरमियान रखकर आप यह बता-

इए कि गैरसप्पा का दाहिना अँगूठा कहाँ गया ? कैसे गया ? और यह नकली अँगूठा कैसे लगाया गया ? और कब से शानेशमशीर की शान पर बट्टा लगाया गया ?"

घायल हिरन की तरह गैरसप्पा मलिक रहमान को देखने लगा और पल-भर के लिए, मलिक रहमान उसकी दर्द और उलहना-भरी आँखो से आँखे न मिला सका।

"आलिजाह ! मैंने सुना था कि गैरसप्पा बहाउद्दीन शानेशमशीर है, लेकिन तुगभद्रा के उस पार काफिरो मे हमारे शानेशमशीर की हँसी उड़ाई जा रही है। और इतना ही नही खुद सुलतान सलामत की नजरेइनायत की भी मजाक उडाई जा रही है।"

"किस लिए ?"

"हुजूर, मैंने सुना कि गैरसप्पा बहाउद्दीन ने काफिरो के जगसालार राय हरिहर से शमशीर का द्वन्द्व लड़ा था, लेकिन उस द्वन्द्व यानी मुकाबिले मे उस काफिर ने गैरसप्पा को हरा दिया और दाहिने अँगूठे के समेत इसकी तलवार हवा मे उड़ा दी।"

"फिर।"

"गरीबपरवर, मैंने इस बात पर यकीन नहीं किया, क्योंकि तुर्कों का सबसे बाहोश और काबिल मलिक एक काफिर से कैसे हार सकता है। लेकिन पता चला कि जरूर यह घटना घटी है और काफिरो के मुल्क और उनकी फौज मे इसकी और आपकी हँसी हो रही है।"

"फिर ?"

"फिर मैंने खानगी तौर पर जाँच करवाई तो पूरा सबूत मिला। गैर-सप्पा का दाहिना अँगूठा नकली है इस तफतीश पर मैंने सारा हाल दिल्ली भेज दिया।"

सुलतान का चेहरा ऐसा हो गया, जैसे दोपहर मे सूरज की गरमी से ताँबे का घडा तप रहा हो !

दर्शक चकित रह गए ! तुर्कों का शानेशमशीर एक काफिर से हार जाय ! और इस बात को सात-सात साल तक छिपाकर रखे। तुगभद्रा के उस पार

आज काफिरो मे जो हलचल हो रही है वह सिर्फ इसी लिए कि अगर उनका राय तुर्कों के शानेशमशीर को हरा सकता है तो क्यो न उनकी फौज तुर्की फौज को हरा सकती है। हालाँकि आज दो सौ सालो से यह बात न बनी, किन्तु एक दिन ऐसा भी हो सकता है।

सुलतान का प्रकोप उचित था। हार हुई और उस हार को सात बरसो तक छिपाकर रखा—यही सबसे बडा अपराध है। अगर मलिक रहमान को इस दुर्घटना की खबर न मिलती तो न जाने कब तक यह राज छिपा रह जाता और एक-न-एक दिन शाही फौज का मुँह काला हो जाता।

सुलतान ने हुक्म दिया—मेहर को हाजिर किया जाए।

"जी हुजूर! मेहरबानू पर्दे मे ..."

"गुनहगारो का पर्दा नहीं होता। पेश हो हमारे रूबरू।"

आधी बेसुध और भय से काँपती मेहर को हाजिर किया गया।

"मेहरबानू!" सुलतान ने अपना रोष और अपनी वाणी को वश मे रखने का प्रयत्न करते हुए कहा, "मेहरबानू! क्या तुम्हे अपने खाविन्द की बेइज्जती की खबर थी? खबर होनी तो चाहिए? कोई खाविन्द अपना कटा हुआ अँगूठा अपनी बीवी से सात साल तक छिपाकर कहीं रख सकता।"

थर-थर काँपती वह नारी चुपचाप खड़ी रह गई!

"और इस तरह के एक मक्कार आदमी के लिए, मेहर, तूने मुझे ... मुझे शाहेहिन्द यहाँ मौजूद है। काजी भी यहीं हाजिर है। अगर तुझे तलाक चाहिए, तो मिल सकता है इसी वक्त ..." और बहुत धीमे शब्दों में कहा, "शाही हरम तेरी राह देख रहा है, मेहर!"

मेहर ने सिर हिलाकर अस्वीकार किया और सुलतान से नजरें मिलाकर दृढ वाणी मे कहने लगी—मेरा खाविन्द शानेशमशीर है और पिछले सात सालों मे कोई तुर्की मलिक या शाहजादा उन्हे हराकर यह उपाधि उनसे नहीं ले सका! आज भी नहीं ले सकता! और एक दुर्घटना पर मेरे खाविन्द से कोई भूल या गुनाह हुआ है तो उसकी माफी मिलनी चाहिए। और गुनाह उनसे ज्यादा मेरा है, क्योकि मैंने ही नकली अँगूठा तैयार किया था और

जख्म भर दिया था। सुलतान मेरे खाविन्द को जो सजा देना चाहे वही मुझे भी मिले, उससे ज्यादा मिले।

क्षण-भर के लिए सुलतान को अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। वह स्तब्ध खडा रह गया। धीरे-धीरे उसके चेहरे पर धुँधला लाल रग पथराने लगा और उसकी आँखो से आतिश की चिनगारियाँ इस तरह निकलने लगी, जिस तरह सोये हुए पहाड से एकाएक ज्वालामुखी फूट पड़ता है। नर-भक्षी चीते की तरह उसका चेहरा भीषण हो गया। उसने हुक्म दिया—ले जाओ, इन दोनो को तहखानों मे बन्द कर दो। कल सुबह हमारे महल के सामने हाथी के पैरों के नीचे इन्हे कुचला जाएगा।

सुलतान के महल के सामने अपराधियों को दण्ड-हस्ति के पैरों-तले दण्ड दिया जाता था। और लोग कहा करते थे कि अपराधी की सिफारिश करने-वाले और उसकी तरफ बोलनेवाले को भी वही सजा दी जाती थी।

सुलतान लौट गया और दर्शक भी धीरे-धीरे लौट गए।

गैरसप्पा और मेहर को जेलखाने मे डाल दिया गया।

आधी रात होने पर सुलतान मुहम्मद बन्दीगृह मे आया। उसका चेहरा सफेद और आँखें लाल थीं। पेशानी पर बल पड़े हुए थे। एक ही दिन मे वह बरसों का बूढा नजर आता था!

सुलतान अकेला था। एकदम अकेला था। अपनी रात्रि की पोशाक मे था। ऐसा लगता था मानो उसकी दृष्टि अन्तर मे गहरी उतर गई है। गला बैठ गया था।

धीरे धीरे काँपते हाथो उसने बन्दीगृह का द्वार खोला और भीतर प्रवेश किया। सीधा वह मेहर के सामने जाकर खड़ा हो गया। मेहर सोने का प्रयत्न कर रही थी। सुलतान को देखकर एकदम खड़ी हो गई।

सुलतान मेहर को देखता रहा। नख से शिख तक उसके खिले हुए यौवन को अपनी नज़रों से पीता रहा। फिर धीमे स्वर मे कहा—मेहर, मैं तुझे सजा नहीं दे सकता। तू जा, चली जा।

मेहर गैरसप्पा की ओर उँगली उठाकर मौन खडी रह गई, जैसे वह प्रश्न पूछ रही थी।

"सच है मेहर, फखरू के बिना तू रह सकती है, उलूग के बिना रह सकती है, मुहम्मद के बिना भी रह सकती है, लेकिन गैरसप्पा के बिना नहीं रह सकती। ठीक है, उसे भी अपने साथ ले जा।"

गैरसप्पा की ओर देखकर मुहम्मद ने कहा—तू भी जा, लेकिन एक बात याद रखना। सुलतान मुहम्मद के खौफ से बचने के लिए तेरे पास एक ही ढाल है—जिस दिन यह ढाल—यह मेहर तेरे पास नहीं रहेगी उस दिन मैं तुझे सातवें पाताल से भी खोजकर मँगवा लूँगा—और तेरी चमडी उतरवा लूँगा।

गैरसप्पा चुपचाप खड़ा सुनता रहा।

फिर सुलतान ने वक्र हँसी हँसते हुए कहा—तुझे लग रहा है कि यदि इस वक्त तेरे पास हथियार होता तो तू सुलतान से अपना हिसाब चुकता कर लेता, तो ले यह खजर। मेहर के सामने सुलतान इसे काम मे नहीं ला सकता। यदि तुझमे हिम्मत हो तो मुझे मार डाल ताकि तेरी और मेरी मुसीबत टल जाय!

मेहर के मुँह से चीख निकली और गैरसप्पा के चेहरे का रग उड गया। मेहर ने झट से अपने पति के हाथ से खजर छीन लिया और उसे सुलतान के सामने फेंककर बोली—चलिए, हम किसी के लहू से अपने हाथ रँगना नहीं चाहते।

गैरसप्पा और मेहर बाहर निकल गए। बाहर एक घोड़ा खड़ा था। गैरसप्पा ने मेहर को अपने साथ बिठा लिया।

सुलतान का चोर भाग निकला है, इस खबर को फैलते विलम्ब नहीं लगेगा। ऐसी खबरें हवा से भी तेज गति से आगे और आगे दौड़ती हैं। और गैरसप्पा की खबर भी उससे आगे और आगे दौडती गई।

दूर और नजदीक के सभी किलों, छावनियों मे गैरसप्पा और मेहर ने शरण माँगी, लेकिन कहीं शरण नहीं मिली। सब लोग मुहम्मद-तुगलक के भयकर स्वभाव से परिचित थे। सज्जनता और दुर्जनता, समझदारी और

पागलपन के मानव-सुलभ दुर्गुण और सद्गुण इस प्रकार मुहम्मद के मन मे, आपस मे, टकराते थे कि कब क्या हो, इसका कोई अनुमान नहीं लगा सकता था।

गैरसप्पा को कहीं आश्रय न मिला। खुद उसकी सूबेदारी के प्रान्त सागर मे भी कोई उसे रखने को तैयार न था। यहाँ तक कि मेहर का पालक पिता रहमान मलिक और गैरसप्पा का बाप, गुजरात का सूबेदार मलिक अबु भी उसे रखने को तैयार न था।

लौट जाने के लिए भी गैरसप्पा के पास कोई उपाय और मार्ग न था। दिल्ली मे, काफिर से हारे हुए शानेशमशीर के लिए किसी के दिल मे जगह नहीं हो सकती थी।

कलिंग के गणपति गण तो आधे सनकी और विद्रोही थे ही, लेकिन वे भी सुलतान मुहम्मद तुग़लक से डरते थे।

इस प्रकार भटकते-भटकते गैरसप्पा और मेहर इस किरात देश मे आ पहुँचे। यहाँ भी उन्हे आश्रय मिलने की पूर्णाशा तो नहीं थी।

किरातराज शम्बूरराय इस वन-राज्य के अट्ठारह दुर्गों का स्वामी था। छोटी-बड़ी टेकरियो पर उसके छोटे बडे कई दुर्ग थे। जब तक मुसाफिर उनके एकदम निकट न पहुँच जाता, तब तक उसे गन्ध भी नहीं मिल पाती कि यहाँ कोई टेकरी हो सकती है और कोई दुर्ग भी हो सकता है। इतना प्रगाढ था वह वन!

ऐसे ही एक दुर्ग का नाम था मारुतगढ़।

मारुतगढ के दुर्ग मे किरातराज अपने किरातो के साथ बैठे थे। और रामवट के नीचे दोनो बन्दी खडे थे।

तुरुष्क नारी ने अपनी कथा कही और कथा कहकर वह वहीं खडी रह गई। पुराने हाथीदाँत को जैसे दूध से धो दिया हो, ऐसा उसकी त्वचा का सुन्दर चम्पकवर्ण किरातो की श्याम-सृष्टि मे अजब छटा दिखा रहा था। उसका रग-रूप देखकर यह लगता था कि वह कदापि चमार की बेटी नहीं है। वह तो राजा के रनिवास की सुन्दरी राजकुँवरी-सी प्रतीत होती थी, जैसे नभ से अप्सरा उतरी हो। कीचड में प्रकटित श्वेतकमल-नाल-सी सहज कम्पिता,

सहज आतुरा और सहज उत्कंठिता—वह शोभा दे रही थी।

उसकी प्रेम और पागलपन की कथा सुनकर किरात भी कुछ देर के लिए मूक और मूढवत् खडे रह गए।

वनवासी वसन्त मे जैसे प्राणो का प्राकट्य हुआ हो, ऐसी थी यह नारी, जिसके रूप के जादू के पीछे खुद सुलतान मुहम्मद तुगलक दीवाना था। जिसके यौवन से विमोहित सुलतान ने खुद अपने ही हुक्म को भग किया था—ऐसी थी यह नारी, जिसकी छवि दर्शक को मुग्ध कर देती है, जिसकी कान्ति सारे वन को प्रकाशित कर देती है। यदि वह सोच ले तो हजारो बाँदियो के बीच मे रहे। हीरे और जवाहिरातो से उसका सिंगार हो। वह चाहे तो सुलतान को अपनी उँगलियो पर नचाये। ऐसी इस नारी ने ऐसे रूखे और बेढगे तुर्क मे क्या देखा कि उसके पीछे वन-वन और जगल-जगल भटक रही थी!

अचानक किसी ने इस मौन को भग किया। जैसे नीद मे चौका हो इस तरह किरातराज ने सिर उठाकर देखा।

गगू महाराज बोला—मूर्ख, औरत की अक्ल!

"क्या कहा, महाराज?" किरातराज ने पूछा, "कौन मूर्ख?"

'सभी मूर्ख है—सुलतान मूर्ख, यह लडकी मूर्ख और किरातराज आप भी मूर्ख!'

किरातराज ने भौहे चढाकर पूछा—मैं मूर्ख?

"हाँ वरना सोच-विचार की क्या आवश्यकता थी?"

"कैसा सोच-विचार?"

"इशारे मे नही समझते?"

"नहीं समझा।"

"इस लडकी को पकडकर बिठा लो अपने घर मे।"

"लेकिन इसका खाविन्द?"

"अरे, खाविन्द को सीमा से बाहर निकाल दो। किरातराज को सुलतान से क्या डर?"

धीरे-धीरे किरातराज का चेहरा चमक उठा—अरे महाराज, आप बड़े निर्भय और बुद्धिमान है। अरे, कौन है रे?

"जी !"

"ले जाओ इस औरत को और इस तुर्क को भी।" इसके बाद किरात-राज ने ब्राह्मण से कहा, "नही महाराज, इसे बाहर निकाल देने की आपकी बात ठीक नहीं है। इसे तो दुर्ग की ऊँची खिडकी से फेंक देना चाहिए।"

"फेंका जा सकता है, किन्तु आपने इस औरत की बात ध्यान से नहीं सुनी?"

"सुनी है—यह मर्द इसका शौहर है। अपने शौहर के लिए इसके दिल मे जगह है। खैर, हमे इससे क्या? हमे तो शौहर का कॉटा निकाल देना चाहिए।"

"नहीं किरातराज। इसी लिए तो मैंने कहा कि आपने इस औरत की बात ध्यान से नहीं सुनी। सुनिए, सुलतान मुहम्मद ने इस तुर्क से कहा है कि जब यह औरत तेरे पास नहीं होगी तब मैं मेरे और तेरे बीच के हिसाब के चुकाने के लिए आऊँगा।"

"यानी?"

"यानी, इसे यहाँ से निकालकर बाहर कर दीजिए और काम्पिली की सीमा मे छुडवा दीजिए। काम्पिली का राजा बडा स्वाभिमानी है, इसलिए वह इसे शरण देगा। तभी सुलतान मुहम्मद इस तुर्क को पकड़ने के लिए काम्पिली जायेगा और इस तरह हमारे मार्ग मे से काम्पिलीदेव का काँटा भी दूर हो जायेगा। काँटे से काँटा निकल जायेगा।"

जिस प्रकार गहरे अन्धकार मे से एकदम प्रकाश मे आते है और आँखें चौंधिया जाती है उसी प्रकार कुछ देर के लिए विस्मय के वशीभूत किरात-राज स्तब्ध रह गया।

ब्राह्मण सो ब्राह्मण और किरात सो किरात! किरातराज दौड़कर गंगू महाराज के सामने खड़ा हो गया—काँटे से काँटा कट जाय! फिर तुर्क भी नष्ट हो और सुलतान भी! वाह महाराज! और यह लड़की मुझे मिल जाय। अब मैं तुम्हे यहाँ से जाने नहीं दूँगा। मेरे अट्ठारह दुर्गों मे से एक दुर्ग अपनी पसन्द से चुनकर रख लो और दासियो मे से भी अपनी पसन्द की दासी चुन लो।

"अरे किरातराज, मैंने तो कहा न कि मैं ब्राह्मण नहीं ब्रह्मराक्षस हूँ।"

"यह तो हमने भी देख लिया है, महाराज। ब्रह्मराक्षस न हो तो किसी ब्राह्मण को ऐसी दृष्टि नही मिल सकती। लेकिन हमे भी ब्राह्मण से काम नहीं, ब्रह्मराक्षस से ही है।"

"किरातराज, आपको मालूम है कि मैं सिर्फ अपना बदला लेने के लिए जिन्दा हूँ। दूसरा कोई काम नहीं है।"

"वाह महाराज! मैं तो अपनी आँखों के सामने काम्पिली नगरी को जलती हुई देख रहा हूँ। और अभी आपने किरातो को नहीं देखा है। जिस समय सुलतान काम्पिली पर हमला करेगा उस समय अगर मैं काम्पिली देव का सिर भाले पर चढाकर आपके पास न ले आऊँ तो मुझे किरातराज मत कहना। मेरा वैर भी आपके वैर मे ही शामिल है।"

गगू महाराज के चेहरे पर मुस्कराहट छा गई। उसकी भयकरता से किरातराज की भयकरता भी क्षीण पड गई।

"आपका भाग्य बुलन्द है, किरातराज!" गंगू महाराज ने कहा, "और उतनी ही बुलन्द तकदीर है तुम्हारी इस नई रानी की। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह तुर्क इसकी मृत्यु के बाद भी जीवित रहेगा। कोई इसे यहाँ से ले जाओ, दूर ले जाओ।"

गैरसप्पा पागल आदमी की तरह चुप बैठा सुनता था। उसके चेहरे से ऐसा लगता था जैसे उसने बहुत-सी बातें नहीं सुनी हैं।

गैरसप्पा ने बडी मुश्किल मजिले पार की थीं। दुर्गम मार्ग पार किये थे। दिल मे कई घाव झेले थे। जब से मलिक रहमान-जैसे अमीर ने उसे धोखा दिया, तब से आज तक कि घटनाएँ उसके कान मे घनघोर घटे बजा रही थी।

उसका अपना बाप उसे पकड़कर सुलतान को सौप देना चाहता था। उसकी मा ने इन सारी मुसीबतों की जड़ के समान मेहर को जहर देने की कोशिश की थी। उसके दोस्तों ने उसके साथ दगा किया था। खुद उसकी सूबेदारी के दरवाजे उसके खिलाफ बन्द हो गए थे। उसने बहुत दौड-धूप की, मगर उसका अन्त यही आया कि किरातराज के फन्दे मे पड़ गया और मेहर भी किरातराज के हाथ मे आ गई।

सोच और फिक्र के मारे गैरसप्पा का सिर फटने लगा। तभी लपककर उसने एक किरात के हाथ से भाला छीन लिया और गगू महाराज की ओर चलाया, लेकिन गगू महाराज ने बड़ी चतुराई और चपलता दिखलाई और एक ओर खिसक गया। इतना ही नही उसने जाते-जाते गैरसप्पा के पैरों मे अपना पैर डालकर उसे जमीन पर गिरा दिया। उसी वक्त बीस-पच्चीस किरात गैरसप्पा पर टूट पडे।

गगू महाराज ने हँसकर कहा—गैरसप्पा, मैं देवगिरि का कोई मामूली गुलाम नहीं हूँ। मेरा नाम है गगू महाराज। किरातो, ले जाओ इसे।

उसी समय चीत्कारकर मेहर धरती पर गिर पडी। किरातराज के इशारे पर कुछ दासियाँ आई और उठाकर उसे ले गई। किरातराज के सिपाही गैरसप्पा को पकड़कर काम्पिली की सीमा की ओर चल पडे।

११ काला नाग

किंवदन्ती थी कि किष्किन्धा मे सुग्रीव के वानर-शासन मे अट्ठारह मुख्य सामन्त थे। उनमे से प्रत्येक एक-एक दुर्ग मे रहता था। और इनमे से जिस दुर्ग मे हनुमान रहते थे उसका नाम मारुतगढ था।

कथा-काल मे किरातराज इन दुर्गों का स्वामी था और मारुतगढ उसका प्रमुख दुर्ग था।

दुर्ग मे घास-फूस और बाँस के बने कई मकान थे, जिनमे किरातराज के सहचर, अनुचर और परिचर रहते थे।

वहीं एक सुदृढ पाषाण-गृह था, जिसमे किरातराज स्वय रहता था।

एक रात, दूसरे गृहो की तरह यह पाषाण-गृह भी अन्धकार मे डूबा हुआ था। उसके एक कक्ष मे मन्द दीपक जल रहा था। उस दीपक का प्रकाश अंधकार से सघर्ष कर रहा था, लेकिन दोनो मे से किसी की जीत निश्चित नही हुई थी। प्रकाश अँधेरे से कुछ कम न था और अँधेरा भी प्रकाश जितना ही था। अष्टमी के चन्द्र की चाँदनी-जैसा प्रकाश कक्ष मे मानो जय-पराजय के बीच सघर्ष-रत योद्धा के समान जूझ रहा था। कक्ष मे प्रकाश थर्रा रहा था या अन्धकार काँप रहा था, यह अनिश्चित था।

भगवान् रामचन्द्र और सती सीता की पदरज से पवित्र वन-प्रदेश की वन-कन्या के समान, किंकर्त्तव्यविमूढ-सी मेहर हथेली पर चिबुक धरे पलग पर बैठी थी। उसकी आँखे खुली थीं फिर भी मानो वह कुछ न देखती हो, इस तरह खामोश बैठी थी, मानो दूर के किसी पथिक के चरण-चिह्न पर उसकी नजरें टिकी हों। उसके दु खी चेहरे पर चम्पा के फूल-जैसे कानो मे दूर-दूर के प्रवासी अपने प्रियतम के पदचाप की झकार गूँज रही और मानो इस झकार के पीछे-पीछे वह अपनी नजरे उठा रही थी। इस तरह वह शान्त स्थिर बैठी थी।

उधर किरातराज के सिपाही अपने शिकार को एक भयकर राज्य की सीमा मे धकेल देने के लिए रातोरात वनान्तर की मजिले पार कर रहे थे और जैसे उनकी पदचाप मेहर के कानो मे गूँज रही थी। और उसकी नजरो मे जैसे सम्पूर्ण चित्र उपस्थित था। उसके हृदय मे निराशा की असह्य अग्नि जल रही थी। मानो वह हीरो से जडे हुए, लाल मखमल से शोभित सुनहरे पलग पर न बैठी हो वरन् जलती चिता पर बैठी हो।

इस समय उसकी आँखे देखते हुए भी जैसे कुछ नही देख रही थी। वरना इस कक्ष मे कई प्रदर्शनीय पदार्थ थे। चीन देश के चीनाशुक के पर्दे लहरा रहे थे। एक कोने मे सोने और जवाहरात से बना हुआ जल-पात्र रखा था। यह किसी बडे राजा अथवा अमीर की बारात किरातराज द्वारा लूटे जाने की निशानी थी और उसकी शक्ति का प्रतीक भी।

तुर्क लोग एक ऐसा कीमिया जानते थे जिससे एक पात्र मे खास मसाले का दीपक जला देने पर, उस दीपक की बाती कभी बुझती न थी और रोशनी के साथ सुगन्ध भी फैल जाती थी। इस दीपक का उपयोग कुछ प्रतिष्ठित व्यक्ति ही कर सकते थे, ऐसा तुर्कों का हुक्म था। यह दीपक रात-दिन जलता रहने पर भी छ.-छ. महीने तक जलता रह सकता था। इस दीपक का मसाला किन चीजो से बनता है, बत्ती किस चीज से बनती है आदि भेद तो कुछ खास हकीम और इल्मी ही जानते थे।

किरातराज के इस कक्ष मे, रत्नजटित पात्र मे ऐसा ही एक दीपक जल रहा था। और जलते-जलते जैसे गवाही दे रहा था कि किरातराज के हाथ कितने लम्बे है!

पूरा कमरा हिरनों के चर्म से मढ़ी हुई किनारियोंवाले, व्याघ्रचर्म से सजा हुआ था। यह इस बात का द्योतक था कि इस एक कमरे के फर्श की सजावट के लिए किरातराज ने कितने बाघ और हिरनों की हत्या की होगी। कीनख्वाब के बने हुए तकियों मे आक की रुई भरी गई थी। और ऐसे कुछ तकिए फर्श पर पडे थे। ये भी जैसे किरातराज के वैभव-विलास के साक्षी थे।

पलग इतना मूल्यवान और सुन्दर था, मानो किसी नवोढ़ा राजकन्या के दहेज के लिए किसी राजवशी ने बनवाया हो। साराश मे यह पलग किसी राजा के राजसिंहासन से कम न था।

लोक मे कथा प्रचलित थी कि अहिच्छत्र के नगरश्रेष्ठि गोमट सेट्टिय ने इसे अपनी देखरेख मे चीन देश मे तैयार करवाया था और कर्नाटक के राजा बीर बल्लाल तृतीय को भेंट किया था। राजा के यहाँ से यह कलियुगी कालयवन के हाथ मे गया। जब कालयवन को मारकर खुशरू खाँ गुजराती ने उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली तब यह पलग भी खुशरू खाँ उर्फ सुलतान हिसामुद्दीन के पास गया। और इसी प्रकार एक से दूसरे के हाथ मे जाता और निकलता हुआ किरातराज के पास पहुँच गया।

मेहर नजरकैद थी, लेकिन किस लिए कैद थी, यह समझ न सके इतनी नादान वह न थी। उसके मन मे अपने पति की चिन्ता थी, जो प्रतिपल काम्पिलीदेव की सीमा की ओर खदेडा जा रहा था। वहाँ पहुँचने पर उसकी क्या दुर्गति होगी!

इस समय दूसरा कुछ देखने के लिए मेहर के पास आँखे नहीं थीं और दूसरा कुछ सुनने के लिए कान भी नहीं थे। उसका मन उन सब कठोर कहानियों का स्मरण कर रहा था, जो उसने काम्पिलीदेव के दण्ड-हस्ति के विषय मे सुनी थीं।

जिस शिला पर बैठकर सती सीता सदैव तुगभद्रा मे स्नान करती थीं, जिस पर बैठकर अगदराय ने अपना शेष जीवन कठिन तपस्या मे व्यतीत किया था, उसी शिला को आज काम्पिली मे वधस्थल के रूप मे काम मे लिया जाता था। उसी शिला पर गैरसप्पा को भी सुलाया जाएगा और तब दण्ड-हस्ति

उस पर पाँव रख देगा। एक भयकर चीत्कार, धीमी आवाज और उसके स्वामी का शरीर

—इस भयकर चित्र की कल्पना से मेहर की निगाहे फटी रह गइ। और जैसे उसके पति की चीत्कार उसके कानों मे गूँज उठी। शेष कुछ सुनने या देखने के लिए इस समय उसके पास न कान थे और न आँखें ही।

मेहर पलग पर इस तरह स्तब्ध बैठी थी मानो पुराने हाथी-दाँत की पुतली रखी हो।

इसलिए उसने किरातराज की शक्ति के प्रतीक न देखे, उसके वैभव की विभा न देखी। उसके हाथ की पहुँच न देखी और न देखी उसकी लूट की सर्वव्यापकता!

मेहर को यह भी ध्यान न था कि कब दरवाजा खुला और कब एक भयकर व्यक्ति भीतर आया। उसने यह भी न देखा कि वह व्यक्ति अपने कठोर चेहरे को कोमलतर बनाने का प्रयत्न कर रहा था।

जब उस व्यक्ति ने देखा कि मेहर तो उसकी ओर नजर तक नहीं उठाती तो वह आगे बढ़ा और दीपक की मन्द रोशनी मे मेहर के रूप की छबीली छटा देखता रह गया। और उसकी आँख मे शिकारी की लालसा झलक उठी।

उसने मेहर के कन्धे पर अपना भारी हाथ रखकर कहा—रानी!

मेहर अपनी विचार-तन्द्रा से जगी। उसने अपने कन्धे से परपुरुष का यह हाथ झटक दिया। उठकर एक ओर खड़ी हो गई।

कौन? किरातराज?"

"हाँ, और किसकी ताकत है कि मेरी रानी के रनिवास मे कदम रखे!"

मेहर चुप रही। उसकी निराशा पर किरातराज की अहम्मन्यता का कोई प्रभाव न पड़ा।

किरातराज बोला—मेरी रानी, तू निर्जन वन की कँटीली राहों पर चलने के लिए पैदा नहीं हुई है। तूने तो किसी सूरमा सिंह की जवानी को धन्य बनाने के लिए जन्म लिया है।

किरातराज आगे बढा, पलग पर बैठा। अजगर के फन की तरह अपना

लम्बा हाथ उसने मेहर की ओर बढ़ाया और मेहर को अपनी ओर खीच लिया जैसे किसी कुम्हार के फावडे मे गीली मिट्टी खिंची चली आ रही हो, उस प्रकार मेहर खिंच गई ।

अब तो किरातराज ने अपना प्रेम-निवेदन प्रकरण प्रारम्भ किया—रानी, कुछ तो कहो । आज से यह किरातराज तुम्हारा सेवक है । ससार मे ऐसी कोई चीज नही, जिसे लूटकर किरातराज तेरे लिए न ला सके । तू तो सिर्फ हुक्म दे, तू कहे तो दिल्ली के सुलतान को बन्दी बनाकर तेरे सामने खडा कर दूँ, तू कहे तो कर्नाटक के महाकर्णाधिप या महामडलेश्वर को तेरे सामने खडा कर दूँ अरे, मैं तेरे लिए आकाश के तारे तोड़ कर ला दूँ मै, सूरज को निगलने के लिए उछलनेवाले महावीर बजरगबली हनुमान का वशज हूँ । मैं क्या नही कर सकता ?”

मिट्टी के पिड-सी निर्जीव मेहर के चेहरे पर यह सुनकर हँसी छा गई ।

किरातराज ने पूछा—तू क्यो हँसी ?

मेहर को चुप देखकर उसने फिर पूछा—तू क्यों हँसी ? यदि तू मुझे बता दे तो मै वही बात फिर कहूँ कि तू फिर से हँसे ।

“आप कहते है, आप हनुमान के वशज है, इस पर मुझे हँसी आती है ।”

“इसमे हँसने की क्या बात ? हमारे योगी, पुरोहित और भाट—सभी कहते है कि हमारे पूर्वज हनुमान है । उन्होने ही इस दुर्ग को बसाया था और हम उन्हीं की सन्तान है । क्या तुझे इस पर यकीन नही ?”

“मैं मानती हूँ । और इसी कारण हँस रही हूँ ।” सर्वथा भावहीन वाणी मे वह बोली ।

“परन्तु इसमे हँसने की क्या बात है ?”

“बेचारे हनुमानजी तो बाल-ब्रह्मचारी थे ! पुराण, शास्त्र, कथा इत्यादि किसी मे भी हनुमानजी की पत्नी का उल्लेख नहीं किया गया है ।”

“ठीक है कि उनकी पत्नी नहीं थी । वे तो पूर्ण ब्रह्मचारी थे ।”

“तो फिर उनकी सन्तान कहाँ से हो सकती है ? उनका वश कैसे हो सकता है ? यदि हो तो वर्णसकर होगा !” मेहर के मुख पर तिरस्कार की रेखाएँ उभर आई थीं ।

किरातराज का क्रोध बढ़ गया। उसकी आँखे लाल हो गई। उसने कहा—क्या कहा ?

"जो कुछ तुमने कहा वही, यदि आपको मेरा बोलना अच्छा नहीं लगता तो नहीं बोलूँ।"

"इस बात को छोड दो। इस समय हमे अपने बाप-दादे की बात नहीं करनी चाहिए, बाप-दादे की बात करनी हो तो, तू तो नीच कुल की है, परन्तु इसका मुझे थोडा भी दुःख नही है। अब तो तू मेरी है—बस, मैं तो अब यही समझता हूँ। इन सब बातो को छोड़ दे। हमे तो अपनी ही बाते करनी चाहिए।"

मेहर चुप रही। जिस प्रकार कछुआ अपने अगो को सिकोड़ता है तो उसकी केवल ढाल दिखती है उसी प्रकार मेहर का चेहरा फिर से भावहीन हो गया।

"मेरी रानी! अब तुझे कोई भय नहीं। भय तो अलग रहा, भय का भगवान भैरव भी मारुतगढ के द्वार से लौट जाता है।"

किरातराज खड़ा हो गया।

"मेहर! अब तू सब भूल जा। तू भी मौज कर और मुझे भी मौज करने दे! मैं राजा, तू रानी—इस जगत् मे इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सत्य नही! यही तू समझ।" किरातराज ने अपनी जेब से दो कुडल निकालकर आगे बढाये, "ले, यही है तेरा इनाम!"

ये कुडल गैरसप्पा बहाउद्दीन के कान मे से निकाले गए थे। इसके पिछले भाग मे थोडा रक्त लगा था। मेहर की आँख उस रक्तवाले भाग पर स्थिर हो गई। उसके हृदय मे इतनी निराशा छाई थी कि तनिक भावना का भी सचार न हुआ।

"अरे हाँ!" जिस प्रकार भूल सुधार लेने की जल्दी मे हो इस प्रकार की वाणी से किरातराज ने कहा, "ये तो उसके कान मे से निकलते ही न थे, अतः बाद मे कान खींचकर निकाल लिये गये। इन्हे साफ किया गया तो भी थोड़ा रक्त लगा रह ही गया! क्या तू इतने-से रक्त को देखकर घबरा गई?"

मेहर ने दीर्घ निःश्वास लिया।

किरातराज बेचैन हो उठा। अपने क्रोध को दबाते हुए वह बोला—मैं तुझे बार-बार पुकार रहा हूँ तो भी तू बोलती नही! अब तो तुझे न भय है और न चिन्ता है। अब तो तू एक शूरवीर योद्धा की रानी है। तो तू बोलती क्यो नहीं?

किरातराज ने मेहर का हाथ पकड लिया। इस पर मेहर ने कोई आपत्ति नहीं की। उसने मेहर को अपनी ओर खीच लिया। इस पर भी उसने कोई आपत्ति नहीं की। किरातराज ने नीचे झुककर अपने होठो से उसके गालो का स्पर्श किया। परन्तु वह एकदम पीछे हट गया। मानो उसने मनुष्य को नही मिट्टी के पुतले को छुआ हो!

"तू जीवित है या मृत?"

कोई जवाब न मिला।

अब किरातराज अत्यन्त क्रोधित हो उठा—अरे, तेरे मन मे मेरे लिए कोई मान नहीं? तेरे-जैसी मुझे बहुत मिलती है। तुझे मैं पुकारता हूँ, खुशामद करता हूँ तो क्या मैं घास काट रहा हूँ?'

इतने पर भी उस मिट्टी की पुतली पर कोई प्रभाव नहीं हुआ।

अब किरातराज ने मेहर की गर्दन को पीछे से पकड़कर झकझोरा।

"किरातराज को जीवित मुर्दे नहीं चाहिए। मै तो चाहता था कि तेरे पति को कुछ भी हो, कम-से-कम तुझे तो किसी प्रकार बचा लूँ। परन्तु तुझे तुझे मेरे लिए कोई आदर-मान नहीं"

मेहर दरवाजे के बाहर गिर पड़ी और एक शब्द भी उसके मुँह से न निकला, और न गिरने पर वह हिली-डुली। किरातराज ने उसे जिस प्रकार फेंका था उसी प्रकार वह पड़ी रही। उसके अगले होठ मे से रक्त निकल रहा था परन्तु उसे उसका तनिक भी ध्यान न था।

किरातराज आगे बढ़ा और धरती पर पड़ी हुई मेहर के आगे खड़ा होकर बोला—सच्चे मर्द कभी भी मानिनी की मनुहार नहीं करते और मिट्टी के पुतले से सन्तुष्ट नहीं होते, तू मेरी रानी तो क्या दासी बनने के लायक भी नहीं है!

और मेहर को लात मारकर किरातराज वहाँ से चला गया।

बहुत देर तक मेहर वैसी ही पडी रही। इस प्रकार कब तक पड़ी रही इसका स्वय उसे भी खयाल नहीं। बाद मे किसी ने उसकी गर्दन को पीछे से कुरते मे हाथ डालकर ऊँचा किया और उसे कठोर स्वर सुनाई दिया—क्यों मेहरबानू ?"

मेहर इस प्रकार खड़ी हो गई मानो किसी ने कठपुतली की चोच दबाई हो। अपने सामने उपहास करते हुए गगू कन्याली महाराज के कठोर चेहरे को उसने देखा।

"तुम तुम तू तू तुम मनुष्य हो या राक्षस ?"

"मैं यदि मनुष्य होता तो जीवित न रहता, इसलिए लगता है कि मैं राक्षस हूँ! परन्तु तुझे यह पूछने की क्या आवश्यकता ? तू तो सुलतान की भाभी सुलतान की प्रेयसी सागर की सुलताना देवगिरि के बादशाह की बेगम और और " गगू महाराज ने कठोरतापूर्वक हँसते हुए कहा, "और अब तो किरातराज की रानी अब तू शैतान से भी नहीं डरती तो राक्षस से क्या डरेगी ?"

मेहर धीरे-धीरे आगे बढ़ी। उसका भावहीन चेहरा मानो भरपूर तिरस्कार से क्रुद्ध हो गया, "तू तू तुम तू तुम्हारे-जैसा बेईमान दगाबाज " मेहर आगे आकर खड़ी हो गई और गगू कन्याली के ऊपर थूककर बोली, "तेरे मुँह पर थूकना ही अच्छा है! विश्वासघाती!"

गगू महाराज घृणापूर्वक अपने मुँह पर का थूक पोंछते हुए मेहर के सामने देखते रहे।

"तू तू मेरे पालक पिता का जमाई मैं नीच तो तू मोची मेरी सगी बहन वल्लरी का तू पति तूने वल्लरी को धोखा दिया। तूने वल्लरी के पिता को धोखा दिया तूने मुझे धोखा दिया तू तू दूसरा कुछ नहीं तो तू मुझे अपने मालिक के साथ तो जाने दे सकता था। इसके विरुद्ध इसके विरुद्ध क्या करूँ ? तेरी सात पीढी तक सत्यानाश हो। तू तो खुद वर्णसकर. सारे देश को वर्णसकर बना देना चाहता है! भगवान भी तेरा भला नहीं करेगा!"

"भगवान की बात तब करना जब भगवान आये," गगू ने कहा, "परन्तु

मेहर, याद है कि तू मलिक रहमान तगी की पालिता पुत्री है। मैंने तुझसे कहा था कि शाहजादा उलूग खॉ, जो तेरे प्रेम मे है, उनके साथ शादी कर ले। वह सुलतान के वारिस है।"

"मेरे पिता के खूनी के साथ मैं शादी करूँ, क्यो? मैंने तो सच्चे शूरवीर को पसन्द किया है।"

गगू महाराज अत्यन्त भयकरता से हँसे "हाँ, तूने शूरवीर को पसन्द किया होगा, परन्तु इस समय तेरा शूरवीर कहाँ है?"

"तेरे पाप के कारण तेरे पाप ने तेरी दगाबाजी द्वारा तेरी "

"क्या तुझे याद है, छोकरी? मैंने कहा था कि तू मुहम्मद सुलतान को पसन्द कर तो तूने मना कर दिया था। उस समय मैंने तुझसे क्या कहा था, याद है?"

"मुझे तेरी कोई बात याद नहीं। मैं नीच मनुष्यों की बाते याद नहीं रखती!"

"मैं नीच हूँ, चाहे सात बार नीच हूँ, परन्तु तू याद रखना—याद रखेगी तो तू सुखी रहेगी, यदि भूल गई तो "

मेहर चुप रही।

गगू आगे बोला—अब भी मेरा कहा मान ले! अब भी तू अपने गैरसप्पा को भूल जा! यह किरातराज अच्छा है, यदि यह न अच्छा लगता हो तो कुछ नहीं। अब भी तू, जो शाहजादा सुलतान बना है और तेरी याद मे अधपगले-जैसा फिरता है, उससे शादी कर ले। जब तेरे पति को सजा दी थी तब उसने क्या कहा था, याद कर! उसने कहा था कि मैं तेरे पति को मृत्यु-दण्ड दूँगा। लेकिन तभी जब कि वह तेरे पास नही रहेगा। तू मेरी सलाह मानकर अब भी सुलतान के पास चली जा।

"मेहर के पास एक ही मार्ग है, चाहे शैतान को अनेक रास्ते सूझते हों, मेरे लिए तो दूसरा कोई मार्ग नहीं। मै सुलतान को पहचानती नहीं, किरात-राज को जानती नहीं। मैं तो केवल गैरसप्पा को जानती हूँ।"

"अरे वाह अरे वाह सती बन गई! तो सुन सती माता! तुम्हारा वह पति, तुम्हारा स्वामी कल सुबह काम्पिली नगर मे पहुँच जायेगा। इस

समय उसे किरातों के गरुड़ ले जा रहे हैं। उसके गले मे डोरी बँधी होगी। दोनो पैरों मे भी डोरे बँधे होगे। इस समय तेरा पति अँधेरे वन मे होगा। उसकी पीठ पर किरातराज के कोडे पड़ते होंगे। और किरातराज के कोडे पीठ का खून लेकर उठते होगे और उसमे से उडते हुए खून के छींटों से आसपास के वृक्ष रँग जाते होगे। इस प्रकार आपके खाविन्द कल तक जहन्नुम मे पहुँच जाएँगे। और तुगभद्रा के पार जाने पर राज्य का दण्ड-हस्ति उसका फैसला कर देगा। वह दण्ड-हस्ति कितना भयकर है, यह मैं जानता हूँ एक शिला पर "

ज्यों ज्यों गगू के शब्द कठोर होते जाते थे मेहर के अग कँपकँपी से भरते जाते थे। उसकी आँखो मे भय की लहरे उठती जाती थीं।

"दया! दया! दया! दया!" वह बड़बडा उठी।

"दया? विप्र-विनोदी गगू कन्याली और दया? नादान छोकरी, अब भी किरातराज के पास से दया माँग, शायद वह दया कर सकेंगे। अब भी सुलतान मुहम्मद से दया माँग। परन्तु गगू महाराज विप्र नहीं है, विप्रविनोदी है। यह दया, माया और प्रेम को पहचानता नही!"

मेहर धीरे-धीरे खड़ी हो गई। और बोली—मेरे मालिक के लिए मौत चाहे कल आए और मेरे लिए चाहे दो दिन बाद आए, परन्तु अरे दुष्ट! मौत तेरे लिए भी एक बार जरूर आएगी "

"आने दे! यदि मैं मौत का मुकाबला न करूँ तो मुझे कहना! परन्तु इस समय मेरी मौत की नहीं, तेरे पति की मौत की बात है।"

मेहर ने अपनी काँपती उँगलियों की मुट्ठी बाँधी। उसकी आँखों मे निराशा छा गई। उसके मुख पर पीलापन छा गया। दैत्य को भी इस समय की उसकी निराशा को देखकर दया आ जाती, परन्तु इस ब्रह्मराक्षस को दया नही आई।

गगू जोर से हँसा—तुझे मदद मैं देखता हूँ, तेरी मदद कौन करता है? हाँ, एक नर तेरा सहायक था, परन्तु

मेहर एकटक गगू के सामने देखती रही। उसकी वाणी बन्द हो गई थी। परन्तु ऐसे कठिन सयोगो मे भी उसकी मदद करनेवाला कोई पुरुष है .

और वह अपने धर्म के भाई का नाम नहीं जानती। वह जहाँ भी हो ईश्वर उसका कल्याण करे! वह बडबड़ाई—मेरे धर्म भाई का खुदा भला करे!

जमीन पर पडे हुए शिकार पर बाघ जिस प्रकार हँसता है उसी प्रकार गगू हँसा। हँसते-हँसते वह बोला—और तुझे भी धर्म की बहन माने ऐसा वह बेवकूफ है उसका नाम जानती है?

मेहर ने सिर हिलाया।

"उसका नाम है कृष्णाजी नायक। कहते है, उस पर सती के आशीर्वाद और शूरों के हाथ पडे है।" भयकर कटाक्ष करते हुए गगू ने कहा, "परन्तु जानती है, उस महासती और महान शूरो का वह पुत्र इस समय कहाँ है? तुझे मालूम न हो तो पूछ इस गगू महाराज से।"

मेहर चुप रही।

"पूछ न? क्यो नहीं पूछती?"

"पूछकर क्या होगा?"

"तो भी पूछ तो सही! इस समय वह किरातराज के बन्दीखाने के एक खड मे है, जिस पर ताला लगा है। यह देख, उस ताले की चाभी! और यह देख उसकी बेड़ियों की चाभी!" अपनी कमर से चाभियों का एक गुच्छा निकालते हुए उसने कहा, "आजकल सतियाँ और शूर—किरातराज के चरणों मे है। और मैं गगू विप्रविनोदी जब तक उसका प्रधान रहूँगा तब तक वह ऐसा ही रहेगा।"

"उस बेचारे ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?"

"तो मै किरातराज की कूटनीति की चर्चा तेरे साथ करूँ? उसे अपने जगल मे अकेला घूमता मनुष्य भयकर लगा हो, जासूस लगा हो तो इसमे किरातराज का क्या दोष?"

थोड़ी देर रुककर गगू ने मेहर का सिर ऊँचा किया—उसके सिर के बाल पकड़कर। उसकी आँख से आँख मिलाते हुए उसने कहा—मेरी सलाह यदि तूने मानी होती सबको छोडकर तू शाहजादा की शादीशुदा होती तो तू आज दिल्ली की सुलताना बनी होती। और अभिमान, अतिमान, अति अज्ञान और अवमान के चक्र पर चढे हुए उस अधपगले सुलतान को अपनी

उँगली पर नचाती होती । तो मेरा मेरे ससुर मलिक रहमान तगी के साथ मतभेद न होता । मैं अपनी पत्नी वल्लरी से अलग न हो पाता तो तो तो मैं काला नाग अपने वैर का बदला लेकर रहूँगा । कल तक मै तेरे सामने तेरे पति का सिर—गैरसप्पा का सिर उपस्थित करूँगा ।

"तू तू शैतान है !"

'वह तो मै हूँ ही—इसमे क्या नयापन है ?"

"तू तो ब्राह्मण नही, ब्रह्मराक्षस है !"

"इसमे क्या नई बात है ? यह तो सारी काम्पिली नगरी जानती है और देवगिरि भी !"

गगू महाराज चला गया । मेहर उसे देखती रही । मनुष्य पीठ पीछे से भी इतना कठोर लगता है—यह आज मेहर ने पहली बार जाना ।

गगू महाराज मेहर को देखता-देखता कठोर हँसी हँसता-हँसता चला जा रहा था । जाते-जाते अपनी चाभियो का गुच्छा टेट मे रखता जा रहा था ।

परन्तु चाभियो का गुच्छा टेट मे पूरी तरह फँसा नहीं और हलकी आवाज से निचे गिर गया । अपने कठोर हास्य के कारण गगू उसकी आवाज नहीं सुन सका ।

गुच्छा नीचे गिरा, उसके गिरने की आवाज मेहर ने सुन ली । परन्तु गंगू ने जाने कुछ सुना ही न हो इस प्रकार वह अपनी धुन मे मस्त वहाँ से चला गया ।

मेहर की नजर उस पृथ्वी पर पडे गुच्छे पर स्थिर हो गई ।

काले नाग के फनों-जैसा, वह जमीन पर पडा था ।

१२ · कृष्णाजी नायक

भैरव की आराधना भयकर है । उसमे भी रणभैरव की आराधना तो सबसे भयकर है । किरातराज के मारुतगढ मे कैद कृष्णाजी नायक को ऐसे विचार आते ।

काम्पिलीदेव के साथ कुपित होकर नहीं, परन्तु रूठकर कृष्णाजी तुगभेद्रा

पारकर किरातराज के वन-प्रदेश मे आया था। उसकी इच्छा थी कि समर्थ ज्योतिषी गगू महाराज से मिलकर वारगल की देवमूर्ति की खोज करे।

परन्तु गगू महाराज ढोगी निकले, जासूस निकले, तुर्कों के दास निकले तो भी उनकी ज्योतिषी के समान फैली कीर्त्ति से कृष्णाजी उनकी ओर आकर्षित हुए।

गगू महाराज बहुत दूर गए न हों, जा न सके हो, और किसी मनुष्य को शहर मे ढूँढना कठिन पडे, परन्तु वन-प्रदेश मे तो उनका पैर जरूर पडा होगा।

सामने किरातराज के किरात घूमते थे, किरातराज अपने जगल के किरातीय राज्य मे किसी भी अनजाने पथिक को नही आने देते थे, यह भी वह जानता था। तो भी वह आया था, और फल जो निकलना था, वही निकला था। कृष्णाजी नायक गगू महाराज के पैर पकड़ सके इतने मे उसके हाथ-पैर बाँध लिये गए।

और अब तो किरातराज उसका क्या करना चाहता है, इसी पर बात टिकी थी।

किरातराज को कृष्णाजी नायक ने देखा था। किरातराज ने अपने मन की इच्छा भी बताई थी। उसकी इच्छा जान लेने के बाद कृष्णाजी के ऊपर से पहरा हटा दिया गया था, परन्तु मन का बोझ तो कम न हुआ था।

साराश मे किरातराज की इच्छा स्वाधीन राजा के सप्तागों को धारण करने की थी। जब स्वय राजदण्ड रखेगा तब कैसा रखेगा, खुद छत्र धरेगा तब कैसा धरेगा, खुद पालकी मे बैठेगा, तब कैसा बैठेगा; खुद राजमुकुट बनवायेगा तब उसमे हीरे, माणिक कितने जडवायेगा, अन्त मे सातवाँ राज्य-अंग दण्ड-हस्ति रखेगा तब वह कैसा रखेगा—यही कहा था।

तब गगू महाराज ने कहा था—नायक, सुनी हमारे किरातराज के मन की बात? जब सामान्य मनुष्य को भी अपनी वस्तु बनानी होती है तो देर लगती है तो राजा को ऐसी महत्त्व की वस्तु बनवाने मे तो देर लगेगी ही; पर हम इसकी सारी तैयारी करेंगे। जब तक इसकी पूरी तैयारी न हो हम खाली हाथ नही बैठेंगे। तत्काल हम सब चीजे बाहर से लायेंगे। विचार तो यही है कि काम्पिलीदेव को ही उठा लाये। क्यों, हमारा विचार कैसा लगता है?

"विचार तो तुम्हारा बहुत अच्छा है। परन्तु काम्पिलीदेव उसे कई धमकियाँ दीं, परन्तु महाराज तो अब तक तुगभद्रा के किनारे अचल बनकर बैठे है और धमकियाँ देनेवालों का तो अब तक पता ही नहीं !"

"यह बात तो तुम्हारी सच्ची है, कृष्णाजी !" गगू ने कहा, "इसलिए इस बार हमने विशेष योजना तैयार की है। इधर तो सुलतान मुहम्मद खुद ही काम्पिली गढ पर हमला करे और उधर पीछे से किरातराज भी उन पर आक्रमण कर दे "

"किरातराज के मन मे भला समाग राज्य-पद की अभिलाषा कहाँ से उत्पन्न हो गई ?"

"हमारी ओर वारगल का राज्य सूना पडा है। यह तो सच है कि तुर्कों का सूबेदार वहाँ है, परन्तु वह देवगिरि मे ही रहता है। कर्नाटक के नरेश वीर वल्लाल ने तुमको उसका उत्तराधिकारी माना है। तुम भी दक्षिणापथ मे रहते हो, और हम भी तुम्हारे पडोसी है।"

"किरातराज के छिट-पुटे आक्रमणा से परेशान होकर तुर्कों ने वारगल में अपनी सूबेदारी स्थापित की है तो भी वे वहाँ रहना नहीं पसन्द करते।"

"और ईश्वर न करे, कृष्णाजी नायक दड-हस्ति का उपहार बन जाए, तो फिर यह काँटा भी दूर हो जाए और किरातराज वारगल का विजेता कहलाए।"

इसी लिए कृष्णाजी को किरातराज का बन्दी बनकर रहना होगा।

और किरातराज के तलघर मजबूत थे। लूट के माल को इकट्ठा करने-वाले तलघर किस प्रकार कमजोर हो सकते है !

इसलिए नि शस्त्र बन्दी कृष्णाजी को इस अँधेरी खाई मे से निकलने का कोई रास्ता दिखाई न दे रहा था।

चाहे कृष्णाजी नि.शस्त्र था, और तलघर चाहे पहाड मे से निकाले गए पत्थर से बने हों, परन्तु कृष्णाजी नायक कोई मामूली बन्दी तो था नही। वह तो दक्षिणापथ का दण्डनायक, महासमिति का सदस्य और वारगल का उत्तराधिकारी था।

इसी लिए तो उसके लिए सवा मन की बेडियाँ तैयार करवाई गई थीं।

नायक का रक्त किरातराज को देखते ही खौल उठता था। किरातराज की सताग राजपद धारण करने की इच्छा का वह नायक उपहास करता था।

परन्तु नायक जानता था कि उसका यह गुस्सा इस समय बकरी के गले के थन-जैसा निरर्थक है। जब वह अपने मन मे झाँककर देखता तो उसे उपहास और रोष ही नजर आता। एक बार जहाँ प्रतापरुद्रदेव और भगवती रुद्राम्मा-जैसे शासन करते थे, जिसकी इच-इच भूमि सतियो और शूरो से भरी थी, जिस भूमि को श्याम भारती उदाली के आशीर्वाद मिले थे, उसी भूमि पर आज लूट का आसन जमाकर बैठा किरातराज सताग मुद्राएँ धारण करना चाहता था! देव और देवियो, राक्षस और असुरो को हँसना है तो हँसे, परन्तु यह तो ऐसी बात थी जिसे सुनकर तुर्क भी हँसते।

यह सत्य है कि वारगल भस्म हुआ था। यह भी सत्य है कि वारगल अब केवल धूल का एक टीला रह गया था। परन्तु यह धूल भगवती रुद्राम्मा और महाराज प्रतापरुद्र की चरणरज से सम्पन्न थी। यह भी सत्य था कि एक भूखे पक्षी को भी पेट-भर अन्न उसमे से नहीं मिल सकता था। तो भी तो भी . यह राज्य वारगल का था। भगवान् कृष्णचन्द्र के उत्तराधिकारी यादवों का था, आंध्र के सातकर्णियो का था

और हजारों वर्षों की संस्कृति की सुगन्धवाले इस बगीचे मे—चाहे अब वह वीरान हो गया हो तो भी—किरातराज को अपना शासन स्थापित करना था!

परन्तु किरातराज को रोके कौन? जहाँ पर माल न मिले वहाँ जाकर रहना तुर्कों को भी पसन्द न था।

और भगवान् विद्याशकर के कुन्तल देश के विजय-शासन ने वारगल के राज्य को कृष्णाजी को देने का वचन दिया था। परन्तु इस वचन को पूरा करने के लिए समय की जरूरत थी। इस विजय-राज्य को निर्भय बनाने के लिए दो बातो की आवश्यकता थी—एक तो योद्धाओ की, दूसरी सौमैया के आदेशानुसार जब तक विजय-राज्य को समस्त जनता का सहयोग न मिल जाए, तब तक तुर्कों से, स्वय आगे बढकर, लड़ाई मोल न लेने की।

अब रहे कलिंग के गजपति। गजपति बहुत महत्त्वाकाक्षी थे। वे दक्षिणापथ मे प्रवेश करना चाहते थे। परन्तु उन्हे तुर्को का बड़ा भय था।

वारगल मे जिसे आनन्द होना चाहिए वे सब निष्क्रिय थे। किरातराज जगली था, असभ्य था। उसका रहन-सहन, उसका आचार-विचार सभ्य समाज मे हॅसी पैदा करनेवाले थे। परन्तु एक बात जरूर थी। उसे बन्दी को रखना आता था, इतना तो कृष्णाजी नायक को भी स्वीकार करना पड़ा।

इस प्रकार जब बन्दीगृह मे विचारमग्न कृष्णाजी बैठा था तब एकाएक किसी के खटखटाने को आवाज आई। और मानो द्वार खुल रहा हो इस प्रकार कृष्णाजी के अँधेरे कमरे मे प्रकाश की पतली रेखा कौध गई।

कृष्णाजी नायक चौक उठा। शायद यह उसे मारने का प्रयत्न तो नही?

"नायक! तुम कहाँ हो?" एक अपरिचिता का मीठा स्वर नायक के कान मे पड़ा।

उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। केवल स्तब्ध खड़ा रहा।

फिर से प्रश्न दुहराया गया—मुझे कुछ कहो तो सही। इस अँधेरे मे मुझे कुछ नहीं दिख रहा है।

उत्तर मे नायक ने अपनी बेड़ियाँ बजाई।

कोई सावधानी से धीरे-धीरे चलता हो ऐसी आवाज सुनाई दी। अँधेरे मे नागिन चलती हो वैसी धीमी, तीखी आवाज समीप आई। एक हाथ कृष्णाजी के पैर पर फिरा, उसकी बेडी पर फिरा। थोडी आवाज हुई। बेडी थोडी देर इधर-उधर खिची। बाद मे उसके दोनो हाथो से बेडी छूट पडी। जमीन पर गिर रही थी तभी किसी ने बेडी को पकड लिया और धीरे से नीचे रख दिया।

"मुझे डर लगता है। तुम युवा हो, शूरवीर हो, लो ये चाभियाँ। अपने पैरो की बेडियाँ निकाल डालो। चाभी गिर न जाए, ध्यान रखना, नहीं तो ढूँढने मे कठिनाई होगी।"

अँधेरे मे एक हाथ उसकी छाती पर फिरा, मानो कमल को कोमल दड देता हो। वह हाथ छाती पर से फिरकर कन्धे पर आया, वहाँ से हथेली पर आया और वहीं रुक गया। चाभी हथेली पर रख दी गई।

बन्दीगृह की थकान और घबराहट को कृष्णाजी भूल गए। अनायास ही उनकी किस्मत ने साथ दिया।

चाभी को अपने दाँतों-तले दबाकर उन्होने अपनी बेड़ियो को देखा। बाद मे एक हाथ से बेडी पकड़कर एक हाथ से चाभी लगाई। थोडी देर मे बेडियाँ अलग-अलग हो गई।

गर्मी से गर्म बने उनके गालों पर मानो मन्द मलयानिल का झोंका लगा हो इस प्रकार दो नाजुक हाथ लोहे की गर्मी से गर्म उनके पैरों की बेडियों के नीचे फिरे।

फिर से वही आवाज आई—चलो!

नायक कुछ नही समझा। समझने के लिए उसके पास समय भी कहाँ था। वह कहाँ जा रहा है, और उसे कौन ले जा रहा है, यह सब कृष्णाजी की समझ मे नहीं आ रहा था। बस, वह तो यही जानता था कि अँधेरे किले से निकलकर वह मुक्ति की ओर जा रहे है।

जल्दी से दोनो बाहर निकल आए थे।

कृष्णाजी का रोककर उनके सुकोमल साथी ने धीरे से दरवाजा बन्द कर दिया, ताला लगा दिया।

"उन्हे जितनी देर मे मालूम पडे उतना ही अच्छा।" एक आवाज नायक ने सुनी।

अँधेरे मे धक्के खाते हुए वे पूनम के चन्द्रमा की रोशनी मे आ गए।

कृष्णाजी ने देखा, सामने कमल-जैसे मुखवाली नारी खड़ी थी।

"अब मेरा एक काम करोगे, भाई?"

"अभी तो हमारे भागने का काम ही बाकी है।"

'तुम्हें अकेले ही भागना होगा, मैं तो वापस जा रही हूँ। भागने का रास्ता बताऊँ?"

"परन्तु तुम ..."

"मेरी बात करने का समय नहीं केवल मेरी बात सुनने का समय है। तो सुनो भाई, एक शैतान को खुदा ने उसकी अपनी जरूरी चीज, यह चाभी भुलवा दी और मैं आपको छुडावने आ पहुँची। तुम्हारी बुलन्द तकदीर तुम्हे जहाँ बुला रही है वहीं तुम जाओ। मुझ बदकिस्मत को यहीं रहने दो!"

"बहन, तुम कौन हो? तुम अपने को अभागिन क्यों कहती हो? मेरी

सहायता क्यों कर रही हो ?—ये सब जाने बिना मैं तुम्हे जाने न दूँगा और मैं भी नही जाऊँगा !'

"भाई, तुम्हारा शुक्रिया। पर किरात इस समय शराब के नशे मे है, ठहरने पर शायद कोई मुसीबत खडी हो जाए !"

"फिर भी ?"

"तो सुनो, मैं भी तुम्हारे-जैसी कैदी हूँ। मेरा कैदखाना तुम्हारे कैदखाने से अलग है। तुम जाओ, फिर मिलेंगे। और यदि मैं जिन्दा रहूँगी तो अपना परिचय दूँगी। अब तुम जाओ, परन्तु जाने से पहले मेरी एक बात सुनो। एक काम करोगे ?"

"हाँ सुनता हूँ।"

"तो सुनो—मैं तुम्हारी अभागिन बहन हूँ। तुम मुझे बहन मानो या न मानो, मैं तो तुम्हे भाई मान चुकी हूँ। अनायास ही मैं तुम्हारी सहायिका बनी हूँ। अब तुमसे जितनी मदद हो सके उतनी मदद मेरी करो। मेरा पति किरातों का कैदी बन गया है। किरातों ने उसे काम्पिली गढ़ भेजा है। उसका वध यहाँ क्यों नहीं होगा, यह तुम बाद मे समझोगे। तुम काम्पिली-देव के पास जाओ। मैं तुम्हारे साथ कोई शर्त नही लगाती हूँ। न मैं कोई वचन ही माँगती हूँ। परन्तु भीख माँगती हूँ कि मेरे पति की बन सके उतनी मदद करना। उसका नाम गैरसप्पा बहाउद्दीन है।"

"बहन, मैं जितनी बातें समझ सका, वे भयकर हैं, जितनी बातें नहीं समझ सका वे और भी अधिक भयकर हैं। मैं तो एक बात जानता हूँ—तुम्हे छोड़कर मैं जाऊँगा नही। या तो तुम भी मेरे साथ चलो, नहीं तो मुझे फिर से कारागार मे बन्द कर दो।"

"भाई, ऐसा हठ न करो, और मेरी बात पूरी तरह समझो। अगर तुम मेरे पति की मदद करना चाहते हो तो जल्दी ही यहाँ से चल पड़ो। मैं थकी हुई हूँ, एक डग भी न चल सकूँगी। इस प्रकार मैं खुद अपने पति की मौत का कारण बन जाऊँगी ! तुम जाओ, खुदा हाफिज !"

मेहर नीचे झुकी—इस अभागिन को आखिर एक बलवान भाई तो मिला, यही क्या कम सौभाग्य है ! मेरे भाई, जाओ ! मेरे पति की सहायता

करना। उससे जीवित मिल सको तो इतना जरूर कहना कि मेहर तुम्हे याद करती है, भूल नही गई, और न भूलेगी।

वह थोडी देर चुप रही। फिर उसने कहा—मै तो रास्ता नहीं जानती, क्योकि तुम्हारे ही जैसी बन्दी हूँ। ईश्वर करे तुम भटको नही। ईश्वर तुम्हे रास्ता बताये।

तब एकाएक एक अट्टहास सुनाई दिया और एक बडा पत्थर ऊपर से लुढककर उनके पैरो के सामने पडे पत्थर से टकराकर नीचे गिर गया।

फिर से एक अट्टहास सुनाई दिया।

चौककर कृष्णाजी ने ऊपर नजर की—देखा तो एक चेहरा इन दोनो को ध्यान से देख रहा था। चॉदनी के प्रकाश मे यह चेहरा भयकर लग रहा था। यह चेहरा चाँदनी के प्रकाश मे खून-भरी कटार-जैसा लग रहा था।

"शैतान!" मेहर के कठ से एक चीख निकली।

"शैतान नही, गगू कन्याली!" ऊपर से कठोर आवाज आई, "कहाँ जा रहे हो, कृष्णाजी?"

और ऊपर से गगू कन्याली ने दूसरा पत्थर लुढकाया। वह लुढ़कता हुआ दूर चला गया।

"हा हा. हा ! कृष्णाजी जाते है ! मेहर जाती है ! मेरी चाभी मै मेहर के पास भूल गया था। मुझे अनुमान भी नही था कि वह उसका यह उपयोग करेगी। मुड़कर देखा तो मेहर नहीं थी। जब ध्यान से देखा तो मालूम हुआ कि दो किरात सिपाही नशे मे थे। यह तो मेहर के रूप का और मेहर की शराब का जादू था!"

"शैतान!"

"शैतान नहीं, गगू कन्याली ! गगू ज्योतिषी ! कृष्णाजी, मेरा ज्योतिष कहता है कि तू सलामत जाने नही पायेगा। तुम मुझे क्या समझते हो? मुझे अभी भी किरातराज के राज्य मे रहना है!"

पुन. एक पत्थर गिरा और लुढकता हुआ वृक्षों को कुचलता दूर निकल गया।

"तुम्हारी बात सच्ची है गगू महाराज ! बिलकुल सच्ची ! मेहर ने दूसरा

विचार किया या नही—यही जानने के लिए मैं रात मे उसके पास जा रहा था। आपने मुझे अपना शक बतलाया। वह शक सच निकला।" एक दूसरी आवाज सुनाई दी।

"मै भी मेहर के पास इसी काम से गया था, महाराज!"

और मेहर के मन मे भय के मारे कँपकँपी उत्पन्न हुई। यह आवाज किरातराज की थी।

"नीचे उतरने का कोई रास्ता नहीं है!" गगू महाराज ने कहा, "कृष्णा-जी, ऊपर चले आओ, यहाँ हम तुम्हारी राह देख रहे है।"

किरातराज पकडने के लिए ऊपर से नीचे उतरा परन्तु व्यर्थ हुआ।

गगू ने कहा—महाराज, यह उतार-चढाव मुश्किल है। आप इतनी जल्दी क्यो कर रहे हो! नायक के लिए ऊपर आने के अतिरिक्त दूसरा कोई रास्ता नही है। या तो वह सीधा कारागार मे जाए या वहीं नीचे खडा रहे या ऊपर आए। परन्तु वह यहाँ से भाग नहीं सकता। हमारे लिए पत्थर फेकना ही ठीक है। महाराज! यह पत्थर जरा बडा है—आप भी धक्का दीजिए!

और अत्यधिक परिश्रम से गगू और किरातराज ने उस हाथी-जैसे पत्थर को नीचे धकेल दिया। कृष्णाजी सिर उठाकर उसकी तरफ देखता रहा और मेहर की कमर पकडकर दूर भाग गया।

जहाँ वे खडे थे ठीक वही वह पत्थर आकर गिरा।

'हा हा हा!" गगू महाराज भयकर हँसी हँसा, 'कृष्णाजी, कीडे मकोडे के समान मरना है या मनुष्य के समान? जाने का कोई रास्ता नहीं है। पूछो इस किरातराज से। मारुतगढ से नीचे उतरने का एक ही मार्ग है, जहाँ पर किरात के रक्षक पहरा देते है। उसके सिवाय दूसरा कोई रास्ता नहीं है।"

होठ काटकर कृष्णाजी ने ऊपर देखा—दो चेहरे उनकी ओर ताक रहे थे।

क्रोधित होकर कृष्णाजी ने मेहर को कमर पकड़कर खींच लिया। ऊपर से पत्थर उनके आस-पास गिर रहे थे। आगे बरसात का पानी बह रहा था। कृष्णाजा उसमे उतरे।

"मेरे पीछे चली आओ, बहन ! कारागार मे मरने से तो अच्छा है भागने का प्रयत्न करते हुए मरना । चलो, बहन !"

और कृष्णाजी पहाड के पानी मे पैर जमाते, मेहर को सहायता देते नीचे उतरने लगा ।

"पकडो ! पकडो !" किरातराज चिल्लाया । और एक पत्थर उठाकर नीचे फेका ।

'अरे महाराज !" गगू महाराज ने कहा, "ये जाएँगे कहाँ ? इधर से हजार हाथोवाला बन्दर तो उतर नही सकता । और तो ठीक, बकरी भी नही उतर सकती तो ये दोनो किस प्रकार नीचे उतर सकेगे । थोडी ही देर मे हाँफकर खडे रह जाएँगे । तब तब "

कृष्णाजी धीरे-धीरे पैर रखते हुए, झाडियों से टकराते हुए मेहर का पैर अपने कन्धे पर रखते हुए उतरे जा रहे थे ।

"पकड़ो ! पकडो !" किरातराज फिर चिल्लाया ।

"कृष्णाजी ! मेहर !" ऊपर से गगू महाराज की आवाज सुनाई दी, "अब भी मान जाओ ! आराम से मरना चाहते हो तो ऊपर चले आओ । इस रास्ते से तो आज तक कोई भाग नहीं सका है और न भविष्य मे कोई भाग सकेगा । और मान भी ले कि पानी की सतह पर जमी हुई काई और लताओं से जूझते हुए तुम पानी मे उतर ही जाओ तो भी मेहर कैसे उतर सकती है ? और यह भी मान ले कि तुम मेहर को भी उतार लो तो हिरनी के कुत्ते की दिशा मे स्थित हनुमान बावड़ी को तुम नही खोज पाओगे । यदि घनघोर वन मे तुमने उस बावड़ी को खोज भी लिया तो रामवट तक जाना कठिन होगा ।"

और गगू महाराज ने दोनो हाथों से पकड़कर ऊपर उठाकर सुदर्शन-चक्र की तरह पत्थर फेका ।

"अरे, पकड़ते क्यो हो ? मारो ! मारो ! ये लोग कुछ समझते नही और चले जा रहे है, मरने जाता है !" गगू महाराज ने अन्त मे चिल्लाकर कहा, "वारगल का उत्तराधिकारी इस प्रकार भागकर जाए, इसमे हमारी क्या शोभा ? मारो इसे !"

आगे की उतराई बड़ी बेढब थी। पैरो के नीचे की पकड कमजोर पडती जाती थी। और हाथ से टटोलने पर कोरे ककर हाथ मे आते थे।

अब गगू ने अन्तिम दॉव आजमाया। उसने अपनी कटार कृष्णाजी पर फेंकी। उनसे पास मे ही जाकर वह कटार जमीन मे घुस गई। यदि कृष्णाजी पछी हो तो भी इस उतराई को पार नहीं कर सकता, ऐसी गगू की मान्यता थी।

लेकिन इसी समय किरातराज लडखड़ाया और नीचे गिर पडा और एक आह उसके मुँह से निकली।

और गगू कन्याली ने जोर से शोर मचाया, जिसे सुनकर पहरे पर खडे किरात दौड पड़े।

१३　अनामन्त्रित अतिथि

महाराज काम्पिलीदेव उन लोगो की तरह पछताते थे, जो लोग उतावली मे कोई निर्णय कर लेते है।

यह सच था कि महाराज काम्पिलीदेव ने जब से देवगिरि से मुक्ति पाई तब से एक स्वाधीन राजा की शान से वह रहते थे। उन्हे यह मुक्ति और यह स्वतन्त्रता अपने ही सघर्ष से नही मिली थी। देवगिरि का यादवराज रामचन्द्र उनका स्वामी, सामन्त-शिरोमणि था।

जब यादवराज कालयवन से जीवन-मरण के जग मे जूझ रहे थे तब काम्पिलीदेव ने भी अपने स्वामी के लिए युद्ध-क्षेत्र मे भारी मार-काट मचाई थी।

काम्पिलीदेव का वह युद्ध इतना भयकर था कि कालयवन भी अपना दिशा-ज्ञान खो बैठा था।

लेकिन यादवराज की सेना घिर गई थी। उस समय जो मार-काट हुई उसमे से काम्पिलीदेव ही अपनी सेना को सुरक्षित रूप से निकालकर बाहर ले जा सके थे। यादवराज रामचन्द्र के पश्चात् भाई के जामाता हरपालदेव जब देवगिरि के अधीश्वर बने, तब काम्पिलीदेव ने हरपालदेव को अपनी सेवाएँ समर्पित कीं।

उस समय भी भयकर सग्राम हुआ था। हरपालदेव की सेनाओ का एक-एक वीर अपने प्राणो की वाजी लगाकर मैदान मे डटा रहा और वीरगति को प्राप्त हुआ। उस समय भी काम्पिलीदेव अपनी सेना लेकर तुर्को के बीच मे घुस गए थे और अपने भयकर पौरुष से म्लेच्छो को चकित कर दिया था। और जिस प्रकार मक्खन के बीच से चाकू निकल जाता है उसी प्रकार म्लेच्छो के रक्त से चिकनी हो रही युद्ध-भूमि से अपनी सेना के अधिकाश भाग को सुरक्षित लौटा लाये थे।

और तब से तुर्कों मे इतनी हिम्मत नही रही थी कि काम्पिली की ओर नजर भी उठाते। पारस्परिक द्वेष से निर्बल राज्य रूपी चने विदेशी तुर्क सहज ही चबाते रहे थे लेकिन देवगिरि से रामेश्वर तक फैले हुए सुलतान मुहम्मद के राज्य के बीच काम्पिलीदेव अब भी निर्भय बैठा था और सुलतान मानो उसकी ओर से ऑख और कान बन्द किये था।

ऐसे युयुत्सु थे महाराज काम्पिलीदेव! किसी को भी ललकार देने मे डरते न थे फिर भी इस समय उनके मन मे बडा पछतावा था।

यादवराज रामचन्द्र के प्रधान मत्री हेमाड पडित बहुत विद्वान् थे। अनेकानेक ग्रन्थों के अध्ययन पर, उन्होंने राजनीति और कूटनीति के सूत्र तैयार किए थे। उनके कई गुप्तचर थे, जासूस थे। तथापि हेमाड पडित इन गुप्तचरो का उपयोग न कर सके। समर्थ विद्वान वे थे, समर्थ पडित वे थे, परन्तु देवगिरि को सुरक्षित न रख सके!

हेमाड पडित से ही महाराज काम्पिलीदेव ने राजनीति और कूटनीति के मूलतत्त्व सीखे थे। इनके भी अपने जासूस थे। और तुर्का का तो यह तरीका ही था कि जिस मुल्क पर वे आक्रमण करना चाहते, उस मुल्क मे अपने कई जासूस भेज देते—कुछ 'हिमालय की जडी-बूटियॉ लेकर आते! कुछ जादूगर बनकर आते! नटो के खेल-तमाशे दिखलानेवाले बनकर भीड़ एकत्र करते! और इन सबसे उन्हे कई प्रकार की सूचनाएँ मिलतीं।

काम्पिलीदेव को अपने जासूसो से गग कन्याली और तुर्कों से उसके सम्बन्ध के सभी समाचार मिल गए थे। एक गुजराती चमार भ्रष्ट होकर मुसलमान बना और उन्नति करते-करते अमीर भी बन गया। उसकी लड़की

मधुलक्ष्मी अपने पति को वारम्बार आश्वासन देती। परन्तु उस समय महाराज कहते—तुम तो मेरे प्रेम मे अन्धी हो, रावा! लेकिन मैने बडी भूल की है!

और यो काम्पिलीदेव के सामने सिपाही एक तुर्क को पकडकर लाये।

तुर्क वह पागल प्रतीत होता था। आँखों मे नीद भरी थी। गन्दी, भद्दी, बढी हुई दाढ़ी थी। बालों मे जगली घास उलझी थी। अनन्त थकान से उसके भाल की चमक मिट गई थी!

मानो, उसे कब्र खोदकर निकाला गया हो!

महाराज उसकी ओर देखते रह गए।

सिपाहियो ने कहा—दीनानाथ, यह म्लेच्छ पागलों की तरह, तुगभद्रा के तट पर भटक रहा था। हम पकडकर आपकी छाया मे ले आए है।

"मेरे पास क्यों लाए? अमरनायक के पास क्यों नही ले गए?"

पागल-सा वह बन्दी इधर-उधर देखता रहा। वह बडबड़ाने लगा—खुदा की कुदरत! किस्मत की कयामत खुदा ने, कुदरत ने क्या-क्या न किया? उसने बुलबुल को गाना दिया। परवाने को आग दी। और मुझे गम दिया। हा हा हा!!

इस पर सिपाहियों ने कहा—भगवन्! यह इसी प्रकार दिन-रात बकता रहता है।

'तुम जानते हो, हमारे राज्य मे तुरुष्क को पैर रखने की मनाई है! यदि यह सचमुच पागल है तो इसे वापस, हमारी सीमा से बाहर धकेल दो। यदि कोई जासूस या ढोंगी गुप्तचर है तो ले जाओ अमरनायक के पास वह जानता है, ऐसे लोगो से क्या बरताव होना चाहिए।"

सिपाहियो के नायक ने कहा—महाराज कृपानाथ! आज्ञा मिले तो, कुछ कहना चाहता हूँ।

"अवश्य कहो, नायक!"

"भगवन्! जिन दिनो होनावर दुर्ग का जीर्णोद्धार हुआ था, श्रीमान् महाराज के सेवक गुरुड़ो मे मैं भी एक था।"

"इस समय उस घटना के उल्लेख से तुम्हारा क्या अभिप्राय है? यह बेवक्त का होनावर-पुराण तुम कहाँ से ले आए?"

"अपराध क्षमा हो, दीनानाथ, होनावर की स्मृति के कारण ही, मैं इस तुरुष्क को सीधा महाराज के पास लेकर आया हूँ। आपने इस बन्दी को अभी ध्यानपूर्वक नही देखा, भगवन् !"

काम्पिलीदेव ने उसे गौर से देखकर कहा—यह तो जैसे कोई फकीर या दरवेश मालूम होता है।

'प्रभु ! तनिक इसका दाहिना अँगूठा तो देखिए।"

"अरे ! तुम यो तो नायक हो, लेकिन तुम्हारी दृष्टि प्रधानमत्री जितनी बारीक है और जासूसो से भी रहस्यमयी है ! अरे यह तो वही है, जिसने जिसने राय हरिहर से आभीर युद्ध लडा था वही तुर्को का शानेशमशीर ! कही का सूबेदार था, यह तो ! हार जाने पर फूट-फूटकर रो रहा था !"

"प्रभु, उस दिन मैंने इसी के मुँह से इसका परिचय सुना था। आज भी मुझे याद है—इसका नाम है गैरसप्पा। यह सागर का सूबेदार था, तुर्कों का शानेशमशीर था। और दिल्ली के सुलतान मुहम्मद की बहन का लडका है।"

"अरे भाई, तेरी स्मरण-शक्ति अद्भुत है। तुझे तो राय हरिहर के पास भेजना चाहिए। तेरा नाम क्या है ?"

"जी, इस सेवक सिपाही का नाम है इरुगा। मै मूलसघ का अनुयायी जैन भाव्य हूँ।"

"अच्छा, अच्छा ! यह तो तुर्कों का शानेशमशीर गैरसप्पा है, यही न ? भूलता तो नही है ?"

"जी, यदि नाई से इसकी हजामत करवाई जाए तो यह पहचान मे आ जाएगा।"

"नही रे, तू कहता है उतना बस है। अब तो मुझे भी ध्यान मे आ रहा है। इसके दाहिने हाथ का अँगूठा कटा हुआ है। साफ दिखता है कि यह जाति का तुरुष्क है ! बेकार मे नाई को परेशान क्यो किया जाए ?"

"जी !" प्रणाम करके सिपाहियो का नायक लौट गया।

और महाराज इस अधपगले की ओर देखते रहे, और धीरे-धीरे उनके चेहरे पर भयकर हँसी खेल गई।

"क्यों, तू कौन है ? यहाँ क्यो आया है ? तू ही तुर्कों का शानेशमशीर गैरसप्पा है, न ?"

तुर्क ने महाराज के सामने देखा, परन्तु जाने महाराज के सामने देखता न हो और कोई दूसरा ही उसकी आँख के सामने आ खड़ा हुआ हो, इस तरह बोला—मेहर, तूने देखा न ! मेरे साथ कितना अन्याय किया जा रहा है? मुझे दुख दिया, तुझे रूप दिया । क्या ईश्वर की करामात और किस्मत की कयामत !

"अरे कयामतवाले !" काम्पिलीदेव महाराज धैर्य का तो नाम ही नहीं जानते थे । और अब उन्हे लगा कि कैदी उनका उपहास कर रहा है ।

दो कदम वह आगे बढे और बोले—कयामत दूर नही है, यही पर है और करामात भी यहीं है । देख ले, यह करामात !

और महाराज ने उसके गाल पर जोर से एक तमाचा मार दिया और एक कदम पीछे हट गए । लेकिन कैदी का चेहरा पहले-जैसा भावहीन रहा । और उसकी आँखें महाराज पर टिकी रहीं ।

"यह तो सचमुच मे पागल है ?" महाराज ने धीमे-धीमे कहा ।

"मेहर से पूछो ।" तुर्क ने कहा, "मेरी सारी बाते जाननी हो तो मैहर से पूछो । मेरे पास किसी बात का कोई उत्तर नही है । मेरे पास तो सिर्फ दर्द है । दर्द सिर्फ "

पहले एक तुर्क मदारी का वेष धरकर आया था । किसी को तनिक भी पता न चला कि वह सँपेरे के सिवाय कोई और हो सकता है । उसी समय एक ब्राह्मण के घर मे नाग निकला । तब इसी सँपेरे को बुलवाया गया । बिना घबराये वह तुर्क जीवित नाग को पकडने के लिए तैयार हो गया । और नाग को पकडने के लिए सँपेरे की नकल करने लगा । नाग ने तुर्क को डस लिया और वह तुर्क वहीं मर गया । तब मालूम पड़ा कि वह सँपेरा नही था—तुर्को का जासूस था !

अत. तुर्कों का तो कुछ पूछना ही नहो ! हिन्दुओ को तग करने के लिए वे अपना तन-मन-धन सब न्यौछावर कर देते है ।

इसी प्रकार गगू महाराज ने भी ज्योतिषी का नाटक किया था ।

"चाहे पागल हो, चाहे समझदार। तुर्कों को तुंगभद्रा पारकर हमारे राज्य की सीमा मे कदम रखने की मनाई है। इस नियम को तोडनेवाले का न्याय दण्ड-हस्ति करता है। नायक, तुम्हारे कैदी को वहीं ले जाओ। इसका मस्तक देवगिरि के सूबा के पास भेज देना। साथ मे इतना सन्देश और कि काम्पिलीगढ़ मे हाथी अधिक है इसलिए उसे आनेगुडी कहा जाता है। मेहमानो का आदर-सत्कार काम्पिलीदेव हाथी से ही करता है—आमन्त्रित मेहमान हाथी पर बैठते है और अनामन्त्रित मेहमानो पर हाथी सवारी करता है! ले जाओ, इस जासूस को! मनुष्य तो हाथी पर सवारी करते ही है परन्तु कभी-कभी हाथी भी मनुष्यो पर सवारी करते है। यही इस तुर्क के मालिक को बता देना। काम्पिलीदेव का यही आदेश है, इस पर अमल करो!"

१४ : आमन्त्रित अतिथि

सिपाहियों ने गैरसप्पा को पकड लिया। गैरसप्पा आधा पागल था। उस समय, उसकी दशा देखते हुए, यह कहना कठिन था कि सचमुच ही वह पागल है या नही? कई सिपाही वैतालिक कला मे सिद्धहस्त थे और उन्हे सहज ही छका देना कठिन था। वे आसानी से जासूसो और ठगो को पकड लेते थे और यह भी पता चला लेते थे कि सचमुच मे अमुक व्यक्ति ढोंग कर रहा है या सच्चा है?

इसलिए सिपाहियो ने गैरसप्पा को पीछे से बाँध लिया। उसके पैर भी इस तरह बाँध दिए कि वह एक-एक कदम ही आगे बढ़ा सकता था।

इसके बाद लगातार ढोल बजाते हुए, सारा दुर्ग सुन ले, ऐसा शोर मचाते हुए वे आगे बढे।

गैरसप्पा को नियमानुसार सारे शहर मे घुमाकर, वधस्थल पर लाया गया। वहीं वह काली, घोर वधशिला रखी थी।

दृश्य देखने के लिए, अपने पिछले गवाक्ष मे, काम्पिलीदेव भी आ बैठे। और काले पहाड़-जैसा दण्ड-हस्ति भी वहाँ हाजिर हो गया। उसकी आँखे लाल और खूनी थीं। उसके अस्थिर पैर और गले से उठती हुई हुँकार सुनकर यह प्रतीत होता था कि दण्ड-हस्ति मदमत्त है, उसे शराब पिलाई गई है।

गैरसप्पा शिला पर सुला दिया गया। उसके हाथो के बन्धन काट दिए गए। सिर्फ पैर बँधे रहे!

ऐसे दृश्य को देखने के लिए, साधारणतया जितनी भीड एकत्र होती है, उतनी इस बार भी हुई। एक जासूस और वह भी तुर्क—और सुलतान मुहम्मद की बहन का बेटा!

गैरसप्पा को तैयार रहने का कहकर, महावत ने अपने हाथी को इशारा किया। हाथी, इस प्रकार आगे बढा, मानो पहाड मे प्राण आ गए हो।

उसी समय एक तीव्र चीत्कार उठा! भीड को चीरती हुई एक मानव-प्रतिमा दण्ड-हस्ति की ओर दौड़ पड़ी। उस करुणा-कातर पुकार को सुनकर क्षण-भर के लिए दण्ड-हस्ति भी जैसे रुक गया। लोग सारे चित्रवत् स्थिर रह गए!

भीड़ को यह समझते विलम्ब न लगा कि पुकारनेवाली यह प्रतिमा एक नारी थी और स्वर्ग की अप्सरा के समान सुन्दर थी।

"दया करो! दया करो!! दया करो!!!" उस सुन्दरी ने करुण स्वर मे पुकारा, "मेरे भाई, अपनी इस गरीब बहन पर रहम करे।"

कुछ खोजती-सी उसकी दृष्टि गवाक्ष मे आसीन महाराज काम्पिलीदेव पर गई, और उसने आँचल फैलाकर प्रार्थना की—रहम कीजिए महाराज! रहम कीजिए! एक गरीब अबला पर दया कीजिए। आप मेरा सौभाग्य न छीन लीजिए!

और जैसे, उस नारी-प्रतिमा मे, इतना ही कहने की शक्ति शेष रह गई हो, वह काँपकर, गैरसप्पा पर गिर पड़ी।

"मेहर! मेहर!!" गैरसप्पा नजरें न उठा सका, लेकिन उसने मेहर की बोली पहचान ली थी। उसके अर्द्धभ्रमित मन मे इस बोली की छाया पड़ी और गूँज उठी—मेहर, तुम आ गई? अब कयामत तक कोई हमें जुदा न कर सकेगा।

मानव-मेदिनी स्तब्ध खड़ी थी। दण्ड-हस्ति एक पैर उठाकर चित्रवत् खडा रह गया। महावत ने काम्पिलीदेव के गवाक्ष की ओर देखा।

महाराज ने आज्ञा दी—तुरुष्क नारी तुरुष्क के लिए दया की भीख माँगती है। इसकी कुक्षि से जो सन्तान होगी, वह भी तुरुष्क होगी। वह जवान होकर

हमारी बहन-बेटियो को गुलाम बनाकर ले जाने के लिए सामने आएगा। देर-अबेर वह देवस्थानो की तोड-फोड के लिए उठ खडा होगा। हमारे ग्रन्थो को जला देगा और हमारे गाँवो मे आग लगाएगा। महावत, दण्ड-हकाम्पिली बढाओ! तुरुष्क की पत्नी हट जाना चाहती हो तो हट जाए, क्योंकि काम्पिली-देव किसी औरत पर हाथ नही उठाता। और अगर यह अपने पति के साथ सती होना चाहती है तो अवश्य सती हो जाए! महावत दण्ड-हस्ति को आगे बढाओ!

इस आदेश की गूँज ने भीड पर छाये हुए मेहर के रूप के जादू के बन्धनों को तोड़ दिया। महाराज की बात सच थी, 'दया डायन को भी खा जाती है।' तुरुष्को की सन्तान भी तुरुष्क ही होगी। और तुरुष्क कैसे लोग थे, इस बात को दक्षिणापथ मे कौन नहीं जानता था? क्या उन्होंने भागवतों के परम धर्मधाम रगनाथ को भ्रष्ट नही किया था? और देव-प्रतिमाओं को बाहर फेंक-कर क्या अब उसमे एक तुर्क नही रहता था? क्या उन्होने यदुकुल-तिलक हरपालदेव की चमडी न उतरवा ली थी? तुरुष्क पर दया नहीं दिखलाई जा सकती!

तुरुष्क नारी रूपवती थी। अति दारिद्र्य, अत्यन्त थकान और अति वेदना के घोर मेघ भी उसके रूप के चाँद को ढँक न सके थे। वह सचमुच सुन्दर थी, किन्तु क्या नागिनें सुन्दर नही होती? नागो से भी एक अकेली नागिन अधिक भयकर होती है, क्योकि नाग अकेला होता है परन्तु नागिन अनेक नागो को जन्म देती है!

बढने दे! दण्ड-हस्ति को आगे बढने दे। उसे सात सेर शराब पिलाई गई है, वह पीछे हट जाए, यह अच्छी बात नहीं।

दण्ड-हस्ति आगे बढा।

तभी एक भयकर हुँकार उठी और एक नौजवान बिजली की गति से आगे बढा। उसने अपनी कटार से हाथी की सूँड पर वार किया। लहू का फव्वारा फूट निकला। तभी नौजवान ने उछलकर अपनी चादर हाथी की आँखो पर ढँक दी। अग-अग मे प्रकम्पित गजराज न तो एक कदम आगे बढ़ा और न एक कदम पीछे हटा।

और नौजवान हाथी की पीठपर खडा हो गया और महाराज काम्पिलीदेव को प्रणामकर कहने लगा—महाराज, काम्पिलीदेव! मेहर की प्रार्थना मे, मैं अपना स्वर मिलाने की आज्ञा चाहता हूँ!

"कौन, कृष्णाजी नायक? आपने यह क्या तमाशा लगा रखा है? आपने नटो के ये खेल कब सीख लिये? ठहरिए, मै आता हूँ।"

मेदिनी को आश्चर्य हुआ। तुरुष्क बन्दी के लिए उसकी पत्नी प्रार्थना करती है—यह बात समझ मे आ सकती है, लेकिन तुरुष्क नारी का यह हिमायती हिन्दू कौन है? गुप्त रूप से, सुन्दर के समान गद्दारो-जैसा काम करनेवाले देशद्रोहियो की कमी नही, परन्तु कौन है यह जो मानव-मेदिनी के सामने गद्दारो का रूप लेकर खडा है! क्या इसे अपने सिर का मोह नही? क्या इसके धड पर दो सिर है जो काम्पिलीदेव और उनके दुर्ग के विरुद्ध, उनकी प्रजा के विरुद्ध खडा हो रहा है?

महाराज काम्पिलीदेव उतरकर नीचे आए। उन्होने उस तुर्क या उसकी पत्नी पर एक नजर भी न डाली! और सीधे कृष्णाजी के निकट आए।

"कृष्णाजी, नीचे आइए।"

"लेकिन महाराज, इस दण्ड-हस्ति का क्या होगा?"

"यह अपना काम करेगा। हम कुछ जरूरी बाते करेगे।"

"क्षमा करे महाराज! मैं तो यही अच्छा हूँ। मै आपसे, मेहर की ओर से, दयादान की प्रार्थना करता हूँ।"

"मेहर कौन?"

"इस तुर्क बन्दी की बेगम। यह महिला ।"

"कृष्णाजी, यह भूमि हनुमान की है।"

"जी, मैं जानता हूँ।"

"मैं आपका पूरा सम्मान करता हूँ, लेकिन आप इतना स्मरण रखे कि यह हनुमान की भूमि है।"

"यह भूमि काम्पिलीदेव की है—यह भी जानता हूँ।"

"फिर भी आप इस औरत के लिए दया की प्रार्थना करते है?"

"जी!"

"इसके तुर्क पति के लिए भी ?"

"जी !"

"जानते है, यह तुर्क सुलतान मुहम्मद की बहन का बेटा है ?"

"जानता हूँ, महाराज !"

महाराज ने महावत से कहा—दण्ड-हस्ति को दूर ले जाओ । कृष्णाजी आप जरा नीचे उतर आइए ।

कूदकर कृष्णाजी नीचे उतर आए । महावत हाथी को दूर ले गया ।

फिर कृष्णाजी ने महाराज से कहा—महाराज !

"कृष्णाजी, आप सचमुच निर्भय व्यक्ति है ! हनुमान की तरह आप जो उछले, तो मेरे मुँह से 'वाह-वाह' निकल पडी ! पाड्यो को ऐसी ही रण-शिक्षा दी जाती है ।"

"जी !"

"मेरा स्वभाव उतावला है । पिछली बार मैंने आपका अपमान कर दिया था, इसलिए मैंने इस बार शान्त रहने का निर्णय किया है । अब, कृपया, आप मुझे बतलाइए, इन सब लोगो की उपस्थिति मे बतलाइए कि किस लिए मैं इस बन्दी तुरुष्क और इसकी पत्नी को क्षमा कर दूँ ?"

"इसलिए कि महाराज, वीर पुरुष सदैव निर्बलो और अबलाओं को क्षमा करते आए है । और आप तो दक्षिणापथ के वीरश्रेष्ठ है !"

"आपकी यह बात सच है कि मुझे मृत्यु की चिन्ता नहीं है । और सुपात्र के प्रति क्षमा की, मेरे यहाँ कमी भी नही है । परन्तु मै सुपात्रो मे तुरुष्को का समावेश कभी भूलकर भी नही करता । मै तुर्क नारी को नारी नही मानता । तुरुष्क नर-मात्र को मैं नाग और तुरुष्क नारी-मात्र को नागिन मानता हूँ । यह सब आप भी जानते हैं । फिर किस लिए दया-दान दिया जाए ?"

"महाराज, आप स्वतत्र राजा है । फिर भी भगवान् विद्याशकर ने जिस विजय-धर्म और साम्राज्य की कल्पना की है, उसमे आपको श्रद्धा है ।"

"मैंने स्वय, अपनी स्वेच्छा उत्तरी सीमान्त की रक्षा का भार अपने सिर पर लिया है । स्वय अपना राज्य राजसन्यासी की समिति के अनुशासनार्थ अर्पित कर दिया है—फिर भला, आप ऐसे प्रश्न क्यो पूछ रहे हैं ?"

"हॉ, वही अनुशासन मुझे बाध्य कर रहा है।'

"लेकिन ”

"महाराज, मुझे आप उऋण होने का अवसर दीजिए। मै किरातराज के कारागार मे पडा था। मृत्यु-दण्ड मिला था। उस समय इस बहन ने मुझे मुक्त किया। अब या तो मुझे इसके ऋण से उऋण होना चाहिए, या इसके साथ मरना चाहिए।"

"कृष्णाजी, आप तो तुर्को को भली-भॉति जानते है। उनके दॉव-पेच भी भली-भॉति जानते है। तुर्क लोग अपनी विजय की कामना के सिवाय किसी नैतिक बन्धन को नहीं मानते।"

"फिर भी मैं आपसे अपनी बहन के सौभाग्य की भीख माँगता हूँ।"

'कृष्णाजी, इस मामले मे भी हमे ही पछताना पडेगा।"

"महाराज, शरण मे आए हुए और दया मॉगनेवालो पर दया बताना किसी भी मनुष्य के लिए अफसोस की बात नही।"

"मेरा मन तो मना करता है। मेरा स्वभाव भी मना करता है। परन्तु आपके साथ और राजसन्यासी के साथ हुए प्रसगो के बाद मैंने अपने मन और स्वभाव पर काबू पाने की कोशिश की है। अतः मैं शान्ति से सुनता हूँ। तुर्कों के सुलतान मुहम्मद तुगलक के मामा के बेटे पर मैं दया क्यो करूँ? यदि होनावर दुर्ग मे उसका धोखा सफल हो जाता तो मेरे या तुम्हारे ऊपर वह कोई रहम करता? कृष्णाजी! अब मेरी बात मान लीजिए और दया की ऐसी बाते छोड दीजिए। तुर्कों ने आज तक एक पल भी अपनी तलवार म्यान मे नहीं रखी। और हमे भी यही करना चाहिए।"

"यह तो ठीक है। वे लोग कभी जग नहीं छोडेगे और हम भी अपनी सावधानी नहीं छोड़ेंगे। इसका यह अर्थ नही कि हम इक्के-दुक्के लोगो पर दया न दिखलाएँ?"

"हॉ।" काम्पिलीदेव ने कहा, "काम्पिली नगरी मे तो यही एक न्याय है। यही आनेगुडी का एकमात्र साधन है। मैं तुरुष्को से युद्ध करने मे किसी साधन को बुरा नहीं मानता। तुर्क लोग भय के बिना किसी चीज से नहीं डरते।"

"महाराज! आप राजा हैं। आप शासक हैं। दक्षिणापथ की उत्तरी

दिशा के दिग्पाल है। आपके साथ मुझे विवाद करना उचित नही है। क्योकि इस प्रदेश का उत्तरदायित्व आपका है। मुझे आपसे एक बात कहनी है—अगर मेरी यह धर्म की नहन न होती, गगू महाराज की भूल का यह उपयोग न होता तो आज मै आपके सामने जीवित न खडा होता।"

महाराज हँसे। और एकाएक खूब प्रसन्न हुए हो इस प्रकार हँसकर बोले—तो कृष्णाजी मेरा भी एक ऋण पूरा करो।

"जी।"

"साफ जवाब दो कि गगू महाराज तुको का जासूस है या नही ?"

"जी ! इस समय वह किरातराज का महामत्री है। किरातराज को वारगल देने का और वहाँ पर उसका राज्याभिषेक करने का उसने प्रण किया है। इससे उसे तुको का जासूस तो मान ही लेना चाहिए। इस तथ्य का मैं साक्षी हूँ।"

"तो फिर मैंने उसे दण्ड देकर कोई गलती तो नही की ?"

"जी नही।"

"राजसन्यासी और तुम दोनो इस दण्ड मे बाधक बने थे।"

"जी ! यह तो कैसे कहा जा सकता है ! अपनी सस्कृति "

"इस समय सस्कृति की बात छोडकर राज्यादेश की बातें कीजिए। मै सस्कृति को माननेवाला नही, बल्कि राज्यादेश को माननेवाला हूँ। मै आपसे राज्यादेश की दृष्टि से पूछता हूँ।"

"इस दृष्टि से तो आप ही ठीक थे।"

"तो ठीक है। राजा के लिए तुर्कों का विश्वास करने के अतिरिक्त दूसरा महापाप नही। मेरे उतावले स्वभाव के कारण राजसन्यासी और आपकी अवहेलना हुई थी। इसका मुझे दु ख हुआ। एक पथ के दो व्यक्तियो के लिए मतभेद क्यो होना चाहिए ? परन्तु आप इतना मान लीजिए कि गगू महाराज भयकर है और भयकर ही रहेगा। आप स्वीकार कीजिए, जिससे मेरे मन का बोझ हल्का हो जाए।"

"यह तो मेरा धर्म है, राजन्। परन्तु उस बात का इस बात से क्या सम्बन्ध है ?"

"सम्बन्ध एक ही है। इतनी-सी बात आप स्वीकार कर ले कृष्णाजी, तो मेरे मन का बोझ हलका हो जाए।"

"तो राजन्, यह बोझ अवश्य दूर होगा।"

'तो कृष्णाजी, मैं अपने सदा के सशक स्वभाव और राजकीय उत्तरदायित्व को छोडकर आपके ऋण को अदा करने मे सहायता करूँगा। अरे, अमरनायक, बन्दी को मुक्त करो। यह अब से काम्पिलीगढ मे हमारा अतिथि होगा। यह और इसकी इसकी यह हमारी धर्म की बहन भी। अमरनायक, इस दण्ड-हस्ति को ले जाओ और किसी कुशल शालिहोत्र के द्वारा इसका उपचार करवाओ। हमारा राजहस्ति लाओ।"

फिर महाराज ने कृष्णाजी के सामने देखा—अब तो आप प्रसन्न हुए न? आपका ऋण चुकाने मे काम्पिलीदेव आपका सहायक हुआ। कभी-न-कभी तो आप भी हमारा ऋण चुकाने मे सहायक होगे ही। होगे न?

१५ वल्लरी

भगवान् विद्याशकर के प्रशान्त धाम से उतरते समय मनुष्य के चित्त की शान्ति को कोई बाधा न पहुँचे, ऐसा वहाँ का वातावरण था। दूर-दूर तक तुगभद्रा नदी बहती थी। पूर्वघाट की टेकरियो का वातावरण भी शान्त था। छायादार वृक्ष मोर के समान शोभित थे और रग-बिरगे फूल खिलते थे, जिन पर भाँति-भाँति के पक्षी भाँति-भाँति के मीठे गाने गाते थे।

और कृष्णाजी नायक अपने घोडे पर सवार, शान्त और स्वस्थ मन से चले जा रहे थे। भगवान् विद्याशकर के धाम से वह लौट रहे थे। जिस काम के लिए उन्होने गगू कन्याली से भेट की थी उसी काम के लिए अब वह भगवान् विद्याशकर के पास गए थे।

वारगल शहर के—वारगल दुर्ग के—दुर्गपाल, दिग्पाल, जनदेव और रणभैरव की मूर्ति कहाँ है, यह ज्योतिषी कुछ बता न सका। समर्थ ज्योतिषी समझकर जिस गगू कन्याली के पास गये थे वह तो निरा पाखण्डी निकला!

कृष्णाजी ने सोचा कि अब भगवान् विद्याशकर के पास चलना चाहिए। वहीं पता लगेगा।

परन्तु भगवान् अपने सात शिष्यो के अतिरिक्त किसी को दर्शन नहीं देते थे। एक बार राजसन्यासी बल्लालदेव भी उनसे मिलने के लिए गए थे, परन्तु वापस लौटना पड़ा। भगवान् के पट्टशिष्य माधव ने कृष्णाजी को केवल भगवान् का सन्देश सुना दिया—प्राप्त होने का उचित समय आने पर जो कुछ तू ढूँढ रहा है वह मिल जाएगा।

इतना सन्देश देकर माधव चला गया। इसके बाद तो माधव के भी दर्शन न हुए।

उत्तर निराशा से पूर्ण था, कोई आशा बँधानेवाला नहीं था, तो भी भगवान् के धाम से जो लौटता था उसके मन मे उद्विग्नता नही रहती थी।

और इसी लिए जब कृष्णाजी राह काटकर धीरे-धीरे लौट रहे थे तो उनके भी मन मे उद्विग्नता और चिन्ता नहीं थी।

एकाएक उनके घोडे ने कान खडे किये। और वह सहसा रुक गया। इससे कृष्णाजी सावधान हो गये।

हवा मे से आती हुई गूँज उन्हे सुनाई दी। उन्होने चारो ओर देखा। अपने घोडे के खडे कान देखे। उन्होने पाया कि पशु घास चरने के बजाय हवा मे से आती हुई आवाज सुनने के लिए आतुर था। फिर उन्हे पशुओं का कोलाहल सुनाई दिया।

उस समय कृष्णाजी तुगभद्रा नदी के सामनेवाले मैदान की तरफ का ढाल चढ़ रहे थे।

घोडे को उन्होने एड़ मारी, जिससे घोडा सावधान होकर चलने लगा। घोडा जहाँ पर अच्छी तरह चल अथवा चढ़ सके ऐसी टेकरी सामने थी।

उन्होने अपने घोडे को टेकरी पर चढ़ाया। जैसे-जैसे वह ऊँचा चढता गया हवा मे गूँजती हुई वह आवाज भी स्पष्ट होती गई।

लगभग तीन सौ हाथो से अधिक ऊँची टेकरी पर वह चढे। वहाँ से दूर सामने उन्होने एक अद्भुत दृश्य देखा।

मानो सारा मैदान जल उठा हो इस प्रकार उन्होने चारों ओर धुएँ के गोले ऊपर उठते, भागते हुए आदमियो और दौड़ते हुए घोड़ो को भी देखा।

और दूर—बहुत-दूर उन्होने काम्पिलीगढ को देखा।

वह वही थोडी देर तक विस्मय से, मानो रगभूमि पर कोई नाटक खेला जा रहा हो इस प्रकार देखते रहे। फिर उन्होने अपने घोडे के कॉपते शरीर को देखा और उसे थपथपाते हुए बोले—बजरग ! तू क्यो घबरा रहा है ? क्या तूने ऐसा दृश्य पहले कभी नही देखा ?

फिर उन्होने घोडे को ढाल से नीचे उतारा। काम्पिलीगढ की दिशा की ओर वह उतर आये। सामने की ओर से एक मनुष्य दौडकर आता हुआ मिला।

वह आदमी घोडे पर आते हुए इस आदमी का देखकर खडा हो गया।

"अरे, तू कौन है ? और यह सब क्या है ?"

उसकी आवाज भय से प्रकम्पित थी।

"अरे, तुम कहॉ से आते हो और कहॉ जा रहे हो ? तुम्हे नही मालूम कि देवगिरि के तुर्क सूबा ने काम्पिलीगढ पर आक्रमण कर दिया है ?"

"किस लिए ?"

"तुर्को को आक्रमण करने के लिए क्या कोई बहाना चाहिए ? काम्पिली-देव ने उन्हे किसी वजह से नाराज कर दिया होगा और तुर्को को नाराज होते देर ही क्या लगती है ?"

और अधिक बात करने के लिए रुकने के बदले वह मनुष्य भागने लगा

अब तो सारा मैदान भागने-दौडनेवाले आदमियो से भर गया।

कृष्णाजी सोचने लगे—इतने समय तक धैर्य धरकर बैठे हुए देवगिरि के सूबा को काम्पिलीगढ पर आक्रमण करने का क्या कारण मिला होगा ? लेकिन उनके इस प्रश्न का उत्तर देनेवाला कोई न था।

वह विचार मे मग्न आगे बढ़ते गये कि अचानक किसी ने उनका पैर खीचा। चौककर देखा तो एक युवा लड़की थी। वह कुरूप नहीं थी, परन्तु इस समय उसके रूप को देखने का समय न था।

"भाई, मेरी मदद करोगे ?" लड़की ने अत्यन्त दुःखी स्वर मे कहा, "मेरे पीछे मेरे पीछे " लडकी ने भय से पीछे देखा। दूर घुडसवारों का एक झुण्ड आ रहा था।

उस लड़की ने अपने पास जमीन पर पड़ी हुई पालकी को बताकर कहा,

"इस पालकी को वाहक यही पर रखकर भाग गए है। यदि मुझे तुर्को ने पकड लिया, तो ..."

एक भी शब्द बोले बिना कृष्णाजी ने उस लडकी को अपने घोडे पर बिठा लिया।

"चल, बच्चे बजरग !" कृष्णाजी ने उस लड़की को अपनी पीठ पकडे रखने की सूचना देकर घोडे को एड मारी।

घोडा सीधा दूर से आते तुर्क सवारो तक गया।

लडकी के मुँह से भय की एक चीख निकल गई।

कृष्णाजी ने कहा—धीरज रखो ! शान्त रहो ! जब तक मै जिन्दा हूँ, तुम्हे कोई पकड नही सकता !

तुर्कों के आक्रमण की कथाएँ बडी भयकर थी—भुक्तभोगी और सुनने-वाले दोनो ही के लिए भयकर ! सभी जानते थे कि तुर्क जब आते है तो सब-कुछ लूटकर ले जाते है, पराजित नही होते ! इसी से गाँव के लोगो को इनके नाम से ही भय लगता था। तुर्को का नाम सुनते ही गाँव के लोग भागने लगते और तुर्को को भी उन्हे खदेडने मे मजा आता था।

इस भयकर दृश्य को कृष्णाजी ने देखा। अभी तक चिल्लाने की आवाजे गूँज रही थी। किसी-किसी समय तुर्क घोडो के पाँवो-तले कुचले हुए बालको की चीखे आसमान फाड़ देती थी।

अब कृष्णाजी ने अपनी पीठ पकडकर बैठी हुई इस युवती के कम्पन का अनुभव किया ! वह घोड़े को रोके खडे रहे !

दूसरे सभी लोगो को छोडकर, मानो इसी एक युवती के पीछे पडे हो, इस प्रकार, थोडे-से तुर्क सवार इसकी ओर दौडे चले आ रहे थे।

उन्होने कृष्णाजी को देखा। युवती को कृष्णाजी ने घोडे की पीठ पर ले लिया है, यह भी उन्होने देखा। वे जोर से चिल्लाये। उन्होने अपने घोड़ो को एड मारी। उनके घोडे अत्यन्त तेजी से दौड़ने लगे।

युवती ने कृष्णाजी को दो-चार बार हिलाया—मुझे बचाओ, मुझे बचाओ !

परन्तु कृष्णाजी पत्थर की मूर्ति के समान बैठे रहे। वह तुर्कों की ओर ताक रहे थे। न उनका एक अग हिला, न घोड़ा ही।

पास पास और पास और अधिक पास तुर्क आ पहुँचे थे। उनके चेहरे भी दीखने लगे थे!

युवती बहुत जोरो से काँप रही थी, मानो महाज्वर चढा हो। और तब जैसे कृष्णाजी को ध्यान आया।

"बच्चे, बजरग!" कृष्णाजी ने घोडे की गर्दन पर हाथ फिराया और नीचे झुककर उसके कान मे कुछ कहा।

ऋतुपर्ण राजा के रथ के पवनगामी घोडो के कान मे मानो नल ने मत्र फूँका हो इस प्रकार वह घोडा उड चला—सीधा तुरुष्को के सामने।

सपाट मैदान के मुक्त गगन मे मानो गरुड उडा जा रहा हो, इस प्रकार बजरग दौड रहा था। और कृष्णाजी एकटक सामने देख रहे थे।

मुठभेड होने पर तुर्क सिपाही वेग से दौडते अपने घोड़ो को रोक न सके। थोडी दूर जाने पर ही उनके घोडे रुक सके। तब उन्होने अपने घोड़ो को मोडा और बजरग के पीछे दौड़ने लगे। परन्तु बजरग तो उनसे बहुत आगे निकल चुका था।

कृष्णाजी ने मुडकर देखा। सच मे वे तुर्क इसी युवती के पीछे लगे थे।

"वाह बच्चा! . वाह बेटा! वाह बजरग!" कृष्णाजी ने घोडे की गर्दन थपथपाई। घोड़ा भी मालिक की प्रशसा से खुश हुआ हो इस तरह हिनहिनाया।

अब तुर्को के घोडे धीमी चाल से, पर लगातार, बजरग का पीछा कर रहे थे।

कृष्णाजी ने अपने कन्धे की तरफ मुँह करके युवती से पूछा—ये लोग तुम्हे पकड़ने के लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे है, क्यो?

"यदि इन्होने मुझे जीवित पकड़ लिया तो मेरी चमड़ी ही उतरवा लेगे।"

"क्यों? तुमने इनका ऐसा क्या बिगाड़ा है?" कृष्णाजी को आश्चर्य हुआ।

तुर्क अपनी वासना-पूर्ति के लिए युवतियो को पकड़ा करते थे। तातार, खुरासान, बल्ख, कान्धार, बलूच और मकराना से उनके सिपाही आते थे। इन सिपाहियो का मुख्य काम युद्ध और लूटमार था। और उनकी सबसे बड़ी लूट औरते हुआ करती थी।

इसी लिए वे लोग वहीं पर आक्रमण करते जहाँ विजय निश्चित होती। जीत होने पर वे औरतों को पकड ले जाते। पकडकर ले जाई गई औरते वापस नही लौटती थी। लेकिन तुर्कों ने किसी नारी की खाल उतारी हो, ऐसा तो आज तक सुना नही गया था।

किंवदन्ती थी कि खुशरू खाँ गुजराती जब अलाउद्दीन खिलजी के पुत्र मुबारक को मारकर दिल्ली का सुलतान बना, तब इस्लाम मे दीक्षित इस मुसलमान चमार ने अपनी पिछली वफादारी याद कर मुसलमानो द्वारा पकडी गई जितनी भी औरते दिल्ली मे थी उन्हे ढूँढ-ढूँढकर एकत्र किया और आज्ञा दी कि यदि वे अपने मूल-धर्म और स्थान मे जाना चाहे तो जा सकती हे।

खुशरू खाँ गुजराती और उसके मामा रणधौल के परिवार के सदस्य और सम्बन्धी पुरुष, ऐसी जितनी औरतो से शादी करने का तैयार हुए, केवल वे ही औरते लौटी। शेष अपने मूल-धर्म की छाया न पा सकी, क्योकि धर्म और परिवार ने उन्हे अपने यहाँ रखना अस्वीकार कर दिया। जब अपने मूल-धर्म और असल वतन ने उन्हे शरण न दी तो वे लौटकर जाती भी कहाँ? क्या अपने बाप के घर-आँगन के कुओ मे डूब मरतीं?

यह पूरी कहानी ही विचित्र है। दक्षिणापथ के अनेक विद्वानो और पडितों ने इस पर खूब बिचार किया। परन्तु किसी को काई रास्ता न सूझा। उत्तरापथ के लोग तो इस प्रश्न पर सोचने को तैयार ही नही थे।

पर यह बात तो एकदम सच्ची थी कि किसी तुर्क ने अभी तक किसी भी जीवित नारी की खाल नही उतारी थी। तब वह युवती ऐसा क्यो कह रही थी?

कृष्णाजी ने थोड़ी देर रुककर पूछा—जो तुम्हे पकडने आ रहा है उसका नाम भी जानती ही होगी?

"जी हाँ! अपने पीछे जो तुर्क सवार आ रहे है वे मलिक राजी के सवार है।"

"मलिक राजी?"

"हाँ! वह देवगिरि का सूबेदार है! और इस समय वह इन सवारो के साथ है।"

"परन्तु देवगिरि का सूबेदार तो मलिक मकबूल रहमान था न ?"

"जी ! सुलतान मुहम्मद तुगलक ने उसे हाथी के पैरो-तले कुचलवा डाला और उसकी लाश किले के बाहर की दीवार से लटका दी गई !"

कृष्णाजी ने पीछे मुडकर देखा, तुर्क अब भी उनके पीछे लगे आ रहे थे।

युवती ने कहा—यह सबसे आगेवाला जो पहाड-जैसा पठान आ रहा है, यही है मलिक राजी ! इस समय देवगिरि का सूबेदार है !

फिर थोडी देर पीछे देखकर बोली—अब तो ये लोग बहुत पास आ गए है।

"यह तो इसलिए कि मैने बजरग की बाग खीच रखी है। इसे व्यर्थ मे परेशान क्यो किया जाये ?"

"परन्तु "

"चिन्ता न करो। घुड़दौड मे बजरग का कोई सानी नही। तुमने अभी बजरग की चाल देखी ही कहाँ है ?"

"तो ठीक है।" युवती ने सन्तोष की साँस ली।

कृष्णाजी ने पीछे देखकर कहा—सचमुच आदमी तो पहाड़-जैसा है। परन्तु सच ही क्या वह तुम्हारी खाल उतार लेगा ?

युवती भय से काँप उठी—मैं मै हिन्दू नही, तुर्क हूँ !

"तुम तुर्क हो ? "

"जी हाँ, मै तुर्क हूँ। यदि आप मुझे सूबेदार के क्रोध से बचा लेगे तो मे आपका एहसान जन्म-भर न भूलूँगी।"

"परन्तु परन्तु कोई तुर्क नारी तो इस प्रकार अकेली घूमती फिरती नही ! और तुम तो बिलकुल हिन्दू लगती हो।"

"मे भ्रष्टा तुर्क हूँ। मेरा नाम बल्लरी है।"

तभी पीछे से आवाज आई—ओ नौजवान यदि तुझे जिन्दा रहना है तो इस लड़की का नीचे फेक दे और अपने रास्ते पर चला जा !

और साथ ही पीछे से एक कटार हवा मे सनसनाती हुई बजरग के पिछले पैर से केवल एक हाथ के फासले पर आकर गिरी और जमीन मे धँस गई।

१६ : शक्ति का प्रदर्शन

"बजरग !" कृष्णाजी ने अपने घोडे को पुकारा, मानो वह घोड़ा नहीं, आदमी हो।

वह कहने लगे—बजरंग भूलना मत, मेरे दोस्त ! राय हरिहर, राज-सन्यासी, महाकरणाधिप और राजगुरु—सब तेरा कौशल देखना चाहते हैं ! वाह वाह बजरग ! शाबाश बजरग !!"

जरा लम्बाकर कृष्णाजी ने बजरग की मोर-जैसी पतली, कोमल गर्दन पर हाथ फिराया और पसीने से तर-बतर उसके बाजुओं पर एडी से इशारा किया।

और बजरग इस तरह उड चला, मानो उसे पख लगे हो।

"वाह, बजरग ! आज तेरी परीक्षा है ! तू भले न देखता हो, पर सारे दक्षिणापथ की आँखे तुझ पर लगी है। तुझ पर त्रिभुवन का भार है बजरग ! सावधान !!"

"भाई !" पीछे से आवाज आई। लेकिन कृष्णाजी तो बजरग की प्रशस्ति मे लीन थे। वह तो अपने घोडे से ही बातें कर रहे थे।

"वाह ! मेरे बहादुर ! सूबेदार और उसकी सेना पीछे रह गई है ! आज तुर्कों के एक भी घोडे के पास पख नहीं है ! होरमज के भूत की चोटी आज हाम्पी के मैदान के हाथ मे है ! आज तुर्कों का विजयक्षेत्र पम्पाक्षेत्र के सामने सिर झुका रहा है ! जीते रहो पट्ठे ! वाह, बजरग !"

"भाई !" पीछे से फिर से आवाज जरा जोर से आई।

"मुझे कौन बुला रहा है, तुम ?"

"हाँ, मेरी एक बात स्वीकार करेंगे ?"

"कहो।"

"तुर्कों के पहुँचने पर आप मुझे उनके हाथ मे न पड़ने देना। अपनी कटार से मेरा खात्मा कर देना। मरते-मरते तुम्हे दुआ दूँगी।"

"ऐसा न कहो ! तुम्हारी बात यदि सुन लेगा तो, अपना अपमान समझेगा। जब तक बजरग की साँस मे साँस है, उसके पैर हमेशा तुर्कों से आगे ही रहेंगे।"

"दौलताबाद का सूबा बडा दुष्ट है। वह सुलतान को कुछ कर दिखाना चाहता है। मलिक से वह सूबेदार बन गया है। आज हमारे पीछे पडा है।"

"पड़ने दो। हम भी कहाँ चुप बैठे है? अन्त मे विजयी की वन्दना होती है। अभी तो सूबा की जीत नही हुई है।"

'उसके घोडे असली अरबी घोडे है! वे बड़ी देर तक दौड सकते है।"

"सृष्टि के आरम्भ काल से ही, तेज और व्रत मे विरोध रहा हे। दोनो एक स्थान पर नही रहते। लेकिन अब देखना है, हमारे तेज मे व्रत है या नहीं और शत्रु के व्रत मे तेज है या नही? इसका रहस्य जानने का यही उचित अवसर है।"

"आप अपनी इच्छानुसार जानते-मानते रहिए। लेकिन गिरफ्तारी का मौका आ जाए तो मुझे सूबा के सिपाहियो के हाथ न पड़ने दे। मेरा वध कर देना। सूबा फिर आपको सतायेगा नहीं। क्योकि वह मेरे पीछे लगा है, आपके पीछे नहीं। बचन दीजिए।"

"वचन मैं देता हूँ, फिर?"

"फिर कुछ नही। मरते-मरते भी मै आपको आशीर्वाद दूँगी। आपके लिए खुदा से दुआ माँगूँगी।"

उत्तर मे कृष्णाजी हँसने लगे। युवती के होठो पर भी हँसी आ गई। कृष्णाजी ने बजरग को स्थिर किया। बजरग इस तरह खडा हो गया मानो उसके चारो पैर धरती मे गड गए हों। बजरग के अचानक रुकने से वल्लरी कृष्णाजी से टकरा गई। कृष्णाजी ने उसे अपने हाथ का सहारा दिया।

फिर होशियारी से पीछे देखा। उन्होने देखा कि सूबा बहुत पीछे रह गया है। उनके चेहरे पर आत्मसन्तोष छा गया। आखिर, विजय-धर्म के सूत्रधारो ने होरमज को उचित उत्तर दिया! ऐसा उत्तर कि अखिल अरब-जगत् मे हाम्पी-घाट के नाम से भूचाल आ जाएगा! वाह बजरग! वाह बजरग!!

और कृष्णाजी के मन मे एक सरल सीधा प्रश्न उठा। और सदियों तक यही प्रश्न पूछा जाता रहा। आज से पहले भारत के शासको ने घोड़ो का वश सुधारने का प्रयत्न क्यो नही किया! व्यर्थ मे विदेशों से मँगाये हुए घोड़ो पर निर्भर क्यो करते रहे?

होरमज और अन्य देशों से आये अरबी घोडे जिन बन्दरगाहो पर उतरे वहाँ उस बन्दरगाह के राजा को ही बेचे जा सकते थे—राजा की विशेष अनुमति के पश्चात् ही दूसरों को बेचे जा सकते थे।

एक विचार, एक धन्यवाद कृष्णाजी के मन मे उठा—दादैया सौमैया ने जब ऐसा विचार किया था तब उन पर कितने लोग हँसे थे!

अचानक कृष्णाजी ने आँखे सिकोडकर और अपनी आँख पर हाथ की छाया करके देखा और होठो को दाँतो मे भीच लिया।

बल्लरी ने भी पीछे देखा और चिल्लाई—शिकार अपना शिकार!

कृष्णाजी कुछ बोले नहीं।

सूबेदार मलिक राजी ने अपना घोड़ा बजरग के पीछे लगा दिया था। लेकिन बजरग थोड़ी देर रुका रहा। वह जानता था कि उसे कोई पकड़ नहीं सकता।

तुरन्त ही दो सवारो ने अपनी टोपियाँ उतारी। अन्दर से लाल झडियाँ निकालकर अपने भाले पर चढा लीं।

शेष तुर्क सूबेदार के पीछे एक ही गति से दौड़ रहे थे।

थोड़ी देर मे चारो ओर से तुर्क अपने शिकार को पकड़ने के लिए आते दिखाई दिये। सारी तुर्क सेना एक इसी कार्य मे लग गई थी।

"भाई! अपना वचन याद रखना।" वल्लरी ने कहा।

"अच्छा, मै अपना वचन याद रखूँगा, तुम भी अपना याद रखना।"

"मेरा वचन? कौन-सा?"

"तुमने अपने को मेरे भरोसे पर छोड़ा है। जो कुछ हो चुपचाप देखती जाना। विश्वास मत खोना तथा धीरज रखना। तुम जिस प्रकार अपने घर मे बैठी रहती हो उसी प्रकार मेरे घोडे पर बैठी रहना।"

"सो तो बैठी ही रहूँगी।"

"तार्तार के युद्ध मे शिकार किस प्रकार किया जाता है उसी को देखकर लोगो ने वही तरीका अपनाया है।"

"हाँ भाई! कहते हैं कि आज तक मुहम्मद तुगलक के आदमियों के हाथ से कभी शिकार नहीं छूटा।"

"तुम निश्चिन्त रहो।"

"रहूँगी भैया!"

"तो अब देखना!"

कृष्णाजी ने मुडकर पीछे देखा। वे लोग सरपट दौडे चले आ रहे थे।

सहसा कृष्णाजी ने घोडे की चाल इस तरह धीमी कर दी मानो थक गया हो। यह देखकर चारो ओर से खुशी की किलकारियाँ उठीं। और सभी सवारो के घोडो का वेग बढ गया।

पीछे से सूबेदार की काँपती आवाज सुनाई दी—इस लड़की को जीवित पकड लो और इस युवक को कत्ल कर दो! यदि इसे कोई जिन्दा पकड़ लाये तो उसे मलिक का मसनद इनाम!

इनाम का नाम सुनते ही तुर्क सिपाही बेतहाशा दौडे।

अचानक बजरग को ठोकर लगी और कृष्णाजी घोडे पर से नीचे गिर पडे। तब किसी ने वल्लरी को पकड़ने के लिए हाथ लम्बा किया। किसी ने तलवारें हाथ मे लीं तो किसी ने भाले।

परन्तु कृष्णाजी जल्दी से उठे और अपने घोडे पर चढकर भाग चले।

और तुर्क आपस मे टकरा गये। किसी का भाला किसी को लग गया। धरती पर कितने ही तुर्कों की लाशें तडपने लगीं। किसी को घोडे की लात लगी। सूबेदार खुद अपने घोडे से छूटककर लोगो के बीच मे गिर पड़ा। एक घोडे की लात उसके कपाल मे पड़ी और जोरों से खून बहने लगा। सिपाही पुनः सावधान हुए। उन्होने अपने घोड़ो की ओर देखा। आपस मे टकराने से किसी के घोड़े की टाँग टूट गई थी, किसी के घोड़े का पाँव जमीन मे धँस गया था। और सावधान होकर उन्होंने चारों ओर देखा तो वही काफिर घुड़-सवार अपने भाले पर लाल झंडी चढाकर भागा जा रहा था। और उस झडी को देखकर एक तुर्क सवार भी उसके पीछे भाग रहा था।

सूबेदार के क्रोध की सीमा न रही।

दूर से काम्पिलीगढ खिलौने के समान दिखाई दे रहा था। भागता हुआ सवार गढ़ के पास पहुँच गया। उसने लाल झडी नीचे फेंककर आवाज दी। क्या कहा इसे तो इन तुर्कों मे से कोई समझ न सका, पर गढ़ के दरवाजे खुले

और तुरन्त बन्द भी हो गए। भागता हुआ सवार सूबेदार के कैदी के साथ गढ मे घुस चुका था !

सूबेदार काम्पिलीगढ तक अपनी आवाज पहुँचेगी भी या नहीं, इसका ध्यान रखे बगैर जोर से चिल्लाया—काफिर, मेरा कैदी मुझे सौप दे। मेरा चोर मुझे लौटा दे। नहीं तो मैं तेरे किले की ईंट-से-ईंट बजा दूँगा !

१७ · वल्लरी की कहानी

आज भी मुझे वह दिन याद है। अनेक सुख आए। अनेक दु.ख आए। तब भी मै उस समय को नही भूल सकती।

भयकर पर्वत, भयकर वन-वनान्तर, भयकर नदी, भयकर गुफाएँ—रात-दिन भागते हुए मैंने उन्हे पार किया। दिनो तक दूसरा कोई व्यक्ति दृष्टि-गोचर नहीं होता ! कहते है किसी काल मे यह प्रदेश भयकर दानव वातापी का निवासस्थान था। वातापी नरभक्षी था।

और यदि आप उस प्रदेश को एक बार देख ले तो कहे कि ऐसे स्थानों मे यदि मनुष्य मनुष्य का भक्षण न करे तो उसे दूसरा कोई आहार नहीं मिल सकता !

इस प्रदेश मे अनेक पर्वत थे। अनेक वन थे। वनो मे अनेक व्याघ्र थे।

और ऐसे भीषण स्थान मे सिर्फ पाँच-दस आदमी रहते थे। भयकर वातावरण मे रहनेवाले ये लोग भी भयकर थे। उनके कार्य-कलाप भयकर थे।

मैंने पहले उनके विषय मे विशेष नही सुना था। किन्तु यहाँ आने पर इन्हीं लोगो से सुना। ये लोग गुजरात से भागकर आए थे।

मेरे जन्म से पूर्व, दिल्ली मे एक भयानक सुलतान राज्य करता था। उस सुलतान के मन मे एक भयकर सपना था : सिकन्दर ने जो काम अधूरा छोड़ दिया था, उसे पूरा करना—सम्पूर्ण भारत को विजय करना ! और इसी लिए अपने सारे फरमानों मे, राजकीय पत्रो और दस्तावेजो मे इस सुलतान का नाम, सिकन्दर-सानी के रूप मे लिखा गया है।

उस भीषण सुलतान की एक फूँक मे गुजरात उड़ गया। हजारों वर्षों का उसका इतिहास विनष्ट हो गया। उसकी अखण्डता भग हो गई।

काल बदला। गुजरात पर यदि मुहम्मद गजनी आक्रमण करता है तो गुजरात के सोलकी, जूनागढ के चूडासमा, सोमनाथ के सोमपुरा और धारा-नगरी के मिहिर भोज क्या कर सकते है, यह गुजरात ने प्रत्यक्ष दिखला दिया। और यदि गुजरात पर सिकन्दर-सानी हमला करता है तो केवल पाटन और खम्भात ही नहीं, वरन् गाँव-गाँव के लोकजन क्या कर सकते है, यह भी उन्होने दिखला दिया!

प्रत्येक प्रजाजन मन्दिरो की रक्षा के लिए कटिबद्ध होकर दौडा। राज्य-जैसी कोई चीज भी है, इसे वह भूल गया। गुजरात के कवियों ने मुहम्मद गजनी को 'त्रिपुरासुर' कहा! तीन सौ वर्ष पश्चात्, गुजराती कवियो ने सिकन्दर-सानी को 'शकर' कहकर अभ्यर्थना की।

वह तो, जो कुछ था, सो था! मैंने वे दुर्दिन देखे नही, उनके विषय मे केवल सुना है!

तब, गुजरात से भागकर जो पॉच व्यक्ति आए थे, उनमे एक पाटन का एक ब्राह्मण था। मोडपुर का एक चमार था। उस चमार की पत्नी भी उसके साथ थी और एक बालिका भी। वह बालिका मैं हूँ। मेरा नाम वल्लरी—मूलनाम वाली। कन्याली ब्राह्मण मुझे,'वल्लरी' कहा करता था। तब से मेरा नाम 'वल्लरी' हो गया। उस समय मैं लगभग पन्द्रह वर्ष की थी। तत्कालीन घटनाओं और रहस्यो को समझने के लिए यह आयु कम नहीं कही जा सकती।

उन दिनों हम एक भयकर वन मे रहते थे। क्षत्रिय महाराज डकैत का जीवन बिताते और जो कुछ लाते उससे हमारा निर्वाह होता।

मेरे पिता जाति के चर्मकार थे। मैं यह नही जानती कि उनका क्षत्रिय महाराज से कैसे और कहाँ परिचय हुआ? मेरे पिता-तगी चमार अधिक समय उनके साथ ही रहते और शेष समय मा के निकट व्यतीत करते।

मा मेरी वर्षो के पलायन और वन-जीवन के कारण बहुत रुग्ण और निर्बल हो गयी थी।

ब्राह्मण वैद्यो की विद्या भी जानता था और वह भी अधिकतर समय क्षत्रिय महाराज के साथ बिताता था!

एक दिन वह ब्राह्मण घायल होकर आया। मैने उसके सिर पर पट्टी बाँधी। सेवा-शुश्रूषा की। जब तक वह अच्छी तरह स्वस्थ न हो गया, हमारे यहीं रहा। वह बहुत गुस्सैल, चिड-चिडा और चालाक था। उसे देखते ही बिच्छुओ की याद आ जाती थी।

लेकिन जब वह शान्त रहता, बडे ज्ञान और पाडित्य की बाते करता। नीति-कथाएँ सुनाता। हँसता और हँसाता! तब ऐसा प्रतीत होता मानो इसकी देह मे एक और व्यक्ति रहता है। इसमे एक मानव और एक दानव है।

वारगल के पतन पर ही हमे वनवास के लिए बाध्य होना पडा था।

क्षत्रिय आठ-आठ दिन बाहर रहता। ब्राह्मण उसके साथ जाता और चमार घर-बार की व्यवस्था करता। वे लोग आते और सामान छोडकर चले जाते। चमार मे विशेष कोई गुण न था, परन्तु अपने क्षत्रिय कृपावन्त के प्रति वफादार था। हमारे दिन बीत रहे थे—कभी सुख मे, कभी दु ख मे, कभी राग-रग मे।

अन्त मे दुर्दिन आया।

मेरी मा बहुत बीमार हुई। बिछौने पर पड़ गई तो फिर न उठ सकी। मैं रोती रह गई और मा चल बसी।

उस दिन, दिन-भर पिताजी चुप रहे। ब्राह्मण की आँखो मे भी आँसू भर-भर आते थे! परन्तु मुझे आज भी याद है कि उस वीर क्षत्रिय की मूक उदासीनता के समक्ष इन दोनो व्यक्तियों की व्यग्रता नगण्य थी।

क्षत्रिय महाराज जब-तब होठ चबाता! होठ से खून बहने लगता। इस तरह वह कसकर मुट्ठी बाँध लेता कि हथेलियाँ लहू से लाल हो जातीं। कभी उसका चेहरा इतना भयकर हो जाता कि दानव देखते तो वे भी दहल जाते! कभी सूनी दृष्टि से वह आकाश को देखता रह जाता। कभी उसका चेहरा विशाल, सूने और भूतिया राजभवन के खंडहर-सा प्रतीत होता!

कई दिन तक क्षत्रिय महाराज ने कुछ न खाया-पीया। फिर एक रात उसने तीनों को बुलाया, अपने पास बिठाया और कहने लगा—भाई तगी! भाई गगू!!

"गगू? गगू कन्याली?" कहानी सुननेवाले ने बीच मे पूछा।

"हाँ, वही !"

क्षत्रिय महाराज ने कहा—हमने अपने युद्ध मे, अपने सघर्ष मे, कहीं कोई कमी न रखी ! लेकिन आज लगता है कि अन्त निकट आ गया है। तुरुष्क आततायी तुगभद्रा तक आ पहुँचे है । देर-अबेर वे नदी को पार कर लेंगे—आज नहीं तो साल-दो साल मे ! उनके घोडे कावेरी नदी मे पानी पीएँगे। और उनके पैर—उनकी पापपूर्ण परछाईं रामेश्वर और अगस्त्येश्वर की पवित्र धरती पर भी पडेगी।

"महाराज !" गगू महाराज ने पूछा, "यह क्या बात है ? आपकी वाणी मे ऐसी उदासीनता !"

"हाँ, महाकाल की निर्माण-रेखा ही ऐसी है ! हमारे इतिहास की इति हुई। अब तुरुष्को के इतिहास का आरम्भ होता है ! मै आप लोगो के स्नेह और सहयोग को कभी विस्मृत न कर सकूँगा आगामी कल के उदयन पर तुम लोग देश के इतिहास की माँग का साथ दे पाओगे या नहीं, यह मै कैसे कह सकता हूँ, क्योंकि जब देश का पतन होता है, तब सबसे पहले उसके इतिहास का पतन होता है। बीस-बाईस साल तक मेरी धर्म बहन ने मेरी सेवा की और वह चल बसी। जाति से वह चमारिन थी, किन्तु उसकी वीरता-धीरता क्षत्राणियो और ब्राह्मणियो से कदापि कम न थी ! उसका देहान्त मुझे रात-दिन दुःखी करता है। अब इस नन्हीं बालिका की अकाल मृत्यु का उत्तर-दायित्व मैं अपने सिर पर नहीं लेना चाहता। इसलिए भाई तगी, तू लौट जा, विनाश से इस बालिका की रक्षा कर ! मैं तुझे अनुमति देता हूँ। तूने नकुल, सहदेव, द्रोण और कृपाचार्य से भी अधिक स्वामिभक्ति और प्रेम-भक्ति प्रदर्शित की है, लेकिन अब लौट जा और पिता का अपना कर्त्तव्य पूरा कर !"

"परन्तु महाराज !"

"परन्तु-वरन्तु नहीं तगी ! तू चला जा ! शान्ति और सन्तोष से रहना है और तुर्कों के बीच मे ही तुझे रहना पडेगा और बिना मा की इस बालिका का लालन-पालन करना होगा। इस बालिका को तनिक भी आँच न आए, यह ध्यान रखते हुए तुझे जो-कुछ करना पड़े करना ! यह बालिका एक

धर्मात्मा और वीरांगना नारी की सन्तान है। जा, इसकी रक्षा कर, मेरी आज्ञा है, मेरा आशीष है। और बीस-बीस वर्षों की सेवा का उपहार मै क्या दूँ? देने मे इस समय असमर्थ हूँ और बिना धन के इस नन्हीं बालिका का सरक्षण नहीं होगा, इसलिए मेरी यह तलवार लेता जा। मेरा काम लोहे की तलवार से चल जाएगा।"

ओह! वह तलवार! भारी और चमकीली तलवार! उसकी सारी मूठ सोने की थी और उस पर हीरे-जवाहरात जडे थे। ऐसी थी वह तलवार! जैसे धक-धक जलता अगारा हो!

मेरे पिता ने छूते ही वह तलवार वापस क्षत्रिय महाराज के चरणो मे रख दी—महाराज, मैं आपकी आधी आज्ञा सिर-माथे पर चढाता हूँ। बालिका का लालन-पालन करूँगा। और आपकी शेष आधी आज्ञा अस्वीकार करता हूँ। यह तलवार आपके हाथ मे शोभा दे सकती है। इसे मैं छुऊँगा भी नहीं।

पीठ फेरकर क्षत्रिय महाराज धीमे-धीमे वन मे ओझल हो गए। उनका सुख-दु.ख, उनकी पीठ देखने पर ही विदित हो सकता था। दूर की मजिल के लिए बोझा ढोते-ढोते, जैसे वह पीठ थककर चूर हो गई हो, अचानक भार के कारण टूट गई हो! क्षत्रिय महाराज गए तो फिर न लौटे!

उनके जाने पर, पीछे, गगू महाराज और तगी चमार रह गए।

तगी बोला—महाराज, अब तो मैं भी चला। बीस-बाईस वर्ष का साथ! न कुछ मिला तो भूखे रहे। मिला तो पकाकर खाया। साथ रहे, साथ मे पलायन किया। एक साथ जूझे और एक साथ सहन किया! आपसे इस विदा-वेला मे इतना ही आशीर्वाद माँगता हूँ कि मेरी इस बच्ची का कल्याण हो!

"तगी, मैं तुझे आशीर्वाद तो नहीं दूँगा, लेकिन एक वचन जरूर मागूँगा! हमारा सम्बन्ध कभी भुलाया नहीं जा सकता। महाराज आज इस प्रकार उदास हैं, जैसे देश का अन्तिम मोह भी विदा हो रहा है! उन्होने तेरी पत्नी का मरण देखा, दुःख देखा! वरना अपनी तलवार वे देते? पगले! उस तलवार मे इतना धन छिपा है कि तेरे और मेरे-जैसे आदमी हजारों वर्षों तक खा-पी सके। खैर! अब एक काम कर! तेरी यह बेटी विवाह के योग्य

है और मैं भी विवाह के योग्य हूँ, अत. हमारे सम्बन्ध को वज्रलेप बनाने के लिए, इस लडकी का ब्याह मुझसे कर दे !"

सुनकर, मेरे पिता अवाक् रह गए—महाराज, आप कन्याली के पवित्र ब्राह्मण और मै क्षुद्र चमार ! विवाह कैसे हो सकता है ?

"चमार और ब्राह्मण ! महादेव और विष्णु ! बस ! इसी मे हमने सब कुछ गुमा दिया है तगी ! तुझे 'हाँ' कहना हो तो, कह !"

"महाराज, मैंने कभी आपका आदेश अस्वीकार किया है ? और ढूँढने पर भी आप-जैसा वर इसे कहाँ मिल सकता है ! आप दान माँगते है, तो मै दान देता हूँ। 'ना' नहीं कहता !"

जब एक-दो घडी के वनवास पर क्षत्रिय महाराज लौटे तो उन्हे मेरे विवाह-सम्बन्ध के विषय मे सवाद मिला। उन्होंने न 'हाँ,' न 'ना' ही की। वे तो चुप ही रहे। और वनैले ईंधन से प्रकटित लग्न-होम की साक्षी मे गगू महाराज से मेरा विवाह हो गया !

गगू महाराज ने कहा—तगी, अब तू जा। अपनी पुत्री को भी साथ ले जा !

फिर मेरी ओर देखकर बोले—वल्लरी, तुम आज से मेरी पत्नी हो !

और उन्होंने अपना यज्ञोपवीत उतारकर मुझे सौपते हुए कहा था—आज जनेऊ पहनने का मेरा अधिकार समाप्त हो गया, वल्लरी ! जिस दिन मुझे यह अधिकार पुन. प्राप्त होगा, उस दिन तक मेरे ब्राह्मणत्व के इस प्रतीक को तुम सहेजकर रखना !

इस प्रकार, मेरा व्याह हुआ ! और मेरे ऊपर पत्नी का दायित्व आया। मेरे पिता और मेरे पति—एक मोची और दूसरा ब्राह्मण दोनो लम्बे समय के साथी—बाद मे थोड़ी बातें की। मुझे उनकी बातो में दिलचस्पी न थी। जो कल तक मेरे पिता के समान था, आज वह मेरा पति बना—मेरी मा की मृत्यु के चार दिन बाद ही ! यदि मेरी मा जीवित होती तो उसे यह बात पसन्द आती या नहीं—यही प्रश्न मेरे मन मे उठता रहा।

महाराज ने रसोई बनाई। हम लोगों ने खाना खाकर आराम किया। सुख-दु.ख की बातें हुईं।

फिर मेरी विदा के लिए मेरे पिता ने तैयारी की। दुनिया की रीति है कि शादी करके लडकी पति के घर जाती है, परन्तु मैं तो शादी करके पति के घर से निकली हूँ।

"वल्लरी, बेटी!" मेरे पिता ने मुझसे कहा, "बीस-बीस वर्षों की जोड़ी हमारी आज टूट रही है! यह किसी दूसरे कारण से नही, एक तेरे ही कारण! आज मेरे दोनो महाराजों की इच्छा है एक तुझी को बचाने की! इन्होने तुझे बचाने के लिए क्या-क्या किया है, यह मैं और मेरे भगवान ही जानते है! आज तक मैने इनकी किसी भी बात को मानने से इनकार नहीं किया, तो फिर आज कैसे कर दूँ?"

मेरे पिता की आँखो मे आँसू आ गए। मुझे छोडने मे पिता के दु ख का कारण मै नही जान सकी।

"बेटा! अभी तेरी उम्र छोटी है। आज तक तूने थोडी ही बाते देखी-सुनी है। जैसे-जैसे तू बडी होती जाएगी वैसे-वैसे तू इन बातो का मर्म समझती जाएगी। बेटा वल्लरी! एक बात याद रखना कि तेरे पति ने ब्राह्मण-धर्म त्याग दिया है। वर्णसकर से भी वह नीच गिने जाते है। विप्र-विनोदी कहलाते है। उसने तुझे जनेऊ दिया है, अपना जनेऊ, जिसे अपने हाथो उसने राजी-खुशी से त्याग दिया है! उसे तू सँभालकर रखना! इस पवित्र स्थान से, पवित्र धर्मक्षेत्र से अब विदा ले ले। अपने पति का आशीर्वाद ले ले। तब हम चलेंगे।"

तब पिताजी ने क्षत्रिय-राज के चरणो पर हाथ रखे। पिताजी के आँसू बहकर उनके चरणो पर गिर रहे थे।

अचानक क्षत्रिय राजा ने तगी के—मेरे पिता के—सिर पर हाथ रखकर कहा—जाओ, तुम्हारा मार्ग मगलमय हो!

फिर बाद मे, वन्दना करने के लिए मैं नीचे झुकी तो उन्होने मेरा सिर ऊपर उठाया।

और फिर . अरे ईश्वर, आज भी मुझे याद है वे रो पडे थे! और मेरे सिर पर हाथ फेरकर उन्होंने कहा था—बेटी बेटी बेटी, तुझे विदा देते हुए मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं अपने धर्म को विदा दे रहा हूँ। और यदि

मैं तुझे रखने का लालच करता हूँ तो धर्म से द्रोह करता हूँ। जा बेटी सुख से रहना !

बाद मे मेरे पति गगू महाराज ने कहा—अब तू जा तगी, जल्दी जा। मैं महाराज के साथ रहूँगा।

थोडी देर तगी को सामने देखकर गंगू महाराज बोले—तगी ! आज हम दोनो ने जो बाते की है, उन्हे भूलना मत। बीस वर्ष का साथ मत भूलना। आज से मै ब्राह्मण नहीं ब्रह्मराक्षस हूँ ! काला नाग हूँ। थोडे दिनो पश्चात् मैं भी तुर्को के बीच आ जाऊँगा।

और फिर हमने वहाँ से विदा ली। रास्ते मे तुर्कों के घुड़सवारों का झुड मिला। उन्होंने हमे रोककर पूछा—क्या तुम्हारी भेंट करण से हुई है ?

मेरे पिता ने कहा—नहीं।

तुर्क मलिक उनके झुड का नायक था। उसने हमे एक घोडा दिया और उस पर हम दोनो—बाप-बेटी को बिठाकर, पकड़कर ले गया।

हमारे पुराने निवास-स्थान को उन्होंने घेर लिया। और अन्दर से गगू कन्याली बाहर निकला।

परन्तु यह गगू महाराज कैसा था ? ब्रह्मराक्षस से भी भयकर उसका चेहरा था ! वह लँगडाता हुआ चला आ रहा था।

लँगड़ाता हुआ वह आया। उसकी आँखे अर्द्धविक्षिप्त की तरह चमक रही थीं। उसका सारा शरीर लहू-लुहान था। और एक हाथ मे लहू से भरी तलवार थी और दूसरे हाथ मे सिर। इस मस्तक को देखकर मैं चिल्ला पड़ी। यह सिर क्षत्रिय राजा का था—वही राजा जो मुझे विदा देते समय रोये थे ! यह वही थे जिन्हे तुर्क 'करण' नाम से ढूँढ रहे थे। उनका सिर ब्रह्मराक्षस-जैसे गगू के हाथ मे था। तुर्क मलिक से उसने कहा—यह लो सिर, जिसे तुम ढूँढ़ते थे। मैंने उसका वध किया है।

मलिक ने सिर देखकर कहा—हाँ यही है ! इसे मारनेवाला तू कौन है ?

"सुनो मलिक ?" गगू ने कहा। उसकी आवाज़ मे इतनी कर्कशता थी कि मलिक भी दो कदम पीछे हट गया। "सुनो मलिक ! इस सम्बन्ध में जो बातें होंगी वह बाद मे करें, तो अच्छा रहेगा। जरूरी बात तो यही है कि

मैंने इसका शिरच्छेद किया है। और तुम्हारी आँखो का काँटा निकाल दिया है। मैं ही अब इनाम का हकदार हूँ। मै तुम्हारे साथ ही आनेवाला हूँ, इसलिए चिन्ता न करो।"

मेरे पिता और मै आश्चर्यचकित रह गए। हम वीर राजपूत के अपराधी थे। मेरे और मेरे पिता के कठ से गगू महाराज के इस घोर कृत्य के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं निकला!

तुर्क मलिक वही पर खडा रहा। और गगू महाराज ने शव के धड और सिर का दाह-सस्कार आरम्भ किया!

बाद मे पीछे एक नजर देखे बिना गगू महाराज तुर्कों के साथ चल दिया और हम भी तुर्कों के साथ चले जा रहे थे।

हम बन्दी के रूप मे देवगिरि पहुँचे। वहाँ नियम था कि जिसे जीवित रहना हो वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले।

गगू महाराज ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। मेरे पिता ने भी इस्लाम स्वीकार किया और मैं, जब मेरे पिता और पति दोनो एक ही रास्ते पर जा रहे हों तो और कर ही क्या सकती थी।

जिस समय मेरे पति और पिता अलग हुए उस समय दोनो ने कहा था कि मैं तुम्हे भूलूँगा नहीं। एक पल दोनो एक-दूसरे के सामने देखते रह गए और बाद मे गगू महाराज पीठ फेरकर चला गया।

देवगिरि मे—दौलताबाद मे एक दिन मलिको के मलिक सुलतान मुहम्मद ने मेरे पिता को निमत्रित किया।

मेरे पिता आए—हाथी पर चढ़ाकर एक बालिका को लाये जो मेरी ही उम्र की थी!

मेरे पिता ने कहा—वल्लरी! आज से यह मेरी लडकी है और तेरी बहन है। इसका नाम मेहर है। गुजरात का क्षुद्र खुशरू खॉ गुजराती दिल्ली का सुलतान बना है। बेटी, वल्लरी! गुजरात को नष्ट करनेवाले अलाउद्दीन खिलजी के पूरे परिवार को नष्ट करके वह सुलतान बना है। वर्तमान सुलतान मुहम्मद और उसका बाप दोनो इस खुशरू खॉ के सेवक है। तातार से दोनो को बुलाकर खुशरू खॉ ने इनको मलिक बनाया।

सुलतान हिसामुद्दीन के सम्बन्धी बनकर इन्होंने सुलतान को मार डाला। मरते समय सुलतान हिसामुद्दीन उर्फ खुशरू खॉ ने फखरूद्दीन मलिक उर्फ आज के सुलतान मुहम्मद से विनती की थी—फखरू, हमने लडाई के मैदान मे आपस मे लडकर भी साथ-साथ नमक खाया है। मैं अपने लिए दया नही मॉग रहा, मेरी जान लेनी तेरे लिए जरूरी है। लेकिन यह मेरी पुत्री मेहर है, इसकी हिफाजत करना—हम पहले मित्र थे इसलिए।

यह लडकी वही मेहर है। मुहम्मद तुगलक को विचार आया, मैं इसकी रक्षा किस प्रकार कर सकूँगा। मैं तो हमेशा लड़ाई के मैदान मे रहता हूँ। आखिर सुलतान ने मेरे पिता को बुलवाया। और उन्होंने लड़की मेरे पिता को सौप दी और उसका अपनी पुत्री के समान पालन करने को कहा। मेरे पिता को मलिक बनाया गया। रहने के लिए महल दिया गया, घोडे दिए और धन दिया। मेरे पिता देवगिरि के सूबेदार की कचहरी के अमलदार बन गये।

सुलतान मुहम्मद को ऐसे समय मेरे पिता की याद क्यो आई, यह मैं न जान सकी।

तब मुझे अचानक याद आया कि जिसे मैं 'राजपूत' के नाम से पहचानती थी वह गुजराज का महावीर, महारथी करणराय था! मेरे पति ने—रायकरण के पुराने साथी ने—अपनी रक्षा के लिए अपने हाथों वह हत्या की थी!

काम्पिलीदेव ने कहा—वल्लरी! तुम शोक न करो। ब्राह्मण से जो ब्रह्म-राक्षस हो गया उसके लिए क्या भला और क्या बुरा! वह शैतान. पापी हत्यारा

अचानक उन्हे याद आया कि वह गगू महाराज की निन्दा उसकी पत्नी के सामने कर रहे है। पति चाहे जैसा भी हो, और पत्नी भी कैसी ही क्यो न हो मानव-मात्र को एक-दूसरे की निन्दा सुनने मे सकोच होता है।

इसलिए काम्पिलीदेव ने कहा—होनेवाले तथ्य को कौन मिथ्या साबित कर सकता है?

थोड़ी देर रुककर वल्लरी ने अपनी कहानी आगे बढाई—रक्तपात, राज्यों की उथल-पुथल, और राज-युद्धो के लहू के सागर मे जिस प्रकार दो लकडी के टुकडे अनायास इकट्ठे होते है उसी प्रकार दो युवतियाँ इकट्ठी हुई—एक नीच की लडकी, और दूसरी चमार की।

और हम दोनो का प्रेम सगी बहनो-जैसा था।

हमारे इन सुखी दिनो मे हम दोनो के लिए अलग-अलग एक-एक विपत्ति थी, ऐसी जिसे टाली न जा सके। मेहर से सुलतान मुहम्मद बार-बार मिलने आते थे। उन्होने दिल्ली से अपना निवास-स्थान हटाकर देवगिरि मे स्थापित कर लिया। और मुझसे मेरा पति मिलने आता। पति का अधिकार तो उसके पास था नही। वह कहता—आज तो तू लोकापवाद से मेरी पत्नी है, परन्तु जिस दिन अपनी जनेऊ मैं तुझसे ले लूँगा तब तू लोक व्यवहार से भी मेरी पत्नी बन जाएगी।

उसकी इतनी-सी बात के लिए मैं उस भयकर आदमी की ऋणी हूँ।

हमारे सुख के दिनों मे विसवाद इतना-सा था कि एक-दो बार सुलतान मुहम्मद अपने किसी सम्बन्धी के लड़के को, जिसका नाम गैरसप्पा था, लेकर आये थे। मैं यह अच्छी तरह नहीं जानती कि वह किसका लडका था।

गैरसप्पा तुर्को का शानेशमशीर था। वह बड़ा ही पराक्रमी था। तब से मेहर के विसवादी जीवन मे सुसवाद आया। दोनो को एक-दूसरे के निकट लाने मे मलिक रहमान तगी की सहायता मिली।

मेरा पति सारे दिन दौड-धूप करता रहता। उससे भी गैरसप्पा और मेहर की बातें छिपी न रह सकीं।

और उसने मेरे पिता मलिक रहमान और मेरी सहेली मेहर दोनो को सलाह दी और समझाया कि मेहर सुलतान मुहम्मद के प्रेम को बढ़ाये और गैरसप्पा के प्रेम को कम करे।

परन्तु मेहर ने तो मुहम्मद तुगलक के बदले गैरसप्पा को ही पसन्द किया। सुलतान ने इस चोट को युद्ध के खून मे डुबाने की कोशिश की और मेहर को विदा कर दिया। गैरसप्पा को सागर का सूबेदार नियुक्त किया गया।

मेहर के पिता ने तुर्कों के घोर सागर के बीच भी ठहर सके ऐसे दृढ

गुजरात की कल्पना की थी। परन्तु यह कल्पना मित्र-द्रोह के घोर गह्वर मे बह गई और उन्हे फाँसी के मच तक खींच लाई।

एक नीच की लडकी, दूसरी चमार की लडकी, समाज मे दोनो मे से कोई भी ऊँचा नहीं। दोनो मे से किसी को भावी समाज की चिन्ता नही।

मैं नही जानती थी कि गगू महाराज किस लिए इतनी दौड़-धूप करते थे और इससे उन्हे क्या मिलता था?

"मैं या कृष्णाजी दोनो मे से कोई भी इस बात के लिए कुछ नहीं कह सकते। तुम उनकी पत्नी हो। और पत्नी को चाहिए कि वह अपने पति के बारे मे बुरा न बोले। यही हमारे समाज की पुरानी प्रणाली है, इसलिए हम चुप है।"

यह नही कि मैं कुछ समझती नहीं, वल्लरी ने कहा, चाहे मैं जानती न रही हूँ, परन्तु न जानी हुई वस्तुएँ कम है और जानी हुई अधिक है। मेरे पति ने थोडे समय के लिए देवगिरि मे अड्डा जमाया था। इससे कई अच्छे-अच्छे मलिकों से उनकी पहचान हो गई थी। यह सब किस लिए होता था, मुझे मालूम नहीं। कभी वे लोग हमारे घर पर आते थे तब पिताजी भी उनके यहाँ जाया करते थे।

जब कभी मैं मेहर से मिलती तब हम आपस मे बाते करती थीं। जिसके पति का जीवन ही जेल मे बीतता हो उसकी पत्नी से क्या बात की जा सकती है? हमारे पतियों की, पति के मित्रों की, परिवार के लोगो की। और सब मे हमे एक बात मुख्य लगी कि तुर्क होने के बाद मेरे पिता के स्वभाव मे बहुत परिवर्तन हो गया था। मालूम नहीं किस इनाम के लोभ मे पड़कर मेरे पति ने रायकरण को मारा था। अब उनके मुँह से गुजरात की बाते या भूतकाल की बाते नही निकलती थीं।

एक बात कभी छिपी नहीं रह सकी थी—मेरे पिता और मेरे पति तुर्कों के लिए ही जीवित थे, तुर्को के दास बनकर।

एक दिन मेहर मेरे पास रोते-रोते आई। और बोली कि सुलतान

मुहम्मद ने गैरसप्पा को देशनिकाले का दण्ड दे दिया है। इस दण्ड के कारण मेरे पिता थे। मलिक रहमान तगी की सलाह से गैरसप्पा को देश निकाला दिया गया था।

सुलतान मुहम्मद की इच्छा थी कि मेहर गैरसप्पा को अकेला जाने दे और खुद मलिक रहमान तगी के यहाँ रहे। परन्तु मेरे पिता के बहुत समझाने पर भी मेहर गैरसप्पा के साथ चली गई।

जब सुलतान मुहम्मद को इस बात का पता चला तो उसके क्रोध का पार न रहा। मेहर को गैरसप्पा के साथ जाने देने के अपराध मे देवगिरि के सूबेदार मकबूर को मौत की सजा दी। उसके स्थान पर मलिक राजी नामक नया सूबेदार नियुक्त किया गया।

बाद मे ये दोनो मेरे पिताजी के पास आये।

मुझे एक बात मालूम थी कि सुलतान मुहम्मद मेहर की ओर आकर्षित था। उसे भुलाने के लिए उसने अनेको काम उतावलेपन से और अधपगले के समान किये थे।

मुझे यह भी मालूम था कि मलिक राजी एक भयकर आदमी है। उसने सुलतान की हाँ-मे-हाँ मिलाने के लिए कई भयकर-से-भयकर काम किए थे। लोग उसे 'जल्लाद' नाम से पुकारते थे।

देवगिरि मे ही नही, सारी तुर्क सल्तनत मे सबसे अधिक भयकर इन दो आदमियो को पिता के पास आया देख मुझे अपने पिता के विषय मे चिन्ता होने लगी। मुझे मालूम था कि जिस आदमी को सुलतान हाथी के सिर पर बिठाता है वह जल्दी ही हाथी के नीचे कुचला जाता है।

इसलिए पिताजी के साथ जो बातें होतीं मैं उनको सुनती रहती थी। तुर्क होने के पश्चात् पिताजी ने एक तुर्क औरत से शादी कर ली थी। पर घर की मालकिन मैं ही थी। वह औरत गरीब थी। खाने को अन्न और पहनने को कपडे के अतिरिक्त उसे कुछ नहीं चाहिए था। यह हमेशा मुझे खुश रखने का प्रयत्न करती रहती थी। मेरे मन मे भी उसके लिए करुणा और दया थी।

गैरसप्पा को दण्ड, उसको देश-निकाला यह सब तो नाटक था।

दक्षिणापथ के हिन्दू चार भाषाओ के चार सम्प्रदायो के अनुयायियो को एक करने के लिए प्रयत्न करते थे ।

और यदि सभी एक हो जाएँ तो तुर्को की आज तक की विजयो का सिलसिला रुक जाए । तुर्को के हाथो मरना अच्छा, परन्तु एक सम्प्रदाय का दूसरे सम्प्रदाय से हाथ मिलाना बुरा, यही हिन्दुओ के जीवन का परम लक्ष्य था । और यही लक्ष्य तुर्को के लिए, विजय के द्वार खोलने की चाभी थी ।

यह न होने देना ही अच्छा है । तुर्को की धाक और शान मे कभी न आनी चाहिए । दक्षिणापथ तुर्को का विजित प्रदेश होना ही चाहिए ।

होनावर के चारो ओर सागर था और उदयभानु समुद्र का राजा था। तुर्क समुद्र के बारे मे कुछ जानते न थे, इसलिए उन्होने होनावर की ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं ।

वातापी का किला सगमराय के हाथ मे था और उसे उदयभानु और काम्पिलीगढ दोनो से मदद मिलती थी ।

काम्पिलीगढ के पतन पर मदुरा का मार्ग खुल जाता है। और काम्पिलीगढ मे तुर्को का कोई जासूस जाता है तो सुलतान को फायदा होता है, क्योकि इस समय सुलतान को पैसे की कमी है । इसलिए वह लम्बी चढाई नही कर सकता है ।

लेकिन मुश्किल तो यह है कि काम्पिलीगढ़ मे किसी तुर्क का प्रवेश कैसे हो ?

इसलिए कोई राजवशी तुर्क वहाँ जाकर शरण माँग सके तो उसे वहाँ सहारा मिल सके । और इसी लिए गैरसप्पा का यह नाटक रचने मे आया है।

मैं तुर्क हूँ । परन्तु मेरी हड्डियाँ और तुम्हारी हड्डियाँ तो एक है । तुम सबको चेतावनी देने के ही लिए तो मै आई हूँ । मेहर मेरी अमानत है। उसके विचारो को मैं जानती हूँ । वह अनजान है । परन्तु गैरसप्पा तुम्हारा शरणागत नही चोर है, तुर्को का जासूस है । इसी लिए मैं आई हूँ ।

अब तुम सब लोगों को जैसा ठीक लगे करो !

मेरी रामकहानी पूरी हो गई !

१८ राजनीति

जिस प्रकार पहाड़ पर सन्ध्या की किरणे पडती हैं उसी प्रकार काम्पिलीदेव का चेहरा लोहित-वर्ण हो गया। पहले भी आनेगुडी का चेहरा कभी सौम्य नहीं था, परन्तु इस समय तो वही चेहरा आग के लाल गोले के समान हो रहा था।

उनके रोष की सीमा न रही। भयकर रोषपूर्ण शब्दो मे उन्होने कहा—अब मुझे समझ मे आया कि दक्षिणापथ मे आरम्भ से ही क्षात्र-परम्परा क्यो नही है। शायद इसी लिए तुर्क तुगभद्रा नदी के पार अपना अधिकार नहीं जमा सके। मैं यद्यपि इतिहास का जानकार नहीं हूँ तो भी अनुभव से तो लाभ उठा ही सकता हूँ।

कृष्णाजी नायक पर अपने रोष से लाल हो रहे नयनों को स्थिर कर उन्होंने कहा—कृष्णाजी! काम्पिली के प्रति तुम्हारे मन मे कोई मोह नहीं है। मैंने तुम्हारी बात दो बार मानी और दोनो बार तुर्क जासूस मेरे हाथ से निकल गये। अब कृपा करके चुप रहना!

"महाराज! "

"अब चुप रहोगे तो मैं तुम्हारा ऋणी रहूँगा। यह बात सत्य है कि तुम और मैं समान पदवाले है, परन्तु तुम्हारी और मेरी जवाबदारियाँ अलग-अलग है। तुम्हे अभी अपना राज्य प्राप्त करना है किन्तु मुझे तो प्राप्त हुए राज्य की रक्षा करना है।"

"महाराज " कृष्णाजी नायक बोलने जा ही रहे थे कि काम्पिलीदेव ने हाथ ऊँचा करके रोक दिया।

"मेरे पछतावे की कोई सीमा नही है, कृष्णाजी! मैं सच्चा था और तुम झूठे थे—यह बात मैंने तुम्हारे कहने से ही मान ली थी। इसलिए मुझे अफसोस हुआ। परन्तु अब तो मुझ पर कृपा करो! धैर्य-शक्ति मुझ मे बहुत कम है, जितनी है उतनी पछतावे की आग मे जल रही है। अब कृपया उसे अधिक मत भड़काओ।"

"परन्तु महाराज..."

काम्पिलीदेव ने सुना नही। पीठ मोडकर वहाँ से चले गये। उन्होने जोर से ताली बजाई और चिल्लाकर बोले—अरे, बाहर कौन है?

एक गरुड़ आया, प्रणाम कर खडा रहा।

"अमरनायक नागदेव को बुलाओ।"

गरुड चला गया।

वल्लरी ने कहा—महाराज! मेरी बात सुनेंगे?

मैं तुम्हारी बात सुनने से कभी इनकार कर सकता हूँ? यह सत्य है कि तुम तुर्क हो, परन्तु तुम्हारे हृदय-गह्वर से तुम्हारी भूमि का अन्न बोल रहा है। बोलो, क्या कहना चाहती हो?"

"महाराज! मैंने अपनी भूमि के राजा को मृत्यु-पर्यन्त धर्म-सग्राम के लिए लडते देखा है। पिताजी को तुर्कों का सामना करते देखा है। गगू महाराज को ब्राह्मणत्व छोड़कर क्षात्र-धर्म अपनाते देखा है। मेरा पति होते हुए भी मैंने उनको ब्रह्मराक्षस बनते देखा है। बीस-बाईस वर्षों के बाद उनसे धन की तृष्णा रोकी न जा सकी, तब इसके लिए मैंने उन्हे राजहत्या करते भी देखा है। जो तुर्क रायकरण की अकाल हत्या के लिए आए थे, और जिनके आश्वासन पर मेरे पिता और पति तुर्क धर्म स्वीकार करने को तत्पर हो गये, उनके सरदार का नाम गैरसप्पा बहाउद्दीन था।"

"यह तो मैं पहले ही समझ गया था।" महाराज ने कहा, "अब मैं तुम्हे एक बात बताता हूँ। गुजरात के धन-भाडार के राजचिन्ह के समान जिस तलवार के लिए तुम्हारे पति ने बीस वर्ष की सेवा पर पानी फेरकर राजहत्या का पाप किया, उसमे से एक छोटा-सा हीरा भी वह न बेच सका।"

"यह तो अच्छा हुआ महाराज!" वल्लरी ने कहा, "अब मेरी एक विनती सुनिए।"

"आज तो मैं किसी की विनती सुनने लायक नहीं हूँ। हाँ, अपनी विनती तुम खुशी से कहो।"

"महाराज! मेरा दिल तुर्कों के बीच नहीं, वरन् आपके और आपके साथियों के बीच मे है, इसी लिए तो मैं अपने पिता को रुष्टकर, अपने पति के विरुद्ध जाकर भी, यहाँ आई हूँ। यदि मैं देवगिरि के सूबेदार के हाथ पकड़ी

महाराज वल्लरी की पीठ को ही देख रहे थे जब तक कि वह उनकी नजर मे ओझल न हो गई । बाद मे कृष्णाजी की ओर मुडे ।

कृष्णाजी को बोलता देखकर महाराज ने कहा—आपको भी मेरा यही जवाब है !

"महाराज ! मेरी एक बात सुनेंगे ?"

"नहीं ! मै इस समय किसी की भी बात सुनने को तैयार नही हूँ—खासतौर से आपकी तो बिलकुल नही । अब मेरी यह भीष्म-प्रतिज्ञा है कि किसी तुर्क जासूस को मै जीवित नही रहने दूँगा ।"

"तो भी महाराज, मेरी इतनी बात सुनिए ।" कृष्णाजी ने कहा, "आप दक्षिणापथ के दुर्गपाल है और मै भी उसका दण्डनायक हूँ ।"

"बहुत अच्छा कृष्णाजी ! अपना दुर्ग तो मै देख सकता हूँ, पर आप अपना नहीं देख सकते, इसलिए उसे बचाने की आपको कोई चिन्ता नही । आप देखते है कि मुझ पर अनेक चिन्ताओ का बोझ है, कृपया उसे और न बढ़ाइए । अरे, बाहर कौन है ?"

एक गरुड आया और महाराज ने उससे पूछा—अमरनायक नागदेव आये ?

"जी ! वह बाहर आपकी प्रतीक्षा कर रहे है ।"

"उन्हे भीतर भेजो ।"

अमरनायक नागदेव आए । महाराज ने आज्ञा दी—श्रीमुख का आपको आदेश है कि गैरसप्पा दण्ड-हस्ति के पाँवों मे डाल दिया जाये ।

अमरनायक ने महाराज के सामने देखा—अपने मेहमान गैरसप्पा के लिए क्या यही आदेश है, महाराज ?

"हाँ !"

"महाराज ! आपको अच्छा लगे या न लगे तो भी मेरी एक बात सुनिए, गैरसप्पा का वध करके आप एक नहीं दो भूलें करेंगे ।"

"जासूस को दण्ड देने मे मैं भूल कर रहा हूँ, ऐसा आप कहते हैं ?"

महाराज के कहने का ढग बड़ा ही अपमानजनक था ।

कृष्णाजी ने अपने मन पर सयम रखकर कहा— परन्तु महाराज, मेरी बात तो सुनिए।

"कहिए, जो कुछ कहना है सच्चेप मे कहिए।"

"सच्चेप मे कहता हूँ, महाराज! आप तुर्कों के हाथ मे खेल रहे है।"

"काम्पिलीदेव पर यह आच्चेप—और वह भी आपके द्वारा?"

"यह आच्चेप नही महाराज, आपके उतावलेपन को रोकने के लिए मेरी विनम्र प्रार्थना है।"

"ऐसा!"

"जी, आप तुर्कों के हाथ मे खेल रहे है। यह किस तरह से, सो मैं आपको बतलाता हूँ—हम सब और तुर्क भी जानते है कि शीघ्र या देर मे तुर्क सुलतान और दच्चिणापथ के महामडलेश्वर के बीच जीवन-मरण का युद्ध होनेवाला है। युद्ध दोनो को करना है। और कौन नहीं जानता कि दच्चिणापथ का महाकरणाधिप द्रव्य-सचय कर रहा है।"

"आपने तो बहुत पुरानी बात कही। कृष्णाजी, अभी के विषय तक आते आपको कितना समय लगेगा?"

"अधिक देर नहीं, महाराज!" कृष्णाजी ने कहा, "तो अब मैं आपको दच्चिणापथ के दण्डनायक के नाते कहता हूँ कि आपको याद है महाराज, भगवान् विद्याशकर के सामने आपने शपथ ली थी?"

"आप मुझसे प्रश्न पूछते जा रहे है, परन्तु आपका एक भी प्रश्न मेरी समझ मे नहीं आया। तो फिर मै 'हाँ' या 'ना' क्यो कहूँ?"

"आपके 'हाँ' या 'ना' कहने या न कहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।"

"अन्तर नहीं पडता आपकी इस बात से मैं सहमत हूँ। अमरनायक! आपने श्रीमुख का आदेश सुना, अब क्यो खडे है?"

"जब तक मेरी बात पूरी नहीं हो जाती, मैंने काम्पिलीदेव के आदेश को रोक दिया है।"

"आपके आपके क्या दो सिर है? जानते नहीं, मैं कौन हूँ? मेरे आदेश को रोकनेवाला इस काम्पिलीगढ़ मे कौन है?" महाराज ने तलवार की ओर हाथ बढाया।

"यह ताकत मेरी है महाराज ! कृष्णाजी ने कहा, "मै कोन हूँ, शायद इसे आप भूल रहे है।"

"समझा ! दक्षिणापथ की उत्तरी दिशा के दुर्गपाल के दायित्व की मैने शपथ ली थी और उस समय अपनी काम्पिली नगरी को किसी के नाम लिख दिया था। कृष्णाजी, उस भूल को मै सुधारूँगा ! अरे, बाहर कौन है ?"

एक गरुड आया।

"जा और सेनापति बालाप्पा सुलतान को शीघ्र ही बुला ला !"

गरुड चला गया।

कृष्णाजी ने कहा—महाराज ! मै आपके निर्णय को समझ गया हूँ। और मैं अभी ही आपके बन्दीगृह मे जाने के लिए तैयार हूँ। इसलिए आपको अपने सेनापति को बुलवाने की जरूरत नही। मै आपको विश्वास दिलाता हूँ कि अमरनायक नागदेव इसमे बाधा नही पहुँचाएँगे।

महाराज क्रोध-भरी दृष्टि से कृष्णाजी और नागदेव की ओर ताकते रहे, पर मुँह से कुछ बोले नही।

"जिस कार्य को करने के लिए तुर्को का जासूस यहाँ आया है उसे तो आप खुद ही पूरा कर रहे है !"

"मैं अपनी स्वतन्त्रता बेचना नही चाहता। चाहे मुझे समस्त दक्षिणापथ के महाकरणाधिप या राजसन्यासी से ही युद्ध क्यो न करना पडे। एक बार मैंने कर्नाटक से युद्ध किया था, समय आने पर फिर से लड़ लूँगा।"

"इसमे शक नहीं। ऐसे तो वारगल के राजा महाराज प्रतापरुद्र के सामने कलिंग के गजपति भी युद्ध करने को तैयार थे।"

"सेनापति बालप्पा के आते ही आप बन्दी कर लिए जाएंगे।"

"सुनिए महाराज ! अभी हमे एक ऐसा युद्ध करना शेष है—जिसके आगे महाभारत का सग्राम भी फीका पड जाए, राम-रावण सग्राम भी घटकर जँचे। आप जानते है कि कि आज हम लोक-सग्रह कर रहे है। आप यह भी जानते है कि एक समय के कर्नाटक के महाराज वीर बल्लाल आज राज-सन्यासी बनकर, गाँव-गाँव मे शिक्षा दे रहे है। और आप जानते है कि

महाकरणाधिप यादैया सोमैया के समान वीरश्रेष्ठ भगवान शकर के अवतार माने जाते है।"

सेनापति बालाप्पा प्रणाम करके अन्दर आया—आपने याद किया, महाराज ?

कृष्णाजी नायक ने अपनी तलवार निकाल ली—यह तलवार दक्षिणापथ के महामडलेश्वर के प्रति वचनबद्ध है। उनकी आज्ञा के बिना यह काम नहीं करती। उसी प्रकार भगवान् पम्पापति या भगवान् कालमुख विद्याशकर के अतिरिक्त किसी के चरणो मे झुकती नही।

और घुटने पर तलवार को मोड़कर कृष्णाजी ने उसके दो टुकडे कर दिए। फिर सेनापति के सामने देखकर कहा—सेनापति मै तुम्हारा बन्दी हूँ।

महाराज देख रहे थे! वे अपनी बडी बडी मूँछे होठो मे चबा रहे थे। विचित्र आवाज मे बोले, "आप तो बहुत उतावले है कृष्णाजी! मेरा तो उतावला ही स्वभाव है, परन्तु क्या आपको भी यो उतावला होना चाहिए ? आपको बन्दी बनाने का निर्णय मैने अभी नही किया है। सेनापति! तुम यहाँ खडे रहो। मै तुमसे जब पूछूँ तब अपना मत कहना, तब तक सुनते रहना।" बाद मे कृष्णाजी की ओर मुँह फेरकर कहा, "आप क्या कहते थे ?"

"अपने पास धन की कमी नही। दो सौ वर्षो तक जिन लोगो ने इस देश को लूटा है, जिनकी सेना को अच्छी तालीम दी गई है, और जिनको बहुत गर्व है—उनके सामने हमे युद्ध करना है। और इस युद्ध को कोई टाल नहीं सकता। धर्म के चार पैर होते है, उसमे से तीन तो कट गए है और धर्म आज एक पैर से चलते हुए वृषभ-जैसा हो गया है। यदि आज हम धर्म की रक्षा नहीं करते तो फिर इस धर्म की रक्षा दूसरा कोई नही कर सकेगा। दो-दो सौ वर्षो की विजय-परम्पराओ के मद से उन्मत्त बने लोगो के सामने हमे युद्ध करना है। और इस समय हम अकिंचन है! साधनहीन है।"

काम्पिलीदेव ने कहा—सत्य तो यह है कि हमे लडने की तैयारी करनी है। तैयारी हो तो मनुष्य मे शक्ति अपने-आप आ जाती है।

"हमे ताकत तो नही, परन्तु थोडा समय जरूर मिला है। महाराज, धन तो तुर्को के पास भी है।"

'तुर्को के पास धन ? क्या बात करते है आप ?"

"हॉ, अलाउद्दीन खिलजी का खजाना भले ही गायब हो गया हो, पर सुलतान के पास धन है, परन्तु सिपाहियो को देने के लिए धन नही है। हमारे पास भी धन नही है।"

"लडाई मे भी धन का यह महत्त्व किसने घुसेड दिया।" महाराज ने पूछा।

"एक ऐसा युद्ध होनेवाला है कि इस सग्राम का जो सेनानी बनेगा उसका नाम अमर हो जाएगा। महाराज ! पुराण, शास्त्र, धर्म और समाज, कवि और मुनि इस सग्राम के सेनानी की राह देख रहे है। वे नवीन कृष्ण और नवीन अर्जुन की विरुदावली गाने के लिए अपनी-अपनी भाषा का शृगार कर रहे है।"

"और कृष्णाजी, यह काम्पिलीदेव भी अपनी तलवार उसके चरणो मे समर्पित करने को तैयार है।"

इस सग्राम की राह देखना महाराज काम्पिलीदेव का कर्त्तव्य है।"

"कृष्णाजी !" महाराज ने कहा, "जितना आपने मुझसे कहा है उसमे से कुछ मेरी समझ मे आया है, कुछ नहीं। परन्तु एक काम हुआ है—मेरे मन का क्रोध अवश्य कम हुआ। अब बताइए, आप क्या चाहते है ?"

' महाराज ! हमे लड़ना भी नहीं और झुकना भी नहीं है।"

"यदि महाराज आज्ञा दे तो एक बात कहना चाहता हूँ।" सेनापति बालाप्पा ने बीच ही मे कहा।

"क्या है ?"

"वातापी के दुर्ग को तुर्को ने अधिकार मे कर लिया है। और वातापी दुर्ग के दुर्गपाल मडलेश्वर सगमराय युद्ध मे काम आ गए है !"

सुननेवाले स्तब्ध रह गए। क्षण-भर तक कोई कुछ नही बोला। मानो विजय-धर्म के रगमडप का एक महास्तम्भ टूट गया !

"रण-कौशल मे तो अब आप ही एक रहे, महाराज !" कृष्णाजी ने कहा, "अब . अब अब "

बाहर से एक गरुड़ दौड़ता हुआ आया—महाराज !

"क्यो, क्या है ?"

"जी ! देवगिरि का तुर्क सूबेदार आपको बुला रहा है !"

१९ मलिक राजी

जब देवगिरि का सूबेदार मलिक राजी दीवानखाने मे हाजिर हुआ तो मानो काम्पिलीगढ का दीवानखाना छोटा मालूम होने लगा। मलिक राजी के भुजदण्ड ऐसे थे मानो काम्पिलीदेव के प्रसिद्ध दण्ड-हस्ति की सूँड हो। और उसके पैर भी हाथी के पैरो-जैसे थे।

वह चलता तो मकानो की दीवारे तक कॉप उठतीं। मनुष्य की देह के सम्बन्ध मे कवियो ने भिन्न-भिन्न उपमाएँ सोची है, किसी ने महिषासुर की तो किसी ने बाणासुर की, किसी ने नर-वृषभ और किसी ने नर-महिष की, लेकिन ये सभी कल्पनाएँ मलिक राजी के सामने ओछी पडती थीं। महाराज काम्पिली भी सामान्य कद के आदमी नही थे। उनके विषय मे कई कथाएँ प्रचलित है—एक बिगडे हुए सॉड को उन्होंने पचास कदम दूर फेंक दिया था। मनुष्य उन्हे आनेगुडी के नाम से पहचानते थे। लेकिन वह भी मलिक राजी के सामने छोटे पडते थे।

ऐसी विराट काया देवगिरि के सूबेदार की थी !

मलिक राजी ने तुर्कों की विशिष्टता के अनुसार विनम्रतापूर्वक महाराज काम्पिली को सलामी दी। उसने महाराज से भेंट की और महाराज ने उससे। उसने कृष्णाजी से भी भेंट की।

"महाराज !" उसने कहा, "आप जानते हैं कि मैं अकेला और शस्त्र-हीन आया हूँ। बिना सेना के आया हूँ। आप शुद्ध क्षत्रिय है। आप क्षत्रिय वीर को शोभा दे, वैसे विश्वासपूर्वक आपसे मिलने की मेरी इच्छा थी ! वह मनीषा आज पूरी हो गई, यही मेरा भाग्य है।"

काम्पिलीदेव और कृष्णाजी, सेनापति बालाप्पा और अमरनायक नागदेव एक-दूसरे के सामने देखते रह गए ! वल्लरी और अपने पीछे पडे हुए देवगिरि के सूबेदार का चित्र कृष्णाजी की आँखों के सामने खडा हो गया और कटार चलाने की उसकी कला भी स्मृति मे घूम गई।

मलिक राजी की तुर्की धमकी के लिए वह तैयार थे। परन्तु मधु के इस महासागर के लिए वह कतई तैयार न थे। काम्पिलीदेव अवाक् रह गए! सेनापति बालाप्पा को लगा कि ये बातें स्वभाव से ही असगत है।

काम्पिलीदेव ने सावधानीपूर्वक कहा—आइए, बैठिए।

मलिक राजी आसन पर बैठा। सामने काम्पिलीदेव बैठे। कृष्णाजी नायक और नागदेव महाराज के आस-पास खडे रहे।

"आपसे मिलकर हमे बडी प्रसन्नता हुई।" काम्पिलीदेव ने कहा, 'हमारे राज्य के जगल और गॉवो का धुआँ यहाँ तक दिखने लगे और दौडते-भागते आदमियों की चीख यहाँ तक सुनाई पडने लगे, यह बडे विस्मय की बात है।"

विनय और अभिनय दोनो मे मानो एक-एक पैर रख रहा हो उस प्रकार मलिक राजी जोर से हँसकर बोला—मुझे तो आशा थी कि आपसे मेरी मुलाकात किसी गॉव मे होगी। वैसा न हुआ तो मैं आपके यहाँ आया हूँ। विस्मय यदि किसी को हुआ है तो मुझी को महाराज—आप नही आए तो मुझे आना पड़ा!

इसे शिष्टाचार समझा जाए या औद्धत्य, काम्पिलीदेव निश्चय न कर सके। परन्तु उन्होने इसे औद्धत्य ही समझा, यह उनके शरीर की कँपकँपी से कृष्णाजी को मालूम हो गया। उन्होने पीछे से महाराज का कन्धा दबाया और महाराज कुछ बोलें उससे पहले ही कृष्णाजी बोले—हमारे और देवगिरि के महाराज काम्पिलीदेव और उनके मित्रो के बीच शान्ति थी और है। इस शान्ति के टूटने का कोई कारण हमने नही दिया, इसलिए हमे यही आपकी राह देखनी चाहिए थी।

"शान्ति भग होने पर क्या होता है यह तो आपने वारगल मे देख ही लिया होगा, और वातापी का समाचार भी तो आपके पास पहुँचा होगा। सुलतान मुहम्मद को शान्ति रखने की तो इच्छा बहुत है। इसी लिए तो मैं यह सन्देश लेकर आपके पास आया हूँ।"

"सुलतान मुहम्मद का सन्देश लेकर आए सो अच्छा ही किया। परन्तु ऐसा क्या सन्देश है जिसे हम तक पहुँचाने के लिए आपको आग और तलवार की सहायता लेनी पड़ी?"

"महाराज ! क्या करूँ ? मैं तो सुलतान के शान्ति के नियमो के अनुसार ही आ रहा था, परन्तु आपके ही लोगो ने अनर्थ कर दिया ।"

"क्या है वह सन्देश ?"

"सन्देश यह है महाराज, कि सुलतान मुहम्मद माँगते है कि हमारा चोर आपके यहाँ है उसे हमे सौप दीजिए ।"

"तुम्हारा चोर हमारे गढ मे ? सुलतान मुहम्मद का चोर ? क्या बात करते हो तुम ?" कृष्णाजी ने कहा ।

"मै महाराज से बात कर रहा हूँ ।" मलिक राजी ने कहा ।

"राजाओ के आचार-विचार से तुम परिचित नही, शायद अनजान ही हो । राजा मेहमानों का स्वागत जरूर करते है, परन्तु विवाद तो वे समान पद-वालो से ही करते है । और तुम देवगिरि के सूबेदार हो तो भी सुलतान के नौकर हो जब कि काम्पिलीदेव एक स्वाधीन राजा है ।"

मलिक राजी खडा हो गया—यही तो आपकी भूल है । हिमालय से लेकर रामेश्वर तक सुलतान मुहम्मद गाजी का राज्य है । वह अल्लाह के सिवाय किसी के प्रति जवाबदार नहीं, जबकि इस मुल्क के रहनेवाले उसकी मर्जी और हुक्म के जवाबदार और ताबेदार है । इसलिए मै आपके नाम सुलतान का फरमान लाया हूँ ।

"यह जगह फरमान लाने की नहीं है । इस काम के लिए बाहर का मैदान है ।" काम्पिलीदेव ने कहा और खड़े हो गए ।

कृष्णाजी ने बीच मे ही कहा—फरमान की बात छोड़कर सूबेदारजी, यदि आप सुलतान मुहम्मद की बात हमे बता दे तो सम्भव है हम सुलतान की इच्छा पर विचार कर सके ।

सूबेदार मलिक राजी कृष्णाजी के सामने देखता रहा फिर धीरे-धीरे बोला—सुलतान का चोर आपके यहाँ है । शरणागत धर्म की कोई चर्चा किये बिना क्या आप उसे हमारे हवाले करेंगे ?

"कौन है वह चोर ?"

"सुलतान का भाजा गैरसप्पा बहाउद्दीन भागकर यहाँ आया है ।"

"ओ हो हो ! हम तो समझ रहे थे कि सुलतान ने उसे देशनिकाला दे दिया है !"

"सच्ची बात है, इसी लिए तो चर्चा की बात है। यह देश तो सुलतान का ही है।"

"यह तो विवाद का विषय है !"

"जी ! इस विवाद का आखिरी फैसला करने के ही लिए तो मै अपने सिपाहियो के साथ यहाँ आया हूँ। मेरे सिपाही गढ के बाहर राह देख रहे है।"

"तुम्हे गैरसप्पा चाहिए या और कोई ?"

"कृष्णाजी !" महाराज काम्पिलीदेव ने क्रोधित होकर कहा, "सूबेदार का प्रस्ताव आपने नहीं सुना ?"

"मैंने सुना महाराज ! परन्तु सूबेदार ने अपने मन की बात नहीं कही, ता भी हम उसे जानते है, जरा उस पर भी तो विचार कीजिए, महाराज !"

"कौन-सी बात ?"

"सूबेदार साहब, जिस प्रकार आपके जासूस फिरते है उसी प्रकार हमारे जासूस भी दिल्ली तक फिरते है। सुलतान और मालवा के अमीरो के बीच मन-मुटाव है। आपके मलिकों और सुलतान मुहम्मद के मलिको को दूसरा कुछ न मिले तो भी धन तो चाहिए ही ! तातार और खोरासान के आपके मलिकों के स्वजन आपकी ओर से केवल धन की राह देखते है, दूसरे किसी सन्देश या समाचार की नही, और सुलतान मुहम्मद के पास सब-कुछ है—बुद्धिमान आदमी, सेनाएँ, परन्तु धन नहीं है ! और जो सुलतान निर्धन हो, उसे बाहरी लडाइयो का शौक नहीं रखना चाहिए, क्योकि भीतरी द्रोह ही उसका समय नष्ट कर देता है।"

मलिक कृष्णाजी के सामने देखता रहा और बोला—यदि आप ऐसी बातों पर यकीन करेंगे तो जरूर आपकी हार होगी। सारा मुल्क जिसे कर लगान और नजराना देता है उसे निर्धन मान लेना भूल है।

कृष्णाजी ने कहा—एक बात और कहता हूँ—तुम अपने-आप यहाँ आए हो, सुलतान से तुमने पूछा नही है। और तुम्हारा सुलतान तो मालवा के मलिकों का विद्रोह कुचलने के लिए गया है, उसके पीछे से तुम यहाँ पर आए हो।

"यह बात तो मेरे और सुलतान के बीच की है ! इससे तुम्हे कोई मतलब नही । और यदि तुम मतलब रखने की बेवकूफी करोगे तो इसका फल भोगना पडेगा। यदि वातापी-जैसा हाल काम्पिलीगढ का भी हुआ तो उसमे दोष तुम्हारा ही होगा, मेरा नही ! ऐसा लगता है, अभी तक तुम्हे वातापी का समाचार नही मिला है !"

"वातापी का समाचार तो हमे मिला है।"

"तो फिर ?"

"इसी लिए तो हमे व्यर्थ की चर्चा नहीं करनी चाहिए। यदि तुम्हे अपना चोर चाहिए तो ले जाओ।"

"लेकिन आप शरणागत को भी सौपने को तैयार है, महाराज ?" मलिक ने तिरस्कारपूर्वक कहा।

महाराज का चेहरा क्रोध से लाल हो उठा। परन्तु कृष्णाजी ने कहा—मलिक, यह तो तुम्हारे-जैसे पड़ोसियो पर हमारा एहसान है !

"एहसान ? मुझ पर एहसान ?"

"पड़ोसी का कर्त्तव्य तो हमे निभाना ही चाहिए न ! मलिक, सुलतान मुहम्मद जब मालवा से लौटे तब मलिको के सिर भाले पर चटाकर और अपने स्वजनों को हाथी के पैरो के नीचे दबवाकर ही आएँगे। उस समय तुम काम्पिलीगढ़ के घेरे मे फँसे रहे तो बुरा होगा तुम दूसरे किसी के नहीं तो सुलतान मुहम्मद के स्वभाव को तो जानते ही होगे। न जानते हो तो अपने पहले के सूबेदार मलिक मकबूर रहमान के हाल से तो वाकिफ होगे ही। या क्या तुम भी मलिक मकबूर के चरण-चिह्नो पर चलना चाहते हो ?'

"मैने तुम्हारी बात नहीं समझी। और व्यर्थ की बाते मुझे अच्छी नहीं लगती।'

"मलिक, ये बाते तुम्हारे लिए व्यर्थ की नही है। तुर्को के हाथ, जा पहले छोटे थे अब बडे हो गए है। परन्तु हमारे कान, जो छोटे थे, अब बडे हो गए है। मदुरा के अहसानशाह का तो यह स्वप्न ही था कि कदम-कदम पर काम्पिलीगढ मे स्वतन्त्र सल्तनत की स्थापना करना। और और मुझे लगता है कि उसे हाथी के पैर के नीचे दबवाकर सुलतान ने तुम्हे एक साधारण पद से एक सूबेदार का पद दे दिया।"

"अरे ! अरे ! काफिर भी क्या अक्ल दौडाते है !"

"खैर ! तुम्हारे सुलतान को ऐसी शका हो या न हो—यह तो उनके आने पर मालूम होगा। परन्तु मेरी एक बात मानो। काम्पिलीगढ का पतन इतनी सरलता से नही होगा। इसके लिए तो तुम्हारे सुलतान को ही आना होगा। परन्तु इस समय तो वे मालवा और गुजरात के मलिको के झगडे मे फँसे है। एक बार देवगिरि के सूबेदार मलिक मकबूर को काम्पिलीगढ पर घेरा डालने का स्वाद मिल चुका है। और यदि तुम्हे यह स्वाद चखना हो तो हम तैयार है। जब तुम कहो तब। तुम आओ, सुलतान स्वय आएँ, चाहे तातार या खोरासान के सभी मलिक आएँ—हमे जरा भी डर नहीं, दु ख नहीं। सत्य है न महाराज ?"

"यह बात तो आपने बिलकुल सत्य कही। मलिक, अब तुम्हे जैसा ठीक लगे करो।"

मलिक राजी डाढी मे हाथ फँसाये सोचता रहा।

"तुम हाथी के पैर के नीचे कुचले जाओ और दूसरा कोई देवगिरि का सूबेदार बने यही हमारे लिए ठीक है। यहाँ पर तुम्हारा कोई चोर या जासूस हो तो उसे खुशी से ले जा सकते हो।"

"जासूस ? मेरा जासूस ?"

"क्यो नहीं ? हम क्या तुर्कों के आचार-विचार से अनभिज्ञ है ? इसी लिए तो हमने पहले से ही उसे शरणागत नही माना—हमने तो उसे तुम्हारा जासूस ही माना है।"

"झूठ बात है कि तुमने उसे पहले से ही जासूस माना है !"

"अरे बालाप्पा ! जाओ, गैरसप्पा को यहाँ ले जाओ !"

"परन्तु, परन्तु "

"सूबेदार साहब ! धन न होने पर युद्ध किस प्रकार किया जाता है, इसे हम न जानेंगे तो कौन जानेगा ?"

मलिक एकदम चुप हो गया। उसके मन मे अनेक विचार पैदा होते रहे। शेष सभी चुप रहे और सेनापति बालाप्पा गैरसप्पा को लेकर आ पहुँचा।

"गैरसप्पा !" कृष्णाजी ने कहा, "जाओ ! देवगिरि का सूबेदार तुम्हें लेने के लिए आया है !"

"तो क्या क्षत्रिय शरणागत को सौंप देंगे ?"

"शरणागत को तो चाहे ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, कोई नहीं सौपता है। परन्तु प्रश्न यह है कि तुम शरणागत हो या मरणागत ?"

"महाराज, मैं आपका अर्थ नहीं समझा ?"

"यह तो तुम्हे सूबेदार समझाएगा, क्योंकि हम तुम्हें उसे सौप देना चाहते है।"

गैरसप्पा का चेहरा एकदम फक हो गया।

"किस लिए घबराते हो ?" कृष्णाजी ने कहा, "मलिक तो तुम्हारा रिश्तेदार है और सुलतान तुम्हारा मामा है !"

गहरे कुएँ से बाहर आया हो इस प्रकार मलिक जोर से बोला—मैं अकेले गैरसप्पा को ही लेने नहीं आया हूँ, बल्कि साथ में मेहर को भी लेने आया हूँ।

"पत्नी तो पति के साथ ही रहती है, हम तो पति-पत्नी को अलग नहीं समझते।"

"और और और" गैरसप्पा बीच में चिल्लाया।

"जिसे तुम वल्लरी कहते हो, उसे !"

इतनी देर चुपचाप सुन रहे अमरनायक नागदेव ने पूछा—गैरसप्पा ! यह लड़की यहाँ है, यह तुम्हे कैसे मालूम ?

गैरसप्पा चुप हो गया। कृष्णाजी सूबेदार के सामने देखकर हँसने लगा। इससे सूबेदार का मिजाज बिगड़ गया। उसने भभककर कहा—बिना वल्लरी को लिये मैं जाने का नहीं।

कृष्णाजी ने सिर हिलाया—जिसे तुम अपना चोर कह रहे हो उसे ले जाओ। परन्तु वल्लरी को हम तुम्हें सौपनेवाले नहीं।

"हँ हँ" शिकारी बाघ जिस प्रकार होठ चाटता है उसी प्रकार मलिक की जीभ होठ चाटने लगी, "तो तुम्हारे पास एक ऐसा व्यक्ति है जिसे तुम सौपने के लिए तैयार नहीं।"

"हाँ!"

"तो हो जाओ तैयार! यदि सुलतान का फरमान—सुलतान के नाम से देवगिरि के सूबेदार का फरमान—मानना है तो काम्पिलीगढ का कब्जा मुझे सौप दो! नहीं तो वातापी-जैसे बेहाल होने के लिए तैयार रहो। तुर्क अजेय है और अजेय ही रहेंगे। यह किला खडहर बन जाएगा। तुम्हारे मन्दिरों मे नमाज पढ़ी जाएगी और तुम्हारे देव-मन्दिरों मे तुर्क सिपाही निवास करेंगे।"

"अब तुम जाओ। हम किसी चोर को यहाँ नही रखते। हाँ, यदि कोई सच्चा शरणागत आए, तो उसे ही हम रखते है, यह तुम आगे देखोगे।"

"मेरे सिपाही इस किले को तोड़ देंगे। महाराज काम्पिली का सिर इस किले की बुर्जो पर टाँगा जाएगा।" मलिक राजी खड़ा हो गया। उसकी आवाज में क्रोध था, "और काम्पिलीगढ़ के खडहरो मे भूत निवास करेंगे!"

"सुनो सूबेदार! अब मेरी बात सुनो। अब तक तुमने कृष्णाजी की बातें सुनी। अब मेरी बात सुनो।" काम्पिलीदेव आवेशपूर्वक उसके सामने खड़े हो गए, "यह काम्पिलीगढ़ हमारा गढ़ है यह तो सत्य है, परन्तु इसका इतना भार नहीं कि मेरी छाती को तोड़ दे। तुम जाओ और अपने इस जासूस को भी ले जाओ, नहीं तो मैं पम्पापति की सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि इसे दण्ड-हस्ति के पैरो-तले कुचलवा दूँगा।"

काम्पिलीदेव के आवेश का वेग देखकर सूबेदार स्तब्ध रह गया। और गैरसप्पा का चेहरा पीला पड़ गया।

"महाराज!" कृष्णाजी ने बोलना शुरू किया।

उसे रोककर महाराज काम्पिलीदेव ने कहा—बस करो कृष्णाजी! आपका कहना मैंने बहुत सुन लिया, अब नहीं सुनना चाहता। जब-जब आप बात करते है मेरे स्वाभिमान को भंग करते हैं!

और सूबेदार की ओर फिरकर महाराज ने कहा—और सूबेदार! मलिक राजी! तुम भी सुन लो—मैं काम्पिलीदेव, अपने बापदादा के द्वारा लड़े गए पराक्रमों से प्राप्त राज्य को भोग रहा हूँ, तुम्हारे सुलतान की कृपा से नहीं, परन्तु भगवान पम्पापति की कृपा से। मैं राजनीति नहीं समझता, और समझना चाहता भी नहीं। एक बात है, कृष्णाजी ने तुमसे कहा कि तुम अपने इस

पाखडी जासूस को ले जाओ और यदि नहीं ले जाओगे तो अपने इस राजवशी जासूस को खो दोगे। वल्लरी हमारी शरणार्थी है और रहेगी। उसे तो तुम्हारा सुलतान भी हमारे पास से नहीं ले जा सकेगा।"

"यही तुम्हारा अन्तिम उत्तर है?"

"हाँ! मेरी पहले की बहत्तर पीढ़ियों ने भी तुम्हें दूसरा जवाब नहीं दिया और न भविष्य की बहत्तर पीढ़ियाँ ही देंगी।"

"चलो मलिक!" गैरसप्पा ने कहा, "खेल की परीक्षा हो जाने पर खडे रहने से क्या फायदा?"

दूसरे खड से वल्लरी दौड़ती हुई आई, कोई उसे रोके, इससे पहले वह बीच मे आ गई।

"महाराज " वह बोलने जा रही थी। लेकिन उसके बोलने के पहले ही सूबेदार मलिक एक कदम आगे बढ आया। उसने वल्लरी की गर्दन पकड़ी, उसे मरोड़ा और उठाकर महाराज के चरणों मे फेक दिया।

"लो महाराज! अपने शरणार्थी को अपने पास ही रखो। तुर्कों का सूबेदार यहाँ आया है तो वह खाली हाथ नहीं जाएगा। चलो गैरसप्पा!"

महाराज ने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाली।

२० 'लौह भस्म हो जाए!'

"मलिक राजी!" महाराज काम्पिलीदेव बोले, "चाहे कोई स्थान हो और चाहे कैसा भी समय हो, कुछ अपमान ऐसे है जिन्हे काम्पिलीदेव सहन नहीं कर सकता। यह अपमान ऐसा ही है। अपनी तलवार म्यान से निकालो!"

मलिक राजी भयकर हँसी हँसा—महाराज, कब से मैं सोच रहा था कि इस काफ़िर को क्योंकर गुस्सा आए। आखिर गुस्सा आया! अब सवाल सिर्फ इतना ही है कि आप मेरा खून करना चाहते है या मुझ से द्वद्व-युद्ध?

"मेरा अपमान करने का तुम्हे अधिकार है, मलिक! परन्तु मेरे धीरज को कसौटी पर मत चढ़ाओ।"

"नहीं, नहीं। आपका धीरज तो अटूट है। मैंने इतनी देर तक धैर्य रखा इसका मुझे अफसोस है। तो भी, मैं एक बात कहता हूँ।"

"कहो।"

"मलिक राजी के लिए यह सवाल बहुत अहम है, महाराज जिस पुरानी परम्परा की चर्चा कर रहे है उसके सम्मान और ईमान का सवाल है। एक सवाल पूछना चाहता हूँ।"

"पूछो।"

"मैंने प्रश्न तो पूछ लिया है अब उत्तर की राह देख रहा हूँ।"

'तुम खूनी हो और खून करने का दण्ड तुम्हे मिलना चाहिए। मेरा दण्ड-हस्ति तुम्हारी राह देख रहा है।"

"इसके पहले तो आपको मुझे पकडना चाहिए, न! प्रश्न यह है कि "

"इस प्रश्न का तुम्हे पुनरुच्चार नहीं करना पडेगा। जब तक तुम जख्मी नहीं हो जाओगे, तब तक तुम्हारे साथ एक-एक आदमी ही युद्ध करेगा। तुम खत्म हो जाओगे, तब तुम्हे गढ के बाहर फेक दिया जाएगा और यदि जीवित रहोगे तो हाथी के पैरो के नीचे होशियार!"

मलिक राजी ने तिरस्कारपूर्वक हँसकर कहा—महाराज को मालूम नहीं कि मैं तुर्कों का शानेशमशीर हूँ!

"यह बात तुम छोड़ दो। परन्तु हम जासूसो के साथ युद्ध नहीं करते, उन्हे तो केवल दण्ड ही देते हैं।"

"महाराज ." कृष्णाजी ने महाराज की तलवार की मूठ पर हाथ रखा, उसे हटाकर, महाराज आगे आए!

"मलिक! यदि तुम्हारे मन मे कुछ भी मानवता हो तो तुम्हे एक बात कहता हूँ। यह दीवानखाना मृत्यु का विभाग है। मृत्यु का अदब रखना हमारे देश का रिवाज़ है! तुम तुर्क लोगों मे ऐसा कोई रिवाज़ है?"

मलिक राज़ी ने अपनी तलवार नीचे झुकाई।

"चलिए महाराज! मैदान में चलें।" वह एक ओर खड़ा हो गया, "आइए!"

मलिक तलवार नीचे झुकाकर एक ओर हो गया। महाराज चले।

"तुम्हारी बात सत्य है। यह मैदान विशाल है।" काम्पिली महाराज ने कहा।

महाराज दीवानखाने के दरवाजे मे थे। सेनापति बालाप्पा नमन करके उनके आगे-आगे चलकर बाहर आ गया था। अमरनायक नागदेव वल्लरी के शव के पास खडे थे। कृष्णाजी नायक विचार कर रहा था कि वह वल्लरी के पास खडा रहे या महाराज के साथ जाए। अब तो महाराज काम्पिलीदेव किसी के रोकने पर भी नही रुक रहे थे।

महाराज दीवानखाने के दरवाजे से होकर जा रहे थे। उनकी तलवार हाथ मे खुली थी। मलिक राजी दीवार के सहारे खड़ा था। उसकी तलवार भी उसके अपने हाथ मे थी। तुर्क सिपाही की श्रद्धा और अदब से उसने सिर झुकाकर, महाराज का पहले रास्ता दिया। महाराज उसके पास से गुजरकर उतावलेपन से जा रहे थे कि पीछे से मलिक चालाक और धोखेबाज चीते के समान, उन पर टूट पड़ा। उसके प्रचड हाथ मे जकड़ी हुई तलवार महाराज के कन्धे की जनेऊ पर गिरकर, देह को काटती हुई नीचे उतर गई।

"हे राम!" कहकर महाराज गिर पडे। उसी क्षण उनके प्राण-पखेरू उड़ गए।

सब स्तब्ध रह गए।

अमरनायक नागदेव वल्लरी की देह के पास खड़ा था। छलाँग मारकर साँप के समान तेजी से उसने तलवार खींच निकाली।

किसी ने उसका हाथ पकड़ा। क्रोध मे उसने पीछे देखा, तो काम्पिलीदेव महाराज का युवा पुत्र वहाँ खडा था।

"यह अधिकार मेरा है!" उसने कहा और आगे बढ़ा।

कृष्णाजी ने उसे रोकना चाहा।

"मैं जानता हूँ।" महाराजकुमार ने दृढ़तापूर्वक कहा, "यह अधिकार अब मेरा है!"

जिस प्रकार दीपक पर शलभ गिरता है उसी प्रकार, विशेष कुछ न कह-कर, वह मलिक पर टूट पड़ा। उसकी लम्बी तलवार मलिक की छाती मे घुस गई। क्षण-भर सबको लगा कि मलिक खत्म हो गया। दूसरे ही क्षण उसका भयकर हास्य सुनाई दिया। और काम्पिलीदेव के कुमार की देह शव के रूप मे जमीन पर गिर पडी!

मलिक ने महाराजकुमार की तलवार अपनी बगल मे समा ली थी और तुरन्त अपनी तलवार से उसके प्राण ले लिये थे !

कृष्णाजी नायक का चेहरा उतर गया !

"खबरदार ! कोई मलिक को सताएगा नही । वह मेरा भोज्य है । मलिक, भगवान् कालमुख के चरणो मे, पम्पापति की साक्षी मे, मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मै सात वर्ष तक किसी तुर्क के सामने कोई शस्त्र या कोई अस्त्र नही उठाऊँगा, परन्तु यह बात दूसरी है !"

और तभी सामने के दरवाजे से तनी तलवार से रास्ता रोककर खडे हुए सेनापति बालाप्पा को हटाकर, काम्पिलीदेव की महारानी आई । यह कलिंग के गजपति की पुत्री थी—इनके अग-अग मे सती का शौर्य और तेज था । इनकी आँख से मानो सती का शाप झर-झर बरस रहा था । इनके हाथो और पैरो से मानो कुकुम झरता था । ये तलवार लेकर आई थी ।

"शारदा मा !" कृष्णाजी के मौन मुख से वाणी प्रकट हुई !

"कृष्णाजी ! विजय-धर्म की बात अलग है । यह सती का धर्म है ! अपने स्वामी के पीछे मेरा सती होना या इसी मार्ग के द्वारा स्वर्ग मे जाना, इस समस्या का निर्णय मुझे करना है । इसमे जो कोई रुकावट डालता है तो उसे सती की आन है !"

सती के इस तेजवत दु सह दर्शन और कालाग्नि-जैसे रोष के सामने मलिक डर गया । उसने यन्त्रवत् तलवार उठाई । अपने समर्थ स्वामी के शव के सामने वह वीर राजपूतानी शारदा माता तलवार का दाँव खेलने लगी !

वह दु.सह रोष ! दुर्धर्ष मरण-प्रेम ! और कालाग्नि की चिनगारी-जैसी आँख ! मलिक तो इस अननुभूत आभीर्‌ मे सकपकाकर एक ओर दब गया ! उसके चेहरे पर तिरस्कार अथवा मुर्दनी के बजाय स्तब्ध मूढता छा गई !

नारी का यह भवानी सा विकराल रूप उसकी समझ-बूझ से परे था ।

उसका खेल खत्म हो रहा था । रग मे भग हो रहा था । देवगिरि मे उसका भविष्य भ्रष्ट हो गया था । यदि काम्पिली मे भी उसकी पराजय हो जाए तो उसका पतन तो निश्चित ही है, उसके स्वजन भी सुरक्षित नहीं रह

सकते। सुलतान उन्हे सहज ही छोड न देगा। यदि उसे मरना ही है तो वह यथाशक्ति शत्रु को मारकर ही मरेगा।

अलाउद्दीन खिलजी के राज्य मे मलिक ही मुख्य थे। उस समय कमाई की उनमे से किसी को चिन्ता न थी, क्योकि वक्त पड़ने पर लूटमार के मार्ग उनके लिए मुक्त-रूप से खुले थे।

लेकिन जब से गयासुद्दीन तुगलक गद्दी पर बैठा, यह तरीका बदल दिया गया। उसने साफ-साफ समझ लिया और अमीरो को समझा दिया कि अगर इस मुल्क मे रहना है तो लूट-मार की राहे छोड़ देनी होगी, बस्ती मे रहकर रोजगार और धन्धे की तलाश करनी होगी और उसे अपनी आमदनी का जरिया बनाना पडेगा।

इसलिए तुर्क दो हिस्सो मे बँट गए—एक हिस्सा अमीरो का, दूसरा मलिकों का।

सौदागर जो ला सके, जमीन-जायदाद और खेत-खलिहानो की देख-भाल कर सकें—ऐसे लोगो को चुनकर गयासुद्दीन तुगलक ने अमीर बनाया।

शेप सैनिक तुर्क मलिक कहलाते रहे। दोनो के बीच दूरी और मतभेद बढ़ रहे थे। एक ओर थी—राज-व्यवस्था और दूसरी ओर थी—सेना। गज और ग्राह की दशा थी।

राज-व्यवस्था सुस्थिर हो रही थी। अमीर बढ रहे थे। मलिको के फौजी तौर-तरीको पर अकुश बढ़ रहे थे। इसलिए मलिक मौके की तलाश मे रहने लगे कि मौका मिलते ही, कही बडी-छोटी रियासत या सल्तनत स्थापित कर ले। दिल्ली के कई मलिको मे इस प्रकार के लक्षण देखकर, सुलतान ने उन्हे हाथी के पैरो-तले कुचलवा दिया। स्वय गैरसप्पा भी हाथी के पैरो-तले जाते-जाते एक शर्त पर कठिनाई से बच पाया था। और इसी शर्त का पालन करने के लिए 'निर्वासित' का नकाब पहनकर, वह काम्पिली आया था।

भरूचं के नवाब के मन मे भी, एक दिन ऐसा ही लालच उठ खड़ा हुआ था और सुलतान ने उसे बाकायदा सख्त सजा दी थी। मालवा के मलिक के मन मे भी यही मोह जागा था और वहाँ मलिकों और अमीरो के बीच

अन्तर-विग्रह फूट निकला था। गुजरात मे भी यही बीमारी फैली थी, लेकिन सुलतान को इस वक्त गुजरात तक जाने की फुर्सत नही थी।

और मलिक राजी भी इस मोह, लोभ और कमजोरी का शिकार बना था।

दूर—मदुरा मे अहसान शाह सुलतान बन बैठा था और सुलतान बनकर अपनी गद्दी पर अटल रूप से बैठ सका था—यह उदाहरण बडा भयकर था और इसने कई मलिको को राजगद्दी के बजाय, हाथी के पैरो-तले भेज दिया था।

लेकिन सफलता भी असम्भव न थी। सफल होने पर हाथी की पीठ, असफल होने पर हाथी के पैर। तीसरी कोई राह न थी। सुलतान मुहम्मद ने अपने शासन-काल मे हजारो मलिको को हाथी के पैरो-तले कुचलवा दिया था।

इसलिए मलिक राजी के लिए दो ही मार्ग थे—काम्पिली मे लड़ता हुआ मारा जाए अथवा, दिल्ली मे हाथी के पैरो-तले कुचला जाए। ऐसी दशाओ मे चिन्ता सिर्फ़ परिवार की थी। सुलतान मुहम्मद का क्या पूछना। मिजाज दुरुस्त रहने पर उसके समान उदार व्यक्ति दूसरा कोई न था और मिजाज बिगड़ जाने पर अपने निकटतम सम्बन्धी को भी हाथी के पैरो-तले भेज देना उसके लिए बहुत सरल बात थी।

इसलिए मलिक राजी जूझ रहा था, अपने लिए नहीं, अपने स्वजनों के लिए।

किन्तु मानो उसकी बुद्धि कुठिता हो गई। पहाड़-जैसे उसके शरीर मे शक्ति ही न रही। आज तक किसी वीरागना चडी से उसका सामना नहीं हुआ था। यह उसकी कल्पना से भी परे था कि नारी चडिका—दुर्गा भी बन सकती है।

और एक आर्य नारी को साक्षात् दुर्गा भवानी के रूप मे अपने पतिदेव के रग मे आपाद-मस्तक रँगी देखकर, सिहनी-सा उसका विद्युत् रूप देखकर, वह मूक पत्थर-सा स्तब्ध रह गया।

वह वार-पर-वार कर रहा था परन्तु उसके वार हवा मे व्यर्थ जा रहे थे। उसके सामने मानो एक नारी मूर्त्ति नही, स्वैरविहारिणी शलभ-बाला थी।

मलिक राजी के हाथ, पैर, मुँह और माथे पर तलवार के घाव बन गए थे और उनमे से लहू बहने लगा था।

और अब तो उसके चेहरे पर भय की काली घटाएँ भी छा गई थीं। क्या तुर्को के शानेशमशीर को एक हिन्दू नारी—एक अबला इस तरह थका देगी? हरा देगी?

गैरसप्पा खड़ा था। रण का दाँव रचती वीर राजपूतानी उछलकर उसके सामने आ खडी हुई। उसी समय गैरसप्पा ने उसे छल से धक्का दिया, अपने सस्कारवश, यह सोचकर कि मरनेवाले से मार देनेवाला बड़ा है उसके धक्के से वीर क्षत्राणी लड़खड़ाई और धरती पर गिरी कि म्लेच्छ ने तलवार के वार से उसे कटि की जगह से काट डाला।

पल-भर के लिए स्तब्धता छा गई। धरती मानो अपनी धुरी पर परिक्रमा करते थम गई। सबके श्वास अधर स्थिर रह गए।

और दूसरे ही पल धिक्कार, घृणा और रोष का अपरम्पार ज्वार उठा। सेनापति बालाप्पा, अमरनायक नागदेव और अन्यान्य सैनिक गैरसप्पा पर टूट पडे। वह जमीन पर गिर पड़ा।

"अब?" कृष्णाजी ने मलिक से कहा। मानो बहरा है वह, इस प्रकार मलिक कृष्णाजी की ओर देखता रहा।

"मैं गिरे हुए शत्रु पर प्रहार नहीं करता, मलिक! उठकर खड़ा हो जा!" कृष्णाजी ने अपनी तलवार की नोक से उसका कधा हिलाकर कहा।

धीमे धीमे धीमे मलिक के काले चेहरे पर लहू का प्रवाह लौटा और काली एक हँसी लौटी।

"इस तुर्क की इस मुलाकात को सब लोग याद रखेंगे।" मलिक राजी ने कहा और अपनी तलवार का दाँव देखा। परन्तु छल से कटार चलाई और भयकर अट्टहास किया।

लेकिन उसका अट्टहास उसके गले से दूर न निकल सका।

कृष्णाजी ने अपनी तलवार की नोक उसकी तलवार की मूठ से टकरा दी। वेगवश मलिक की तलवार उसके हाथ से छूटकर, चक्कर खाकर उसके गले से लिपट गई। लहू की धार फूटी और मलिक जमीन पर गिर पड़ा।

तब तक सर्वत्र कोलाहल छा गया था !

दीवानखाने मे तुर्क घुस आए थे ।

चारों ओर आग और लूट का बोलबाला था ।

अपना गला अपने हाथ से दबाकर, मलिक राजी धीरे से उठकर खडा हुआ और कृष्णाजी की ओर उँगली उठाकर चिल्लाया—पकड़ लो इसे ! सबको पकड लो ! आग लगा दो । लूट लो ! मार डालो ! खाक कर दो !

और वह भयकर पिशाच, भयकर पछाड खाकर फिर से गिर पड़ा !

२१ रणभैरवनाथ

काम्पिलीगढ को तहस-नहसकर, बस्ती और आबादियो मे आग लगाकर, लूट मार मचाकर, खडहरो को कौओ और गिद्धो को सौपकर तुर्की सेना लौट गई !

कृष्णाजी नायक बन्दी के रूप मे ले जाया जा रहा था । गैरसप्पा अपनी सेना का सचालन कर रहा था, हालाँकि उसकी हालत नाजुक थी ।

कृष्णाजी के मन मे अनेक विचार उठ रहे थे ।

सोच रहे थे वे—दक्षिणापथ की पहली हरावल टूटी ।

वातापी का नाश हुआ और उसमे महामडलेश्वर के पिता श्री सगमराय खेत रहे ! अविश्वास, धोखे और लापरवाही के कारण काम्पिलीगढ़ का पतन हुआ । तुगभद्रा की पौराणिक मर्यादा विनष्ट हुई । दक्षिणापथ का द्वार खुल गया !

अन्ततया—अन्ततया अथाह परिश्रम, प्रयत्न और सावधानी रखने पर भी, विजय-धर्म को, आवश्यक सात वर्षों की अवधि न मिली सो नही ही मिली !

अभी राय-रेखा पूर्णरूपेण अकित न हुई थी ! अभी राजसन्यासी सेनाएँ एकत्र न कर पाए थे । अभी भगवान् कालमुख की समाधि टूटी न थी । अभी अभी अभी हे भगवान् ! कितना कार्य शेष रह गया था !

कि दक्षिणापथ की हरावल भग हुई !

युगों से दक्षिणापथ के अपराजेय द्वार-रूप मे मान्य काम्पिलीगढ़ का पतन

हुआ ! कैसा कुटिल जाल ! किस तरह उसमे फँस गए ! कैसी-कैसी आशाएँ और कैसी यह अवस्था !

और देवगिरि पहुँचने पर कृष्णाजी की क्या दशा होगी, यह अस्पष्ट न था। जिसने देवगिरि के अन्तिम यादवराज की खाल जीवित ही उतरवा ली थी, उसी सुलतान मुहम्मद तुगलक के सामने कृष्णाजी भी पेश होगा।

भयकर उसकी मृत्यु होगी, इसमे रच-मात्र भी सन्देह न था !

—कृष्णाजी का मन इन्ही विचार-प्रवाहो का मन्थन कर रहा था—भगवान् पम्पापति, मुझे धैर्य देना ! शक्ति देना ! मेरे मस्तक पर सती के आशीष की छाया है। आशीष की योग्यता सिद्ध करने की शक्ति देना !

तुरुष्क सेना तुगभद्रा के उस पार पड़ी थी। पडाव उठने की तैयारी थी। कृष्णाजी ने एक बार मेहर को देखा था, दूसरी बार वह दृष्टिगोचर न हुई थी। शायद वह नहीं आई। क्या वह भी इसी प्रपच और धोखे मे शामिल है !

शायद वह नजरबद है। शायद लेकिन अब उसके विषय मे सोचा ही क्यो जाए ?

गैरसप्पा आया। उसके शरीर पर घावो के चिह्न स्पष्ट थे ! उसमे भीषण रोष उबल रहा हो, इस प्रकार उसने कृष्णाजी के मुँह पर थूक दिया ! तिरस्कारपूर्वक हँसकर बोला—मेरी जान बचानेवाला तू सचमुच बेवकूफ था, लेकिन तुझे जिन्दा छोड दूँ, इतना बेवकूफ मै नहीं !

सुलतान गैरसप्पा के कामो से बहुत खुश होगा। उसे देवगिरि का सूबेदार बना देगा। विना खर्च और बिना जोखिम, काम्पिलीगढ-जैसा दुर्ग जीत लेने की ख्याति उसे मिलेगी ऐसी अनेक बाते वह कहता-सुनता, लेकिन मेहर के बारे मे किसी सवाल का जवाब उसके पास न था !

अचानक, तुर्की सेना के उठते हुए पडाव के पीछे भयकर कोलाहल उठा, शोर मच गया—"किरात किरात किरात !"

लुटेरो से चोर जितना डरता है, उतना दूसरा कोई नहीं डरता ! किरातो के नाम का शोर उठा था कि तुर्की सिपाही अपने शवो और साथियों को छोडकर पलायन के पथ पर अग्रसर हुए !

और फिर तो, शाम-सुबह, दोपहर और मँझरात, खाते-पीते, उठते-बैठते,

सोते-जागते 'किरात' नाम की चीत्कारें उठने लगी और तुर्कों की भगदड़ एक कार्यक्रम बन गया। किरात इस प्रकार आक्रमण करते कि सँभलने का अवसर ही न मिलता और जब तक सँभले सँभले, तब तक वे अदृश्य हो जाते। फिर उनका न पता, न नाम-निशान ही मिलता। पाँच-पाँच हजार किरात इस तरह गायब हो जाते, मानो जमीन मे पैठ गए है। और फिर अचानक निकल आते, 'छापेमार' कहकर तुर्क इन्हे गाली देते और इनका तिरस्कार करते—यो चूहे की तरह क्यो छिपते हो? यदि तुम मर्द हो तो मैदान मे आओ—वे ललकारते, तो भी वे किरातों से हार जाते और यथा-शक्ति उनसे दूर भागते।

परन्तु किरात भी कुछ कम न थे, पीछा छोडनेवाले नहीं थे।

मलिक हुक्म देता। गैरसप्पा उनका अमल करवाता। दूसरे मलिक जागते रहते—कोई नही सो सकता था।

आठ दिवस के अखड रतजगे और बिना-कुछ खाये-पीये और विश्राम किये, तुर्की सेना भागने लगी। लेकिन अब भी लडाई की लूट का माल जान की जोखिम उठाकर भी, सहेज रखने की अभ्यस्त तुर्क सेना तितर-बितर होने लगी। एक बार बिखरने पर तुर्कों को इकट्ठा करना कठिन था।

किरातो को कोई नहीं देख सकता था। कभी-कभी रात्रि या मध्यरात्रि मे काली परछाइयाँ दिखतीं और भयकर चिल्लाहटे सुनाई देतीं। दूर-दूर क्षितिज पर घोडे दिखाई देते और कभी उन घोड़ों से भी तेज आदमी दिखाई देते।

और इन सबसे अधिक दृष्टिगोचर होता मृत्यु का ताण्डव। प्रतिदिन तुर्की सेना के दो-चार, पाँच सौ, हजार घोडे मर जाते। उन्हे ठिकाने लगाना भी कठिन था।

इस मुसीबत से बचने का एक ही रास्ता था। ज्यो-त्यों कर, किसी भी प्रकार वातापी के दुर्ग मे पहुँच जाना। वातापी से देवगिरि की सीमा शुरू होती थी। और किरात प्रदेश वहाँ से बहुत दूर था। बिफरी हुई मधुमक्खियों के जम-घट से, उसकी मार से शहद का लालची शिकारी जिस प्रकार भागता है, उसी प्रकार तुर्क लोग भागने लगे! भाग रहे थे!

अन्त में, वातापी!

लेकिन वह तो किरातो के अधिकार मे था। वहाँ की तुर्की चौकी नेस्त-नाबूद कर दी गई थी। और उसके सिपाहियो के सिर दुर्ग के खडहर मे झूल रहे थे।

और उसी स्थल पर, शबूरो और किरातो ने तुर्कों को घेर लिया!

वातापी का कलक मिट गया! तुर्की सेना नामशेष रह गई! तुर्कों पर किरात जनो ने इस भीषणता से प्रहार किया कि वे तबाह हो गए और "तौबा! तौबा!!" पुकारने लगे। लूट का सारा माल-असबाब किरातो के कब्जे मे आया।

किरातों की एक टुकड़ी ने गैरसप्पा और मलिक का मुकाम घेर लिया।

"आ-हा हा! यह तो स्वय गैरसप्पा बहाउद्दीन है!" एक घोर, प्रखर नाद उठा!

और यह नाद, केवल एक ही व्यक्ति का हो सकता था, वैसा दूसरा व्यक्ति वसुन्धरा पर अन्य कही नही!

"कौन गगू कन्याली!" कृष्णाजी ने पुकारा।

"कौन कृष्णाजी? क्या हमारे भाग्य मे यही इसी भाँति मिलन लिखा था?"

"तो तुम्हारा काम था यह?"

"जरूर! किरातो को छोड़कर, दूसरे किसमे इतनी हिम्मत और ताकत है है कि लूट मचाकर लौटनेवाली तुर्की फौजो पर हमलाकर, माल वापस रखवा ले! आप भी क्या काम्पिलीगढ मे थे?"

"हाँ!"

"काम्पिलीदेव महाराज तो ससार छोड गए न?" गगू ने कहा, "मुझे विश्वास था कि वे जाएँगे। और मेरे वैर का बदला वसूल होगा अवश्य! जो राजा और जो नगर गगू कन्याली को हाथी के पैरो-तले कुचलना चाहे, उसका यही हाल होगा! मेरा ही विश्वास सच्चा है!"

"तुम स्वदेशी हो या विदेशी? ब्राह्मण हो या ब्रह्मराक्षस?"

"अब भी यह पूछने की आवश्यकता रह गई क्या?" गगू ने कुटिल अट्ट-हास किया! "सुनो कृष्णाजी, मुझे मालूम था कि तुर्की सेना धोखेधडी से काम्पिलीगढ मे प्रवेश होना चाहती है। आप लोगो को सन्धि-वार्ता मे व्यस्त

रखकर गुप्तमार्ग से मलिक राजी की तुर्की सेना गढ मे प्रविष्ट होनेवाली है, यह भी मुझसे छिपा न था !"

'तुम जानते थे, फिर भी सिर्फ टुकुर टुकुर देखते थे ?"

"मै क्या कहता ? मै तो करके दिखा देता हूँ। लेकिन जाने दो ये बाते। मैं—गगू कन्याली अन्य लोगो के आचार-विचारो का पालन नही करता।" और उसने कृष्णाजी की ओर पीठ फेर ली।

"और यह कोन, मलिक राजी ? देवगिरि के सूबेदार ? आपका यह हाल ?" गगू ने मजाक मे पूछा।

"दगाबाज ! बेईमान !" मलिक राजी अपनी रोग-शय्या से उठकर खडा हो गया, "तूने ही तूने ही हमारा जासूस होते हुए भी तू ही हमे खबरे देता और तू ही हमसे तूने हमे छिपे हुए रास्ते बतलाये और तू ही ले, यह लेता जा।"

मलिक राजी का हाथ हिला और एक छोटी-सी कटार उछलकर गगू महाराज के पेट मे पैठ गई !

"और तू भी !' गगू ने कराल हुकार के साथ कहा और अपनी तलवार के एक ही झटके से मलिक को जमीन पर सुला दिया।

"किरात, पकड लो इस गेरसण्या का ! और यही इसी वक्त काट डालो सबको ! देखना, कोई बचकर न निकल पाए !"

थोडी देर तक तो पास मे ही सग्राम मचा, और बाद मे दूर चला गया। सारा मैदान भागते-दोडते आदमियो से भर गया। जिस प्रकार आकाश से सोने की वर्षा होती है, उसी प्रकार लूट का माल जमीन पर गिरने लगा। अब तो तुर्क अपनी जान बचाने के लिए, धन को भी फेक रहे थे। और जो कोई धन-दौलत पर ध्यान देता उसकी जान नही बचती थी।

अपने पेट की चोट पर गगू ने अपना हाथ दबाया। वह पीड़ा से बेचैन, अपने घुटनो को दबाकर बैठा था।

"कृष्णाजी, यहाँ आओ !" उसने कहा।

यह भयकर आदमी मरते समय किस पर अपना वैर निकालना चाहता

है, यह समझना कठिन था। इससे कृष्णाजी उसके पास तो गया, परन्तु सावधानी से दूर खड़ा रहा।

"मुझे पानी पिला!"

कृष्णाजी ने गगू को पानी पिलाया।

"तूने मुझसे एक प्रश्न पूछा था, न!"

"हाँ।"

"फिर से पूछ!"

"वारंगल के रणभैरवनाथ की मूर्ति कहाँ है?"

"तुझे याद है, मैंने इस प्रश्न का क्या उत्तर दिया था?"

"आपने कहा था—मेरे मरने के बाद मेरे मुर्दे से पूछना!"

"ठीक है, मेरी मृत्यु पर मेरे शव से पूछना!"

"आप अब भी मेरी हँसी उड़ा रहे है? महाराज! आप ब्राह्मण है या ब्रह्मराक्षस? अब तो कुछ ही देर मे अपना हिसाब पेश करने के लिए ईश्वर के दरबार मे उपस्थित होना पडेगा।"

गगू हँसा। मौत की उस स्थिति मे भी यह आदमी कितना निर्भय था!

"मेरा मेरा हिसाब देने जाना है—परन्तु ईश्वर के पास नहीं—मेरे स्वामी के पास!"

"क्या इन दोनो मे अन्तर है? मै तो कहता हूँ, इस समय भगवान् का नाम लीजिए!"

"अरे पागल! इस धरती पर मैंने दूसरा कोई भगवान् नही देखा—और कोई है तो मैं उसे मानता नही—मेरा भगवान् एक ही था—मेरा स्वामी!"

"आपका स्वामी कौन है?"

"रायकरण! "

"रायकरण? परन्तु तुमने, तुमने तो "

"सुन! इस जमीन पर जहाँ तक मै जीवित हूँ, तब तक मुझे एक ही आदमी को हिसाब देना बाकी है। मेरा सन्देश उसके पास पहुँचा देना।"

"किसे?"

"दादैया सोमैया को!"

कृष्णाजी को लगा कि इस समय गगू महाराज को होश नही है और उन्हे चित्तभ्रम हो गया है।

गगू हँसा—सुनो कृष्णाजी ! मैं इस समय मरने को पडा हूँ और जैसी मौत मैंने अपने भगवान् से माँगी थी, वैसी ही मौत मुझे मिल रही है ! मै धन्य हूँ ! मै धन्य हूँ ! मैने अपने राजा की बहुत सेवा की है। तुकों के समक्ष किस प्रकार लडा जाता है —यह मैने अपने देश के लोगो को बताया है। मैने अपने स्वामी का साथ दिया है, उसकी मौत सुधारी है, उसके अपमान का वदला लिया है और कृष्णाजी यहाँ पर आओ पास मे आओ ! मुझसे डरो नहीं। मैंने तुम्हे वारगल दिलवाया है !"

"महाराज ! "

"हाँ, सुन, दादैया सोमैया से कहना—रायकरण के पश्चात् तुर्कों के सामने युद्ध करनेवाले महावीर और शकर के अवतार-जैसे सोमैया की सेवा मैंने स्वीकार की थी। इस सेवा के लिए मै विप्रविनोदी बना। इसी लिए मैं जासूस बना। इसी लिए मैंने किरातराज का वध किया और इसी लिए मैं किरातो का सेनापति बना। इसी लिए मैं तुम्हे अपना उत्तराधिकारी मानता हूँ कृष्णाजी ! अब किरातो की सेना तुम्हारी है। किरातो का राज्य अब तुम्हारा है। अब कृष्णा और समुद्र के बीच का तेलुगु प्रदेश तुम्हारा है। महासती उदाली की अन्तिम आज्ञा और इच्छा पूरी हो गई है कृष्णाजी .. मेरे लिए ! सोमैया से कहना कि विप्रविनोदी शबूर गगू कन्याली ने आपकी आज्ञा का पालन किया है।"

"महाराज ! आप होश मे तो है, न ?"

"हाँ, मैं पूरी तरह होश मे हूँ। कृष्णाजी ! मेरी मौत, मेरे सामने खड़ी है, इसलिए मुझे सन्निपात हुआ है, क्यो, तुम यही मानते हो ? तुम भूल रहे हो। मेरी बात सुनो। जान लो कि मौत—महाकाल—साक्षात् यमराज भी मेरी इच्छा के बिना, मुझे नहीं ले जा सकता ! किन्तु अब मेरा कार्य पूर्ण हो चुका है। मैने अन्त समय तक वीर राजा का साथ दिया है ! जिस समय उनके पास कोई न था, उस समय मैं था ! मृत्यु के उपरान्त जो मेरे राजा की मनोकामना पूर्ण कर सके और तुर्कों के प्रचड प्रवाह को रोक ऐसे महापुरुष की मैंने सेवा की है। इस दृष्टि से मेरी मृत्यु धन्य है !"

"लेकिन महाराज! यदि आप सन्निपात की दशा मे न हो तो उत्तर दे। आपका पत्नी देवी तो कहती थीं—आपने गुजरात की अनमोल तलवार की मूठ मे छिपे हुए, राजभाडार के अमूल्य हीरे-जवाहरात के लिए रायकरण की हत्या की है! "

"वल्लरी नादान थी। वह मेरी पुत्रीवत् थी। मैंने देश के लिए, कृष्णाजी, सिर्फ स्वदेश के हेतु, पुत्री-तुल्य कन्या को पत्नी बनाया था। किस लिए? जानते है? वल्लरी का पिता क्षुद्र चमार जाति का था, अवर्ण था। हमने तय किया था कि वह मुसलमान तुर्क बनकर देवगिरि मे रहे ताकि मै तगी चमार यानी मलिक रहमान तगी से निर्विघ्न रूप से मिल सकूँ। देवगिरि के तुर्को से मिल-जुल सकूँ। मैने इसी लिए मलिक रहमान यानी तगी की बेटी पर पत्नीत्व का पर्दा डाला और लोग मुझे विप्रविरोधी, विप्रविनादी कहने लगे।"

"किन्तु, वह कहती था महाराज, कि आपने ही रायकरण की हत्या की?"

"हाँ, मैने ही उनकी हत्या की। किन्तु किस लिए? मेरे ये हाथ, मेरे अपने स्वामी के रक्त से रजित है, फिर भी ये भस्म न हुए, इसका कारण जानते हो?"

"नहीं, महाराज!"

"तो सुनो। बीस-बीस साल तक हमने केवल दो साथियों के बल पर लडाई जारी रखी। विदेशियों के विरुद्ध चलनेवाली इस लड़ाई को लोग लुटेरापन और डकैती कहते थे। अन्त मे तुर्कों ने हमे घेर लिया। उस समय हमारे सामने दो ही मार्ग थे—या तो तीनो हम लड़-मरकर खत्म हो जाएँ—और इसमे कोई शका नहीं थी। अथवा, हम जीवित रहे और शस्त्र की शक्ति से जो कार्य पूर्ण न हो सका, उसे दूसरी प्रकार पूरा करे। इसलिए हमने दूसरा मार्ग स्वीकार किया—रायकरण ने मुझे आदेश दिया—'तुर्क मुझे जीवित पा जाएँ और मेरा सिर काट डाले अथवा हरपालदेव-जैसा हाल करे इससे तो अच्छा है कि तू ही मेरा शीश काट दे—यह तुझे अन्तिम आदेश है मेरा।' और उसी क्षण मैंने भीष्म-प्रतिज्ञा की कि जिस तुर्क सरदार के कारण मुझे अपने हाथो यह कार्य करना पड़ रहा है, मै उसे जरूर मार डालूँगा और जिस किसी ने मेरे राजा का अपमान किया है, मैं उसका सर्वनाश कर दूँगा।"

"काम्पिलीदेव !"

"काम्पिलीदेव मेरे राजा का अपराधी था। हमने वारंगल मे रहकर अन्त तक महादेवी रुद्राम्मा और प्रतापरुद्रदेव का साथ दिया और साथ-साथ हम तुर्कों से लडे। फिर यह सोचकर कि आगे-पीछे तुर्कों का हमला काम्पिली पर होगा, हम काम्पिली मे गए, लेकिन काम्पिलीदेव ने मेरे स्वामी, मेरे राजा रायकरण का अपमान किया और हमे काम्पिली से निकाल दिया! उसी क्षण मैंने प्रतिज्ञा की थी कि काम्पिलीगढ दक्षिणापथ के लिए चाहे जितना उपयोगी क्यो न हो, मै इसका विनाश करूँगा काम्पिलीदेव का सत्यानाश होगा" गगू के चेहरे पर क्रूर हास्य-रेखाएँ छा गई। "और मैंने उनका नाश किया है। मैंने यह भी सुना कि तुर्कों ने उनके छोटे-बडे छहो पुत्रो को कत्ल कर दिया।"

"महाराज! सचमुच आप ब्रह्मराक्षस है!"

"अपने राजा का अपमान करनेवालो के लिए मै ब्रह्मराक्षस था। अपने लोगो के लिए ब्राह्मण था। तुम्हारे लिए कृष्णाजी, काम्पिलीगढ के खडहरों से लेकर वारंगल के खडहरो तक का सारा तेलुगु प्रदेश प्रस्तुत है—यह गगू की कृपा है। याद है, किरातराज के दुर्ग से तुम्हे किस प्रकार भगा दिया था? किरातराज को शक न हो और तुम भाग सको—इस प्रकार की मेरी व्यवस्था थी। मैंने सारा हाल मेहर को सुनाया था। चाभियाँ मेहर के हाथ लग जाएँ, यह मेरा तरीका था। मैंने किरातराज को मेहर पर जुल्म करने के लिए लुभाया था ताकि मेहर भाग जाए। तुम्हारा पीछा करने का ढोंग रचकर मैंने तुम्हे भाग निकलने की राह बतलाई थी, याद है सब-कुछ?"

"अब याद आ रहा है, महाराज!"

"और मैंने दादेया सोमैया को वचन दिया था कि कृष्णाजी की रक्षा का ध्यान रखूँगा।"

"महाराज!"

"मुझे मलिक रहमान तगी के द्वारा खबर मिली थी कि मलिक राजी सुलतान मुहम्मद को बहकाकर काम्पिली पर आक्रमण करने के लिए उकसा रहा है। अब देवगिरि की सेना को खुश रखने के लिए सुलतान के पास एक ही उपाय था—सेना को धन-दौलत बाँट दे अथवा देवगिरि पर हमला करने

की, लूट की इजाजत दे। देवगिरि के मलिको के जोर देने पर सुलतान ने लूट-मार का आदेश दे दिया। तब मैने रहमान के जरिए, मलिक राजी को मदुरा की आजाद सल्तनल का सपना दिखाया। यदि मलिक राजी छोटी सेना लेकर आ जाए तो दुर्ग का गुप्तद्वार दिखलाने का भार मैने लिया। इस प्रकार काम्पिलीगढ के नाश पर मेरा प्रतिशोध पूरा हो—बाद मे राजी से निपटना मेरा काम था। उसके लिए मै तैयार बैठा था।"

"महाराज! महाराज आपको क्या कहूँ?"

"मुझे कुछ न कहो! वचन दो। तुर्को की ऐसी पिटाई हुई है कि अब जल्दी ही वे इस दिशा मे लौटने का साहस न करेगे। उन्हे भी हार का दुःख होता है और मार पर घाव उन्हे भी दर्द देता है! रहमान तगी गुजरात की ओर गया है—मैने ही उसे भेजा है, वहाँ वह बडा तूफान जगाएगा! गुजरात ने जो कुछ देखा, उससे अधिक उसे देखना न पडेगा और गुजरात मे अशान्ति और अराजकता उठ खडी होने पर तुर्क इस प्रकार व्यस्त हो जाएँगे कि दक्षिणापथ को अपनी तैयारी का मौका मिल जाएगा। आवश्यक अवधि प्राप्त होगी। वचन दो, यह सब समाचार तुम सोमैया तक पहुँचा दोगे। उनसे कहना कि मेरी ओर से—चाहे, मेरी सेवाओ के बदले मे—लेकिन, समय का सग्रह करना, लोक-सग्रह करना!"

"महाराज! मै अल्पमति आपकी किस प्रकार अभ्यर्थना करूँ। अपनी सेवा और अपने वैर—दोनो की दृष्टि से आप अनन्य है, असाधारण है, महान् है!"

"कृष्णाजी, मेरी एक और बात याद रख लेना। मेरा एक गुलाम था हसन। वह गुलाम नहीं, भाई-बन्धु था। उसके भाग्य मे राजयोग है। जब जरूरत समझो मेरा उल्लेख करना—वैसे तो वह मुसलमान है, सच्चा मुसलमान है—मेरे नाम का सम्मान करेगा।

"और अब मेरी अन्तिम बात भी सुन लो कृष्णाजी, अब समय नही रहा कि हम मूर्तियो के चमत्कारो पर विश्वास करे! अब तो मूर्तियाँ पुजारी-भक्तो की रक्षा करने के बजाय, उनसे अपनी सुरक्षा की अपेक्षा रखती है। और उनके रक्षण की फिक्र देश को हानि पहुँचा रही है। तुम कहीं मूर्तियो के

चमत्कार के फेर मे पडकर मानवीय मानस की श्रद्धा और प्रेम-भावना के चमत्कार के प्रति आँखे न मूँद लेना !

"इतना कहकर अब मैं तुम्हे रणभैरवनाथ की पवित्र प्रतिमा का पता बतलाता हूँ। अपने अन्त समय मे भगवती रुद्राम्मा ने यह प्रतिमा मुझे सौंपी थी और तब से मैने प्राणपण से इसकी रक्षा का प्रयास किया है। मूर्ति के चमत्कार के कारण नही, भगवती की अन्तिम आज्ञा के कारण। अब जल्दी ही मेरी काया ढल जाएगी उस वक्त मेरी दाहिनी जाँघ चीरकर, उसमे से वह मूर्ति निकाल लेगा।" गगू ने हँसते-हँसते आगे कहा, 'अरे, मैने तुम्हे कहा था न मेरे मरने पर, मेरे शव से पूछना। सच निकली न वही बात ? तुम्हारी मूर्ति यहीं है।"

और गगू महाराज ने पुकारकर कहा—हे महादेव प्रलयकर ! हे मा नर्मदे !! मेरे राजा की आत्मा को शान्ति देना !!! मुझे अपनी गोद में लेना। दक्षिणापथ के विजय-धर्म को यशस्वी बनाना।

"कृष्णाजी, मेरे कान को प्रभु का नाम सुनाओ !"

कृष्णाजी, गगू महाराज के कान मे, राम नाम कहने लगे।

तभी दौड़ती हुई एक युवती आई।

गगू महाराज ने उसकी ओर देखा। उनकी दृष्टि मे चेतना आई। आते ही युवती पछाड खाकर उन पर गिर पड़ी।

"मेहर ! तेरा कर्त्तव्य अभी शेष है। अपने स्वर्गवासी पिता के निमित्त उसका पालन करना।"

फिर कुछ देर गगू महाराज की आँखे मुँदी रही। कृष्णाजी उन्हे श्रीराम का नाम सुनाते रहे !

महाराज ने अन्तिम बार आँखे खोलकर कहा—कृष्णाजी, मेहर की रक्षा करना। तुर्को की लूट के माल मे तुम्हे गुजरात की वह अनमोल तलवार मिलेगी . ढूँढ़ लेना उसे और महाराजाधिराज रायकरण का अपूर्ण कार्य पूर्ण करने के लिए तलवार वह अपने हाथ से राय हरिहर को, मेरे आशीर्वाद-सहित देना !

और गगू कन्याली की आँखें सदा-सर्वदा के लिए मुँद गईं !

* समाप्त *